कुलदीप नय्यर

जेल में

सुप्रसिद्ध कथाकार श्री कुलदीप नय्यर ने इस पुस्तक में दिल्ली के तिहाड़ जेल में 'मीसा'-बन्दी के रूप में अपने दो मास बिताने की कहानी ही नहीं कही है, वरन् यह पुस्तक भारतीय जेलों की क्रूर परिस्थितियों की, प्रत्येक पग पर उन में व्यापे और रग-रग में धँसे भ्रष्टाचार, हिंसा और अनाचार को नंगा करने के लिए लिखी गयी है।

जेल की दुनिया में पैसे और भ्रष्ट सूत्रों की सहायता से सभी कुछ मिल जाता है—नशा करने की चीजें, शराब, बढ़िया से बढ़िया खाना, और यहाँ तक कि औरतें भी, जैसा एक वार्डर ने लेखक से कहा, "···रंडिया नहीं बाबू जी, खालिस बढ़िया सोसायटी की लड़कियाँ...!"

जेल-जीवन के इस पक्ष के अतिरिक्त श्री नय्यर को आपातस्थिति में पकड़े गये विभिन्न विचारों के राजनीतिक क़ैदियों से बातचीत करने का अवसर भी मिला जो शायद जेल के बाहर रह कर संभव नहीं होता। इस बातचीत और पर्यवेक्षण के परिणामस्वरूप अनेकानेक सामाजिक-राजनीतिक और रोचक विवेचनाओं ने इस पुस्तक को अत्यन्त पठनीय और सूचना-संदर्भों से परिपूर्ण बना दिया है।

20.00

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

२७।१९८१५..

जेल में

जेल में

कुलदीप नय्यर

अनुवाद
देवेशचन्द्र

राधाकृष्ण

मेरे श्वसुर
श्री भीमसेन सच्चर
की स्मृति को—
जिनके साथ मुझे जेल में एक दिन
बिताने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भूमिका

मैंने खामोशी को चुपचाप घंटों सुना है। मैंने दिन को उगता और बीतता हुआ अनुभव किया है। मैंने खुलते और बन्द होते समय दरवाज़े की आवाज़ हर बार सुनी है। मुझे हर चीज़ की अनुभूति हो गयी है और यह कई दिनों, हफ़्तों और महीनों तक बनी रहेगी। जेल भी एक ऐसी जगह है, जहाँ समय ठहर जाता है।

मैंने जितना समय जेल में बिताया, वह ज़्यादातर पढ़ने या सिर्फ़ सोचने में बिताया। मैंने क्या किया, इसका असल में कोई मतलब नहीं है। हर दिन एक जैसा था। कभी-कभी कुछ काम न होने से सिर्फ़ ख़ाली यूँ ही बैठे रहने से वक़्त पहाड़-जैसा दीखने लगता था। और मैं अपने साथ के क़ैदियों को कोठरियों में आते-जाते देखता रहता था; मैं काँटेदार दरवाज़े से बाहर की तरफ़ घास की कुछ पत्तियों को हरी होते देखता था। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, एक धुँधली-सी अटूट आशा रह गयी थी कि मैं—और मेरे साथ और लोग भी एक दिन आज़ाद होंगे। यह बेड़ियाँ टूटेंगी और फिर आज़ादी होगी।

और मेरी रिहाई, जब यह आयी, तब मेरे लिए यह बहुत बड़ा निजी अनुभव था। मैंने आज़ादी की क़ीमत समझी, जो पहले नहीं समझी थी। यह एक स्वाद था जिसे समूचे राष्ट्र को बाद में अनुभव करना था, जब चुनाव के नतीजे आये, क्योंकि तब तक सारा भारत एक जेलखाना था।

यह इमरजेंसी पर लिखी किताब नहीं है, हालाँकि तैयारी उन्हीं दिनों हुई थी, क्योंकि उस समय मैं 'मीसा' के तहत नज़रबन्द था। और यह उस डायरी के आधार पर है, जिसमें अपने दो महीने की नज़रबन्दी में 24 जुलाई 1975 से जो कुछ सोचता था, जो कुछ देखा था या सुना था, लिखता गया; क्योंकि मैं जानता था कि मैं यह किताब लिखूँगा। जर्नलिस्ट होने के नाते मैं यह जानना चाहता था कि जेल की ज़िन्दगी कैसी होती है। असल में मैंने अपने साले, राजिन्दर सच्चर से, जो दिल्ली हाई कोर्ट में जज हैं, यह पूछा था कि क्या तुम मुझे जेल दिखा सकते हो? उन्होंने कहा था कि मुझे क़ैदी के रूप में वहाँ भेजना असंभव है। मैं तब यह बिलकुल नहीं जानता था कि मैं एक दिन क़ैदी बन जाऊँगा।

चूँकि यह मेरी नज़रबन्दी की कहानी है, इस किताब में जगह-जगह मैं अपने बारे में ही ज़्यादा कहता गया हूँ। मेरी सिर्फ़ यही उम्मीद है कि जो कुछ मैंने यहाँ लिखा है, उससे जेल के भीतर की हालत को सुधारने की कोशिश को कुछ रोशनी मिलेगी और कम-से-कम वहाँ ग़ुलामों का लेन-देन बन्द हो जायेगा—वहाँ पुलिस

कुछ भी आरोप लगा लड़कों को पकड़ लाती थी और स्टाफ़ के इन 'हेल्परों' को कोई भी मज़दूरी नहीं दी जाती थी।

यह सच है कि जेल सज़ा की जगह है। बोलने, आने-जाने, दोस्तों से मिलने पर रोक, उनसे और परिवार के लोगों से ज़बरदस्ती अलग किया जाना—इतनी सज़ा राजनीतिक क़ैदियों के लिए काफ़ी होनी चाहिए। लेकिन लगता है कि सरकार को इस बात में मज़ा आता था कि लोगों का जीना दूभर कर दिया जाये। जेल-अधिकारियों ने मुझे बताया कि गृह-मंत्रालय के यह निर्देश थे कि नज़रबंदियों की ज़िन्दगी को जितना दूभर बनाया जा सकता है, बनाया जाये। जब नयी दिल्ली की तिहाड़ जेल में, जहाँ मैं नज़रबन्द था, क़ैदियों की संख्या 4000 से ऊपर पहुँच गयी, मैंने जेल के अधिकारियों से पूछा कि वह इतनी भीड़ क्यों भर रहे हैं? उन्होंने कहा कि यह जानबूझ कर ऐसा किया जा रहा है; जो जेल 1200 आदमियों के लिए थी, अगर वहाँ चौगुने ज्यादा आदमी भर दिये जायें तो यह नरक ही हो जायेगी।

मैं एक बार फिर **स्टेट्समैन** के अपने पुराने साथियों—प्रकाश राव, वी० ए० मेनन और टी० एन० खन्ना को उनकी मदद के लिए धन्यवाद देता हूँ।

कुलदीप नय्यर

क्रम

गिरफ्तारी

भारती ने जगाया तो मुझे लगा कि अभी आधी रात भी नहीं बीती है। उसने कहा, "पुलिस के दो आदमी आये हैं।" वह कुछ घबरायी हुई थी, लेकिन उसने यह ख़बर इतने कामकाजी ढंग से बतलायी कि उसका मतलब समझने में मुझे कुछ समय लगा। कांग्रेस के एक नेता की लड़की होने के कारण, जो विदेशी राज्य के दिनों में कई बार जेल गये थे, पुलिस वालों का समय-असमय आ-धमकना मेरी पत्नी के लिए कोई नयी बात नहीं थी। लेकिन मेरे लिए यह अनुभव अपूर्व था। मैं झट से बिस्तर छोड़कर उठ बैठा, हालांकि जो कुछ हो रहा था उस पर मुझे कोई ज़्यादा आश्चर्य नहीं था। एक ही दिन पहले इंडियन एक्सप्रेस के, जहाँ पर मैं काम करता हूँ, प्रोप्राइटर रामनाथ गोयनका ने मुझे यह चेतावनी दी थी कि अगर सरकार किसी पत्रकार के ख़िलाफ़ एक राय से कोई कार्रवाई करने पर आमादा है तो वह कार्रवाई सबसे पहले मेरे ख़िलाफ़ ही होगी। जैसा कि उन्होंने कहा, "देवीजी" बहुत नाराज़ हैं, और कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष देवकान्त बरुआ ने खुल्लम-खुल्ला कहा है कि हम 'तुमको सबक़' सिखाएँगे।

फिर भी मन कहता था कि यह संभव नहीं कि वे मुझे गिरफ़्तार करने आये हैं। शायद मेरे घर की तलाशी-भर लेना चाहते हों—क्योंकि भले ही मेरी कोई अहमियत न हो, लेकिन यह पता लगाना अहमियत रखता था कि मुझ तक ख़बरें पहुँचाने वाले स्रोत कौन और कहाँ हैं। कोई दो दिन पहले मेनस्ट्रीम के सम्पादक निखिल चक्रवर्ती ने मुझे घर से सारे कागज़-पत्रों को 'हटा देने को' कहा था। हम-लोग संघ लोक सेवा आयोग में एक सेलेक्शन बोर्ड के सदस्य के रूप में मिले थे और वहाँ उन्होंने मुझे बताया था कि उन्होंने सुना था कि मेरे घर पुलिस का छापा पड़ेगा। लेकिन मेरे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं थी कि मैं डरता। मैं गुप्त कागज़ों को घर में न रखने के बारे में सावधान था। और मेरे छोटे लड़के राजू ने पहले ही अपने एक दोस्त के घर उन सारी फ़ाइलों को दो बोरों में भरकर रख दिया था, जिनको मैंने बड़े यत्न से दस साल प्रेस-अधिकारी के रूप में पहले गोविन्दवल्लभ पन्त और उसके बाद लालबहादुर शास्त्री के साथ, जब ये लोग गृहमंत्री थे, रखा करता था।

मैंने दीवाल पर लगी घड़ी की तरफ़ देखा। मुश्किल से सवेरे के पाँच बजे होंगे। मैंने एयरकंडीशनर बन्द कर दिया, भारती से चिन्ता न करने को कहा और बैठक में चला आया जहाँ पुलिस के आदमी बैठे थे। ज्यों ही मैं आया, वे उठ कर

खड़े हो गये। दोनों वर्दी में थे और कन्धों पर लगे बैज से मुझे लगा कि इनमें से एक पुलिस-इंस्पेक्टर है। "मुझे अफ़सोस है, हम आपको गिरफ़्तार करने आये हैं," सीनियर आदमी ने कहा। उसने अपने को चाणक्यपुरी पुलिस-स्टेशन का स्टेशन-हाउस-ऑफ़िसर बताया। इंस्पेक्टर के मुँह से 'गिरफ़्तार' शब्द बड़ी मुश्किल से निकला—और उसके बाद ख़ामोशी छा गयी।

लंबी ख़ामोशी के बाद मैंने कहा, "क्या मैं वारंट देख सकता हूँ?"

उसने साइक्लोस्टाइल किया हुआ एक कागज़ दिखाया जिस पर ख़ाली लाइन पर मेरा नाम और वल्दियत के आगे मेरे पिता का नाम टाइप किया हुआ था। मैंने 'आन्तरिक सुरक्षा कानून' और 'सार्वजनिक हित में' शब्दों को देखा। सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं थी; मैं गिरफ़्तार था। उस दिन तारीख़ 24 जुलाई 1975 थी।

मैं अपने को निस्सहाय महसूस कर रहा था। मुझे डर भी महसूस हो रहा था—अज्ञात का डर और जो कुछ पता था उसका भी डर। मेरे दिमाग़ में पुलिस के अत्याचार की ख़बरें तुरन्त छा गयीं, जो हम लोगों को मिलती थीं, लेकिन जिनको हम सेंसरशिप के कारण छाप नहीं सकते थे। लेकिन मेरे मन में गर्व का भाव भी था, जो हज़ारों आदमियों के मन में तब रहा होगा जब वे आज़ादी की लड़ाई के दौरान गिरफ़्तार हुए होंगे और जो भारती के पिता भीमसेन सच्चरने भी महसूस किया होगा। एक तरह से मैं अपने बहुत-से उन सहयोगी पत्रकारों के पाप का प्रायश्चित कर रहा था जिन्होंने तानाशाही के सामने अपने घुटने टेकना या राष्ट्र के फिर से गुलाम होने पर चुप रहना श्रेयस्कर मान लिया था।

मैंने पुलिस-अधिकारी से पूछा, "क्या मुझे कुछ समय मिलेगा?" एस० एच० ओ० ने कहा, "दो-एक घंटे। आप नहा-धो सकते हैं, अपने साथ कपड़े वग़ैरह रख सकते हैं और अगर इच्छा हो तो कुछ खा भी सकते हैं।" मुझे एकदम से आमों का ख़याल आया जो मुझे सबसे ज़्यादा पसंद थे और जो, मैं जानता था, जेल में नहीं मिलेंगे।

"क्या मैं अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को टेलीफ़ोन कर सकता हूँ?" पुलिस वालों ने सिर हिला कर सहमति दे दी।

मैंने अपनी बहन, राज को बुलाया। मेरे माँ-बाप और भारती के माँ-बाप उसके यहाँ ठहरे हुए थे। टेलीफ़ोन मेरे पिता ने उठाया। सिर्फ़ 'गिरफ़्तार' शब्द को सुनते ही वह सिसकने लगे। मैं टेलीफ़ोन पर पास में खड़ी माँ की आवाज़ को सुन रहा था, वह 'वाह गुरु' का जाप कर रही थीं। मेरी बहन ने लड़खड़ाती आवाज़ में कहा कि वे सब जल्दी ही आ रहे हैं।

मेरी आँखों में आँसू छलक आये। मैं यह नहीं जानता था कि मैं कितने दिन जेल में रहूँगा और क्या जब मैं लौटूँगा तब मेरे माँ-बाप ज़िन्दा मिलेंगे। दोनों बहुत ही बूढ़े थे और मेरी माँ तो रोग से बिलकुल ही जर्जर थीं। एकाएक मैं अपने को एक छोटे बच्चे की तरह महसूस करने लगा, जो डर कर माँ-बाप की गोद में छिप जाना चाहता है।

मैंने अपने प्रतिभाशाली कार्टूनिस्ट दोस्त, राजिन्दर पुरी को फ़ोन मिलाया। मैंने बलराज बाउरी को टेलीफ़ोन किया जो श्रीमती गांधी के प्रचार-निदेशक थे और जिन्होंने मुझे ख़ुफ़िया-विभाग के एक सर्वोच्च अधिकारी की यह टिप्पणी बतायी थी कि "अगर हम लोग कुलदीप नैयर जैसे पत्रकारों को तीन-चार साल के लिए गिरफ़्तार कर लें तो सारा काम ज़्यादा आसान हो जाये।" पुरी ने मुझे तीन हफ़्ते

पहले सावधान भी किया था कि शायद मैं गिरफ़्तार कर लिया जाऊँ, जिन पत्रकारों को गिरफ़्तार किया जाना है उनमें मेरा नाम सबसे ऊपर है। बाद में मैंने सुना था कि मेरा नाम काट दिया गया है, लेकिन पुरी ने दुबारा पता लगाया तो मालूम हुआ कि मेरा नाम उसी जगह पर है। गिरफ़्तारी की खबर के लिए संकेताक्षर थे, 'तुम चंडीगढ़ जाओगे' और यही उन्होंने मुझे टेलीफ़ोन पर कहे थे।

मैंने इंडियन एक्सप्रेस के एडीटर-इन-चीफ़ मुलगाँवकर को टेलीफ़ोन किया लेकिन घंटी बजती रही और किसी ने टेलीफ़ोन नहीं उठाया। जब मैंने जनरल-मैनेजर रमाकान्त मिश्र को टेलीफोन किया तो वह जग गये। मैंने उनसे कहा कि जब तक मैं नज़रबन्द रहूँ तब तक मेरी तनख्वाह[1] भारती को दी जाया करे। मुझे डर था कि मेरी अनुपस्थिति में सरकार दिक़्क़तें पैदा करेगी। मिश्रजी ने फ़ौजी अफ़सर की तरह, जो वह कभी थे, आत्म-विश्वास के साथ कहा कि मैं चिन्ता न करूँ और सारे कागज़ अपनी पत्नी को दे जाऊँ, जिससे वह लोग मेरी नज़रबन्दी के खिलाफ़ कचहरी में मुक़दमा कर सकें।

मैं मान गया, लेकिन उन लोगों के कुछ कर सकने के बारे में मुझे कोई भ्रांति नहीं थी। सरकार इतनी ज़्यादा हठी और बेरहम थी कि अपने आलोचकों को बन्द करने के लिए सब-कुछ कर सकती थी। आन्तरिक सुरक्षा क़ानून (आंसुका) को एक अध्यादेश द्वारा संशोधित करके उसे और ज़्यादा कठोर बना दिया गया था। अब जिसे नज़रबन्द किया जाये उसे नज़रबन्दी के कारण बताना ज़रूरी नहीं रह गया था। मैंने सुन रखा था कि जेल में किसी नज़रबन्द को अपने सगे-संबंधियों से मिलने की भी इजाज़त नहीं दी जाती है।

जब पुरी ने मुझे सावधान किया था कि मैं गिरफ़्तार किया जाऊँगा तब मैंने कुछ कपड़े और कुछ किताबें एक ऐसे थैले में रख ली थीं जो हवाई कम्पनियों द्वारा यात्रियों को यादगार के रूप में दिया जाता है। कुछ ही दिन पहले कपड़े फिर आलमारी में और किताबें अपनी पुरानी जगह पर रख दी गयी थीं। अब भारती ने उस थैले को फिर से भरना शुरू कर दिया और जेल की यात्रा शुरू करने से पहले मैं नहाने के लिए चला गया। मेरा एक पुराना नौकर मुरली जल्दी से हलवा तैयार कर लाया, क्योंकि लम्बी यात्रा पर जाने के पहले परिवार में इसे खाने का एक रिवाज होता है।

मैं सोचने लगा कि मेरी इस गिरफ़्तारी का संबंध कहीं उस पत्र से तो नहीं है जो मैंने कुछ दिन पहले प्रधानमंत्री को लिखा था। उनका उत्तर मिले लगभग चौबीस घंटे बीते थे कि पुलिस मेरे घर आ पहुँची थी।

मेरा यह पत्र असल में प्रधानमंत्री के उस वक्तव्य का उत्तर था, जिसमें उन्होंने कहा था कि हमारे समाचारपत्र विरोधियों को उकसा रहे हैं। मेरा यह पत्र इस प्रकार था :

> प्रधान मंत्री महोदया,
>
> मैं नहीं समझता कि आपका यह कहना सही है कि किसी पत्रकार ने जे०पी० की या सेनाओं के नाम उनके आह्वान की कोई आलोचना नहीं की। प्रमुख समाचारपत्रों ने उनके इस दृष्टिकोण के लिए उनकी भर्त्सना की है।

---

1. बाद में मुझे मालूम हुआ कि प्रबन्धकों को सरकार द्वारा यह कह दिया गया था कि वह मेरी तनख्वाह किसी को भी न दें।

मुझे विश्वास है कि इस तरह की कुछ टिप्पणियाँ आपको ज़रूर दिखायी गयी होंगी।

इसी तरह प्रेस-कौंसिल के खिलाफ़ यह आरोप भी ग़लत है कि उसने गाली-गलौज भरे लेखों का विरोध नहीं किया है। कौंसिल के सदस्य होने के नाते मैं कह सकता हूँ कि आर्गेनाइज़र (के सम्पादक) की आपके और आपके परिवार के बारे में ग़ैर-ज़िम्मेदाराना लेख लिखने पर निंदा की गयी है। दुर्भाग्य से इस निर्णय की घोषणा लम्बी और पेंचदार प्रक्रियाओं के कारण देर से हुई।

आप शायद स्वीकार करेंगी कि प्रमुख पत्रों ने फ़िरक़ापरस्ती के खिलाफ़ सरकार के अभियान का बेलाग समर्थन किया है। पत्रों की शिकायत है कि साम्प्रदायिक तत्वों के बारे में प्रशासन का रवैया कड़ा नहीं है। प्रेस-कौंसिल ने भी बहुत-से समाचारपत्रों को 'साम्प्रदायिक' और 'संकीर्णतावादी' लेख लिखने के लिए चेतावनी भी दी है।

अगर समाचारपत्रों ने सरकार की आलोचना की है तो वह उसके ढीले प्रशासन के कारण, आर्थिक क्षेत्र में तेज़ी से प्रगति न होने और कथनी और करनी में अन्तर होने के कारण। मैं कह सकता हूँ कि जब सरकार का पक्ष भारी होता है तो भी उसे अपना प्रचार करना नहीं आता। उदाहरण के लिए, प्रशासन के बारे में आपने पत्र लिखे हैं, लेकिन उनको प्रकाशन के लिए कभी जारी नहीं किया गया। आपके पत्रों के बारे में जो कुछ छपा है वह इधर-उधर से सुना-सुनाया हुआ है।

महोदया, पत्रकार के लिए यह छाँटना हमेशा मुश्किल रहता है कि वह क्या छापे, क्या न छापे! उसे हमेशा किसी-न-किसी के नाराज़ होने का ख़तरा रहता है। व्यक्ति की अपेक्षा सरकार में यह प्रवृत्ति ज़्यादा रहती है कि सत्य को छुपाया जाये—और सत्य प्रगट हो जाये तो सरकार के कान खड़े हो जाते हैं। प्रशासन में जो लोग ऊँचे पदों पर होते हैं वह इस विश्वास के साथ काम करते हैं कि वे—केवल वे ही—जानते हैं कि कौन-सी चीज़ राष्ट्र को कब और कैसे बतायी जाये। और ऐसी बात जो उन्हें पसन्द नहीं है समाचारपत्रों में प्रकाशित हो जाये तो वे नाराज़ हो जाते हैं।

लेकिन यह कोई नहीं समझ पाता कि इन तरीक़ों से सरकारी खबरों पर से लोगों का विश्वास उठ जाता है। और, लोग सरकार की सही ख़बर पर भी भरोसा करना छोड़ देते हैं। लोकतंत्र में, जहाँ जनता का विश्वास ही सब-कुछ होता है, सरकार के लिए हितकर नहीं कि उसकी कथनी या करनी में जनता को ज़रा भी सन्देह हो।

स्वतंत्र समाज में—इमरजेंसी के बाद आपने बार-बार यह कहा है कि आप स्वतंत्र समाज की धारणा में विश्वास रखती हैं—जनता को सूचित करना समाचारपत्रों का कर्तव्य है। कभी-कभी यह काम अप्रिय हो जाता है, लेकिन यह करना पड़ता है क्योंकि स्वतंत्र समाज की बुनियाद बेरोक सूचना पर खड़ी होती है। अगर समाचारपत्रों का काम सरकारी घोषणाओं या वक्तव्यों को छापना ही रह जाये, जैसा कि आजकल हो रहा है, तब भूलों, कमियों और ग़लतियों को कौन बतायेगा?

मैं अक्सर नेहरूजी के उन वचनों को पढ़ता हूँ जो उन्होंने तीन दिसम्बर 1950 को अखिल-भारतीय समाचारपत्र सम्पादक सम्मेलन में

कहे थे : "समाचारपत्रों की आज़ादी के बारे में सरकार चाहे जितना नाक-भौंह सिकोड़े और उसे खतरनाक समझे, लेकिन मुझे उसमें कोई शक नहीं है कि उनकी आज़ादी में दख़लन्दाज़ी करना ग़लत है। पाबन्दी लगाकर आप किसी चीज़ को नहीं बदल सकते। आप कुछ चीज़ों को बाहर आने से रोक-भर सकते हैं और ऐसा करने से जो बात या विचार इन चीज़ों के पीछे छिपे हुए हैं उनको और ज़्यादा बढ़ावा मिलता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हमारे समाचारपत्रों पर कोई भी पाबन्दी न रहे, उनको दबाया न जाये या उन पर कोई भी नियंत्रण नहीं लगाया जाये, चाहे आज़ादी का ग़लत तरीक़े से इस्तेमाल किये जाने का ख़तरा भले ही हो।"

जिस तरह की सेंसरशिप आज लगायी गयी है उससे पहल करने की प्रवृत्ति, बेरोक जाँच और अन्तत: आज़ाद होकर सोचने की प्रवृत्ति मर जायेगी। मुझे यक़ीन है कि आप ऐसा नहीं होने देना चाहती हैं।

आपका

कुलदीप नैयर

उनका जवाब जो उनके डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिसिटी के मार्फ़त मिला, इस प्रकार था :

प्रिय श्री नैयर,

प्रधानमंत्री को आपका 16 जुलाई का पत्र मिला। पिछले साढ़े नौ साल में प्रधानमंत्री ने अपने बारे में झूठी और भ्रष्ट ख़बरें छपने पर भी कभी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। इससे आलोचना के बारे में उनकी विलक्षण सहनशीलता का पता चलता है। पिछले हफ़्तों में जो सेंसरशिप शुरू की गयी है वह किसी व्यक्ति या सरकार के प्रति संवेदनशील होने के कारण नहीं शुरू की गयी है, बल्कि इसलिए की गयी है कि कुछ समाचार-पत्र विपक्षीय मोर्चे के अभिन्न अंग बन गये हैं। जब इन दलों को राष्ट्रीय जीवन को तहस-नहस करने के अपने कार्यक्रम को चलाने से रोकना है तो यह स्वाभाविक है कि उनके प्रचार के प्रमुख साधनों पर भी रोक लगायी जाये जिससे वे उत्पात न करा सकें। समाचार-पत्रों पर रोक लगाने से निश्चय ही पिछले कुछ दिनों में स्थिति पर क़ाबू पाया जा सका है। समा-चारपत्रों की आज़ादी व्यक्तिगत आज़ादी का हिस्सा है, जो हर मुल्क में राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति में अस्थायी तौर पर कम कर दी जाती है।

इसके अलावा, कुल मिला कर हमारे समाचारपत्र अपनी आज़ादी के दुरुपयोग को रोकने में बहुत कारगर साबित नहीं हुए हैं और वे न गाली-गलौज भरे लेख रोक सके हैं, न झूठी ख़बरें फैलाना। आपने प्रेस-कौंसिल के और कुछ समाचारपत्रों के इक्के-दुक्के काम गिनाये हैं। लेकिन क्या आप कह सकते हैं कि उनका असर कारगर हुआ ?

जहाँ तक इसका संबंध है कि समाचारपत्र वालों को क्या छापना चाहिए जिसके बारे में आपने कहा कि यह निर्णय करना कठिन है, प्रधान-मंत्रीजी यही कहना चाहेंगी कि हर पत्रकार ज़िम्मेदारी से या तथ्यों को दृष्टि में रखकर इस बारे में फ़ैसला नहीं करता।

आपका

एच० वाई० शारदा प्रसाद

शायद मेरे पत्र से आग भड़क उठी थी जो पहले से ही सुलग रही थी। मैं इमरजेंसी लगने के कुछ दिन बाद ही सूचना-मंत्री विद्याचरण शुक्ल से उलझ चुका था। हम लोग एक-दूसरे को बहुत दिन से जानते थे और मैं उन व्यक्तियों में से था जिनके सामने वह रक्षा-उत्पादन मंत्रालय से हटाकर योजना-आयोग में राज्य-मंत्री बनाये जाने पर अपना दुखड़ा रो चुके थे। हाल में मंत्रालय बदले जाने पर उन्होंने टेलीफ़ोन पर मुझसे शिकायत के तौर पर कहा था कि मैं उनके सूचना और प्रसारण-मंत्री बनने पर उनको बधाई देने नहीं गया था।

श्री शुक्ल को मुझसे एक और शिकायत भी थी। मैं 29 जून को सभी स्थानीय समाचारपत्रों और न्यूज़-एजेंसियों के दफ़्तरों में गया था और मैंने प्रेस सेंसरशिप लगाये जाने का विरोध करने के लिए पत्रकारों से दूसरे दिन प्रेस-क्लब में इकट्ठे होने के लिए कहा था। वहाँ एक सौ से ज़्यादा पत्रकार इकट्ठे हुए थे, जिन्होंने मेरे रखे प्रस्ताव का समर्थन किया था। प्रस्ताव इस प्रकार था :

> हम यहाँ एकत्र सभी पत्रकार सेंसरशिप लगाये जाने पर अपना खेद प्रकट करते हैं और सरकार से इसके तुरंत हटाये जाने की माँग करते हैं। हम यह चाहते हैं कि जो भी पत्रकार नज़रबन्द किये जा चुके हैं उनको तुरंत रिहा कर दिया जाये।

मैंने इस प्रस्ताव को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और सूचना और प्रसारण-मंत्री के पास भेज दिया था।

बाद में जब मैं श्री शुक्ल से मिला तो उन्होंने सबसे पहला सवाल यह किया "वह प्रेम-पत्र कहाँ है, जिस पर कुछ पत्रकारों ने दस्तख़त किये हैं ?" मैंने मज़ाक में जवाब दिया, "वह सेफ़-डिपाज़िट में है।" श्री शुक्ल की आवाज़ बदल गयी और वह ग़ुस्से से तमतमा उठे। उन्होंने कहा, "तुमको गिरफ़्तार किया जा सकता है। मुझसे ऐसा करने के लिए बहुतों ने कहा है।" जब मैंने कहा कि ज़रूर यह श्रीमती गांधी के हरफ़नमौला राजदूत यूनुस ने कहा होगा तो वह ख़ामोश रहे। लेकिन उनकी बदतमीज़ी से मुझे दुख हुआ। उनके पूर्ववर्ती इन्दर गुजराल के व्यवहार में शिष्टता होती थी। हालाँकि गुजराल ने मेरे रेडियो और टी० वी० कार्यक्रमों पर रोक लगा दी थी, लेकिन उन्होंने कभी बदतमीज़ी नहीं की और हमारे निजी संबंध मधुर बने रहे।

श्री शुक्ल ने मुझसे कहा कि मैं विदेशी पत्रकारों के साथ मेल-जोल रखता हूँ और उन्होंने लन्दन से निकालने वाले पत्र **टाइम्स** के पीटर हेज़लहर्स्ट[1] का ख़ास तौर से नाम लिया। मैं आठ साल से **टाइम्स** का संवाददाता होने के नाते हेज़लहर्स्ट को नज़दीक से जानता था। वह भारत के सबसे अच्छे दोस्तों में हैं। उन्होंने 1971 में बांगला देश की लड़ाई में भारत का पक्ष लिया था। 26 जून को नयी दिल्ली पहुँचते ही वह मेरे घर आये और हम दोनों ने स्वतंत्र भारतीय पत्रकारिता की मौत पर दो-दो आँसू बहाये। शुक्लजी ने मुझसे कहा कि मेरे लिए यह अच्छा नहीं होगा कि मैं पीटर से दोस्ती रखूँ। मैंने उनसे कहा था कि उनकी बात मानना मेरे लिए मुमकिन नहीं होगा।

---

1. बाद में पीटर को भारत से बाहर निकाल दिया गया, उसका पासपोर्ट रद्द कर दिया और हवाई अड्डे पर उसके सामान की तलाशी ली गयी, जहाँ उसे टोकियो के लिए हवाई जहाज पकड़ने के लिए सोलह घंटे इन्तज़ार करना पड़ा।

श्री शुक्ल ने तेज़ बोलते हुए कहा, "हम इन विदेशी पत्रकारों को ठिकाने लगाने जा रहे हैं; इन्हें बहुत लाड़-प्यार मिल चुका है।" मुझे अनुमान था कि यू० एस० ए०, ब्रिटेन और यूरोप में इमरजेंसी के बारे में ख़राब प्रतिक्रिया होने से सरकार चिढ़ गयी है। विदेशी समाचारपत्रों ने ठीक ही भाँप लिया था कि भारत तानाशाही की ओर बढ़ रहा है और श्रीमती गांधी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को आदेशों और संवैधानिक संशोधनों के कूड़े की टोकरी में फेंक रही हैं।

श्री शुक्ल की मेज़ पर विदेशी पत्र-पत्रिकाओं की बहुत-सी कतरनें पड़ी थीं। इनमें एक का शीर्षक, जो मैं पढ़ सकता था, इस प्रकार था : द एम्प्रेस टर्न्स इम्पीरियस (महारानी मदान्ध हो गयीं)। उसके नीचे पहली दो लाइनें इस प्रकार थीं :

> श्रीमती गांधी को हटाने के लिए अब एक और बहुत अच्छी वजह पैदा हो गयी है : इस वजह में वह सभी उपाय शामिल हैं जो वह अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिए अपना रही हैं। बृहस्पतिवार को उच्च कोटि के सैकड़ों राजनीतिज्ञों और अपनी ही पार्टी के कुछ विरोधी सदस्यों को जेल में बन्द कर और समाचारपत्रों पर पाबन्दी लगाकर उन्होंने उन सभी क़ायदों को तोड़ डाला जिन पर भारत पिछले अट्ठाइस साल से चल रहा था।

जिस दिन मैं श्री शुक्ल से मिला था, उसी दिन **इंडियन एक्सप्रेस** में मेरा साप्ताहिक लेख (तीन जुलाई को) प्रकाशित हुआ। इसका शीर्षक था : **नाट एनफ़ मि० भुट्टो**[1] (महाशय भुट्टो, अभी बाक़ी है)। यह भुट्टो और पाकिस्तान के बारे में था, जिसमें उनके शासन की तुलना फ़ील्ड मार्शल अय्यूब ख़ाँ के शासन से की गयी थी। मैंने लिखा था : "सबसे खराब बात यह है कि जनता का दमन बढ़ गया है। समाचारपत्रों की ज़बानों पर ताले लगाये जा रहे हैं और विपक्ष के वक्तव्यों को दबाया जा रहा है। यहाँ तक कि थोड़ी-सी भी आलोचना बर्दाश्त नहीं की जाती।"

श्री शुक्ल का कहना था कि सरकार में बेवकूफ़ लोग नहीं हैं, कोई भी यह समझ सकता है कि यह लेख श्रीमती गांधी और इमरजेंसी के ख़िलाफ़ लिखा गया है। निश्चय ही मेरा आशय भी यही था और सेंसरशिप से बचने का इससे अच्छा कोई दूसरा रास्ता मैं सोच भी नहीं सकता था।

मैंने अगले हफ़्तों में दो और लेख लिखे। मैंने संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वि-शत-वर्षीय समारोह के अवसर पर अमेरिका के इतिहास का सिंहावलोकन किया था और लिखा था : "जो लोकतंत्र का उपदेश देते थे उनके हाथ खून से सने हुए हैं। राष्ट्रपति निक्सन का निष्कासन मुक्त समाचारपत्रों और जन-भावना के प्रचार के कारण हुआ, हालाँकि उन्हें अमेरिका के पिछले राष्ट्रपतियों की अपेक्षा अधिक संख्या में बहुमत मिला हुआ था।"

सत्रह जुलाई को छपे एक लेख का शीर्षक था : 'विद्यार्थियों के सामने चुनौतियाँ'। मैंने वाल्तेयर के इस कथन को उद्धृत करते हुए फिर अन्योक्ति की शैली अपनायी थी : "अभी कुछ ही दिन हुए कुछ प्रतिष्ठित लोगों में एक बहुत ही घिसे-पिटे और हलके विषय पर बहस हो रही थी कि कैसर, सिकन्दर, तैमूरलंग

---

1. प्रेस के साधनों के दुरुपयोग पर तैयार एक श्वेत-पत्र के अनुसार सरकार के प्रमुख सूचना अधिकारी को इस बात की जाँच करने के लिए कहा गया था कि "क्या इस प्रकार की टिप्पणियाँ छिपे तौर से देश में मौजूदा हालात पर सरकार की आलोचना नहीं है ?"

और क्रामवेल में सबसे बड़ा आदमी कौन था ? किसी ने जवाब दिया कि निश्चय ही आइज़क न्यूटन सबसे बड़ा आदमी था। और उसका यह कहना ठीक ही था कि हम लोग उनको ही आदर देते हैं जो तर्क से हमारे दिमाग़ को जीत लेते हैं, न कि उनको जो बल के आधार पर हमको गुलाम बना डालते हैं।" मैंने विद्यार्थियों को सलाह दी थी वह डॉक्टर बनें, इंजीनियर या प्रोफ़ेसर बनें, लेकिन वह पत्रकार कभी भी न बनें।

मुझे इस स्तम्भ के लिए लिखना बन्द करना पड़ा था, क्योंकि इंडियन एक्सप्रेस के मालिकों को बता दिया गया था कि "कुलदीप नैयर का कोई भी लेख जिसे वह अपने नाम से या किसी छद्म नाम से लिखें आपके समाचारपत्र में सेंसर को जाँच के लिए भेजे बिना प्रकाशित नहीं होना चाहिए।"

मैंने प्रेस-कौंसिल में एक सदस्य के नाते जो भाषण दिया था, उससे भी सरकार नाराज़ हो गयी थी। मैं प्रेस सेंसरशिप लगाये जाने के ख़िलाफ़ कौंसिल से एक प्रस्ताव पास करवाना चाहता था। इस बैठक में सभी स्थानीय सदस्य शामिल हुए थे। वे यह नहीं चाहते थे कि सेंसरशिप की आलोचना की जाये, हालाँकि कुछ लोग सेंसरशिप से असंतुष्ट थे। मैं अपनी बात पर अड़ा हुआ था और मैंने कहा था कि एक दिन ऐसा आयेगा जब हमारी भावी पीढ़ी प्रेस-कौंसिल की स्पष्ट बात न कहने के लिए निन्दा करेगी, क्योंकि उसकी स्थापना इसीलिए हुई है कि समाचार-पत्रों की आज़ादी की रक्षा की जाये। यह तर्क दिया जा रहा था कि प्रस्ताव[1] पास करने से कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि कोई भी समाचारपत्र इसे नहीं छापेगा। मैंने उनसे कहा कि यहाँ सवाल प्रचार का नहीं, हम सबके विवेक का सवाल है। मेरे सारे भाषण की अक्षरशः सूचना सरकार को दे दी गयी थी।

मुझे पहली बार यह महसूस हुआ कि किसी बेरहम सरकार के हथियारख़ाने में 'आंसुका' जैसा हथियार कितना शक्तिशाली होता है। मुझे याद आया कि किस प्रकार केरल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री ई० एम० एस० नम्बूदिरीपाद ने निवारक नज़रबन्दी क़ानून की अवधि के, जो ख़त्म होने वाली थी, बढ़ाये जाने का विरोध किया था, पर वह असफल रहा था। तत्कालीन गृहमंत्री गोविन्दवल्लभ पंत के निवास-स्थान पर मुख्यमंत्रियों की एक बैठक में सिर्फ़ ई० एम० एस० ने इसका विरोध किया था। पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री विधानचन्द्र राय ने तो यहाँ तक कहा था कि ई० एम० एस० बच्चा है जो प्रशासन की ज़रूरतों को नहीं समझता, लेकिन नम्बूदिरीपाद अपनी बात पर श्री राय के उठकर चले जाने पर भी अड़े रहे। निवारक नज़रबन्दी क़ानून की अवधि बढ़ाने का निर्णय तो ले लिया गया, लेकिन ई० एम० एस० ने वहीं और उसी वक़्त यह आश्वासन दिया था कि उनकी पार्टी इस कठोर क़ानून का कभी भी इस्तेमाल नहीं करेगी और उन्होंने इसका इस्तेमाल नहीं ही किया।

आंसुका इससे भी ज़्यादा ख़राब था। इसके तहत कोई आदमी कभी भी गिरफ़्तार किया जा सकता था। इसके ख़िलाफ़ जो कुछ भी क़ानूनी कार्रवाई हो

---

1. मुझे बाद में पता चला कि प्रेस-कौंसिल के अध्यक्ष न्यायमूर्ति आयंगर ने श्री शुक्ल को 13 अगस्त 1975 को लिखा था : "आपको याद होगा कि मैंने आपको यह बताया था कि कुछ सदस्य इमरजेंसी और सेंसरशिप पर चर्चा करने के लिए एक बैठक बुलाना चाहते हैं। मैंने दिल्ली-स्थित सदस्यों के साथ अनौपचारिक रूप से बैठक की और मैंने उन्हें समझाया है कि यह न ज़रूरी है और न उचित ही है। वह लोग मेरी बात मान गये हैं। इसलिए जो बैठक बुलायी जा रही है, वह विषय-सूची में शामिल नहीं रहेगी।"

सकती थी वह संशोधन विधेयक लाकर ख़त्म कर दी गयी थी। कोई भी आदमी नज़रबन्दी को चुनौती नहीं दे सकता था। इस संशोधन के बारे में बहुत-से मंत्रियों को तब मालूम हुआ जब उसे संसद में पेश किया गया।

इस विधेयक का अनुमोदन मंत्रिमंडल की राजनीति विषयक समिति कर चुकी थी, जिसके सदस्य श्रीमती गांधी, जगजीवनराम, चह्वाण, स्वर्णसिंह और ब्रह्मानन्द रेड्डी थे। राज्यों से, जिनका इस विषय से सीधा संबंध था, कोई भी राय नहीं ली गयी थी (क़ानून और व्यवस्था राज्यों की विषय सूची में आती है)। पहले ऐसे सभी मामलों में, निवारक नज़रबन्दी क़ानून और 'आंसुका' के मामले में भी, मुख्यमंत्रियों से पहले ही सलाह-मशविरा कर लिया जाता था।

विरोधी दलों ने इसका जमकर विरोध किया। उनका शक बेबुनियाद नहीं था, क्योंकि आंसुका को कार्यान्वित करने के बारे में सरकार का रिकॉर्ड कोई अच्छा नहीं था। जब इस विधेयक को पहले-पहल क़ानून का रूप दिया गया था तब यह दलील दी गयी थी कि मामूली क़ानूनों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि रेल के डिब्बों को लूटने वालों या खाने-पीने की ज़रूरी चीज़ों की जमाखोरी करने वालों की ठीक तरीक़े से धर-पकड़ की जा सके और उन्हें दंड दिया जा सके। बहुत-से लोगों ने विशेषाधिकार द्वारा शासन करने की सरकार की प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी थी, लेकिन उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि इसका इस्तेमाल चोरों, उचक्कों और काला बाज़ार करने वालों के ख़िलाफ़ ही किया जायेगा।

यह आश्वासन कि इसका बुरी नीयत से इस्तेमाल नहीं किया जायेगा, झूठा था। मैं उस समय संसद में प्रेस गैलरी में था जब गृह-राज्य-मंत्री ने यह कहा था कि आंसुका तस्करों और समाज-विरोधी तत्वों के लिए है और इसका इस्तेमाल राजनीतिक कार्यों के लिए कभी नहीं किया जायेगा। और आज यहाँ मैं गिरफ़्तार इसलिए किया जा रहा हूँ कि मैंने प्रेस सेंसरशिप के ख़िलाफ़ जो विरोध किया उसमें मैं नाकामयाब रहा।

एक बेचैनी-सी हो रही थी कि असहनशीलता दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। जो लोग सहमति नहीं व्यक्त करते उनको गिरफ़्तार किया जा रहा था और विरोधी पार्टियों को सताया जा रहा था। ऐसी घटनाएँ बराबर होती जा रही थीं जहाँ हमारी आज़ादी को कुचला जा रहा था। इसमें कोई शक नहीं था कि संसद में सरकार को इतना ज़्यादा बहुमत मिला हुआ था कि वह कैसा भी विधेयक हो, उसे पास करवा सकती थी। लेकिन कुछ ऐसे अधिकार भी होते हैं जिनको कोई बहुमत नहीं ख़त्म कर सकता। ये मौलिक अधिकार होते हैं—बोलने की आज़ादी, लिखने-पढ़ने की आज़ादी आदि। इन अधिकारों की बुनियाद सार्वजनिक सिद्धांत होते हैं, जिनको कोई भी सरकार, कोई भी बहुमत नहीं भंग कर सकता। इनमें कोई भी फेर-बदल नहीं की जा सकती, क्योंकि ये मनुष्य के ऐसे अधिकार हैं जिनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। बिना मुक़दमा चलाये आदमियों को नज़रबन्द करना, जिसके ख़िलाफ़ ख़ुद कांग्रेस पार्टी ने अंग्रेज़ों के शासनकाल में लड़ाई लड़ी थी, इन अधिकारों की जड़ पर कुठाराघात था। इस शक्ति के मिलने से नादिर-शाही के लिए जैसे दरवाज़े खुल गये।

मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि श्रीमती गांधी इमरजेंसी लागू करने जैसा कोई कठोर क़दम उठायेंगी। असल में, दौरे पर आया हुआ एक अंग्रेज़ पत्रकार मुझसे मेरे दफ़्तर में दो दिन ही पहले मिला था और उसने पूछा था कि अगर श्रीमती गांधी यह ताक़त ले लें तो इस पर लोगों की प्रतिक्रिया क्या होगी।

मैंने पूछा कि 'ताक़त लेने' से उसका आशय क्या है तो उसने कहा, "यही शासन-व्यवस्था में एक तरह से अचानक परिवर्तन।" मैंने उसकी बात मानने से इंकार कर दिया। मेरी दलील यह थी कि भारत के निवासी तानाशाही को किसी हालत में स्वीकार नहीं करेंगे, अगर किसी ने तानाशाही लाने की कोशिश की तो विद्रोह हो जायेगा। जिस जनता ने आज़ादी के आंदोलन के दौरान बड़ी-से-बड़ी क़ुर्बानी की है उसमें एक-दलीय शासन-पद्धति के ख़िलाफ़ भी लड़ने की ताक़त है और साहस भी। कांग्रेस ने एक ताक़तवर अँग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ झंडा बुलन्द किया था; अगर किसी ने अन्दर से ही भारतीय लोकतंत्र को नष्ट करने की कोशिश की तो कांग्रेस और अधिक जोश और ताक़त से उसके ख़िलाफ़ झंडा उठायेगी।

मुझे यह बिलकुल भी अन्दाज़ नहीं था कि चार दिन के अंदर मेरे शब्द झूठे साबित हो जायेंगे। इमरजेंसी लागू होने के दो दिन बाद वही अँग्रेज़ पत्रकार कमरे में आया और खड़ा हो मेरी ओर निहारता रहा। वह कुछ नहीं बोला, उसे बोलने की ज़रूरत भी नहीं थी। अंत में उसने पूछा, "तुम्हारे पास इसके लिए क्या जवाब है?" मैंने कहा "सचमुच मुझे कुछ नहीं मालूम।" वह मुझे अब ज़्यादा लज्जित नहीं करना चाहता था, इसलिए वह चला गया। लेकिन वह बाज़ी जीत गया था। लोकतंत्र के प्रति मुझे अपने देश और देशवासियों के विश्वास के बारे में ज़रूरत से ज़्यादा गर्व था।

निश्चय ही जिन संस्थाओं ने लोकतंत्र को बनाये रखा है उन्हें काफ़ी अर्से से कमज़ोर किया जा रहा था। लोगों को पहले तो डर महसूस हुआ, लेकिन बाद में वे सरकार के मनमाने कार्यों और सनक के आदी हो गये थे। शुरू में विरोध था, लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये यह विरोध हलका होता गया। "जब कोई नहीं बोलता तो मैं ही क्यों बोलूँ" ही एक सामान्य नीति बन गयी। हर आदमी ने अपना बचाव करना ज़्यादा ठीक समझा, हालाँकि हम सब जानते थे कि बुरा हो रहा है। आलोचकों का मुँह बंद करने के लिए सरकार ने एक शब्द गढ़ लिया था—प्रतिबद्धता। इसकी कमी समाज के हर क्षेत्र में—जजों, सरकारी कर्मचारियों, पत्रकारों, व्यापारियों और उन सब में पायी जाने लगी जो प्रशासन से सहमत नहीं थे।

इसका असली आशय यह था कि अगर कोई श्रीमती गांधी का समर्थन नहीं करता, चाहे भले ही वह ग़लती पर हों, तो वह प्रतिबद्ध नहीं था। हालाँकि प्रतिबद्धता की प्रमुख कसौटी 'प्रगतिशीलता' और 'धर्मनिरपेक्षता' होनी चाहिए थी, लेकिन यह बातें गौण हो गयीं। कोई चाहे जैसा भी हो उसे श्रीमती गांधी का समर्थक होना ही चाहिए था।

बात यहीं तक ख़त्म नहीं हुई। हाँ में हाँ मिलाने का एक अजीब वातावरण पैदा किया गया। अगर आप प्रतिबद्ध नहीं हैं तो आपको अपने पद से हटाया जाना चाहिए या आपको "फ़ालतू" बना देना चाहिए।

जब सुप्रीम कोर्ट के तीन सीनियर जजों—शेलट, हेगड़े और ग्रोवर का अधिलंघन कर ए० एन० रे को भारत का सर्वोच्च न्यायाधीश नियुक्त किया गया तब यही दलील दी गयी कि ये जज पर्याप्त रूप से 'प्रतिबद्ध' नहीं हैं। इसका मतलब यह था कि ये जज पर्याप्त रूप से पक्षपात-पूर्ण नहीं थे और जब कभी श्रीमती गांधी की चुनाव-याचिका सुप्रीम कोर्ट में आयेगी तब ये जज उनका पक्ष नहीं लेंगे। जब इन जजों का अधिलंघन किया गया तब कुछ विरोध ज़रूर हुआ था, लेकिन बहुत ही हलका-सा। बहुत-से पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों ने यह सोच कर संतोष

कर लिया कि इन जजों का अधिलंघन देश की प्रगति के लिए किया गया है।

जजों की तरह सरकारी कर्मचारियों को भी "प्रतिवद्ध" करना था। उनको कोठी (श्रीमती गांधी की कोठी) का हुक्म मानना जरूरी था, उनको इससे कोई मतलव नहीं कि जिसने हुक्म दिया वह संजय गांधी हैं या आर० के० धवन। सरकारी कर्मचारियों ने सरकार को खुश करने की नीयत से आलोचकों को सताने के लिए ऐसे बहुत-से काम करने शुरू कर दिये जो उनके अधिकार-क्षेत्र के बाहर थे। कुछ ने इसका फ़ायदा बिना पारी की पदोन्नति या वेतन-वृद्धि लेकर उठाया और कुछ को ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्ति मिल गयी।

श्रीमती गांधी ने खुद कहा था कि मुझे 'प्रतिवद्ध' कर्मचारी चाहिए; इस टिप्पणी को वड़े-से-वड़े सरकारी अधिकारी ने बुद्धिसंगत समझा और इसका कोई विरोध नहीं किया।

पत्रकार भी अपवाद नहीं थे। उनकी व्यावसायिक योग्यता इस बात से नापी जाती थी कि वह किस हद तक 'प्रतिवद्ध' हैं। जो इस आदर्श को मानकर नहीं चल रहे थे उनके प्रति भेदभाव किया जाता था। श्रीमती गांधी के सचिव पी० एन० हक्सर 'प्रतिवद्ध' पत्रकारों की विशेप बैठक बुलाते थे। बाक़ी पत्रकार इसका विरोध करने के वजाय 'इन चुनींदा पत्रकारों' से मिलना पसन्द करते थे।

स्वाभाविक है कि जव न्यायतंत्र, सरकारी कर्मचारी और समाचारपत्र 'प्रतिवद्ध' वनना चाहते हों तव न कोई आजादी थी, न असहमति और न कोई विरोध। लोकतंत्र मुरझाना शुरू हो गया था। हर मुल्क में विशिष्ट वर्ग रास्ता दिखाता है—और विशिष्ट वर्ग इन्हीं तीन वर्ग के लोगों से वनता है। लोगों के विचार वदल गये थे, वे अपने को समय के अनुकूल बनाने लगे थे।

कोई सिर उठाता तो उसका मज़ाक उड़ाया जाता था, यहाँ तक कि भला-बुरा भी कहा जाता था। ऐसे में मूल्यों की चर्चा करना बेवकूफ़ी का काम था और मूल्यों से चिपके रहना तो उससे भी बड़ी बेवकूफ़ी थी।

स्थिति का मूल्यांकन करने में मैंने ग़लती यह की थी मैंने सोचा था कि जनता विरोध करेगी, जव जनता यह देखेगी कि वह संस्थाएँ, जिन्हें उसने पाला-पोसा है, नष्ट की जा रही हैं तो वह उठ खड़ी होगी।

वहरहाल अव तो मैं इन दो पुलिस वालों के साथ, जो मेरे पास खड़े थे, घर छोड़ने के लिए तैयार था। लेकिन मेरी बहनें और दूसरे लोग देर लगा रहे थे। मैंने अपने पहली मंज़िल वाले घर से बाहर उस सड़क की ओर देखा, जो उस अर्ध-चन्द्राकार स्थान तक आती थी जहाँ हम लोग रहते थे। चारों तरफ़ खामोशी थी। एक भारी-भरकम पुलिस का सिपाही हाथ में लाठी लिये रास्ता रोककर खड़ा था और वहाँ पर कुछ और लोग भी जमा थे जो स्पष्ट ही साधारण पोशाक में पुलिस वाले थे। इनमें से एक को तो मैंने पहचान लिया था—इसे पिछली रात मैंने गेट की धुँधली रोशनी में कोई अखबार पढ़ते देखा था।

मेरे 'पापों' की सरकारी फ़ेहरिस्त लम्बी और ब्यौरेवार थी : "श्री कुलदीप नैयर ने ग़ैर-कम्यूनिस्ट पार्टियों के आंदोलनों को, जिसका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण कर रहे हैं, लगातार समर्थन दिया है। इन आंदोलनों का उद्देश्य क़ानूनी और संवैधानिक तौर से स्थापित सरकार को उलटना है। इन्होंने इस आंदोलन के लिए छिपे तौर पर अनेक कार्यकलापों में पर्याप्त भाग लिया है, जो निम्नलिखित से स्पष्ट है :

(1) श्री कुलदीप नैयर जामा मस्जिद के इमाम श्री सैयद अब्दुल्ला बुख़ारी

से 28 फ़रवरी 1975 को मिले और उनसे ग़ैर-सी० पी० आई० पार्टियों द्वारा वोट क्लब पर 6 मार्च 1975 को आयोजित रैली में मुसलमान वालंटियरों को ज़्यादा-से-ज़्यादा तादाद में भेजने को कहा, ताकि जामा मस्जिद के इमामत के मसले में जो मुसलमानों से संबंधित सिर्फ़ एक धार्मिक समस्या थी, सरकार द्वारा तथाकथित दख़लन्दाज़ी किये जाने पर मुसलमानों की शिकायतों और असन्तोष को विशेष रूप से व्यक्त किया जा सके।

(2) श्री कुलदीप नैयर ने कांग्रेस (संगठन) की कार्य-समिति की 3 अप्रैल 1975 को जन्तर-मन्तर में हुई बैठक (15/16) में चर्चा में भाग लिया, जो वह पत्रकार की हैसियत से नहीं कर सकते थे। इस समिति ने गुजरात विधान-सभा के चुनाव कराने पर और देश में इमरजेंसी को उठा लेने पर ज़ोर देने के लिए अनिश्चित काल के लिए मोरारजी देसाई द्वारा 7 अप्रैल 1975 से अनशन शुरू करने के निर्णय का पुरज़ोर समर्थन किया।

(3) उन्होंने कांग्रेस (संगठन), अकाली दल, भारतीय लोक दल, भारतीय जन संघ और सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति की दो बैठकों में भाग लिया जो 21 और 22 जून 1975 को हुई थीं। इस बैठक में इलाहाबाद हाई-कोर्ट का फ़ैसला होने पर प्रधानमंत्री के रवैये और उनके द्वारा किये जा रहे कार्यों पर चिन्ता व्यक्त की थी। वह निर्णय लिया गया था कि इस मसले पर जनता से एकजुट हो आंदोलन और सत्याग्रह करने की अपील की जाये और जनमत को आंदोलित किया जाये। श्री कुलदीप नैयर के बारे में यह सूचना मिली है कि उन्होंने समिति को यह विश्वास दिलाया था कि वह पत्रकारों में अपने प्रभाव के द्वारा यह सुनिश्चित करेंगे कि इस अपील का प्रेस द्वारा अधिकाधिक प्रचार हो।

(4) उन्होंने यू० पी०-निवास में 22 जून 1975 को आयोजित ग़ैर-सी० पी० आई० विरोधी पार्टियों की (20/22) बैठक में दुबारा भाग लिया। यह निर्णय लिया गया कि प्रधानमंत्री को त्याग-पत्र देने के लिए मजबूर करने और मौजूदा सरकार को उलटने के लिए देश-व्यापी, सविनय, अवज्ञा आंदोलन छेड़ा जाये और इस काम के लिए मोरारजी की अध्यक्षता में लोक संघर्ष समिति की स्थापना की जाये, जिसके कोषाध्यक्ष और मंत्री क्रमश: अशोक मेहता और नानाजी देशमुख होंगे। यह भी निर्णय लिया गया कि सरकार की सशस्त्र सेनाओं से विद्रोह करने की अपील की जाये। गृहमंत्री को खुलकर चुनौती दी जायेगी कि वह बग़ावत के लिए जे० पी० पर मुक़दमा चलायें। छात्रों से यह कहा जायेगा कि वह अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तैयार हो जायें। श्री कुलदीप नैयर के बारे में यह सूचना मिली है कि उन्होंने इस बैठक में भाग लेने वालों को फिर यह विश्वास दिलाया कि वह पत्रकारों[1] में अपने प्रभाव का पूरा-पूरा उपयोग कर यह सुनिश्चित करेंगे कि इन निर्णयों तथा रैली में किये गये संबोधन का व्यापक रूप में प्रचार हो

---

1. वाशिंगटन में भारत के राजदूत त्रिलोकीनाथ कौल ने कहा कि उन्हें इन आरोपों के ब्यौरों की कोई जानकारी नहीं है। राजदूत ने कहा, "मैं नैयर को जानता हूँ। वह मेरे दोस्त हैं। उनके बारे में कहा गया है कि उन्होंने कुछ ख़बरें विदेशों में छिपा कर भेजी हैं जो क़ानून का उल्लंघन है।"

(श्रीमती गांधी को भेजे गये एक केबुल में लन्दन के 'टाइम्स' ने बताया कि "नैयर ने टाइम्स को कोई ऐसी ख़बरें नहीं भेजी हैं जो भारतीय सेंसरशिप का पालन नहीं करती हों; हमने भी उनसे नहीं कहा है कि वह ऐसा करें।")

सके और राष्ट्र के सभी पत्रों में अपने पत्रकार साथियों से अनुकूल सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखवायेंगे।

"जब से इमरजेंसी की घोषणा हुई है तभी से श्री कुलदीप नैयर गुप्त सूत्रों के द्वारा भूमिगत नेताओं, जैसे नानाजी देशमुख, एम० एल० सोंधी, एम० एल० खुराना आदि, से सम्पर्क बनाये हुए हैं जिससे मौजूदा सरकार के ख़िलाफ़ भूमिगत आंदोलन का संगठन होता रहे। यह पता चला है कि उन्होंने शहरों और गाँवों में हर मुहल्ले में गुप्त समितियाँ बनाने, आकाशवाणी और टी० वी० की खबरों को झूठा ठहराने के लिए अफ़वाह उड़ाने और नजरबन्द राजनीतिक नेताओं पर अत्याचार की कहानियों और देश के विभिन्न भागों में ज़ोरदार प्रदर्शनों की खबरों का प्रचार करने के लिए छिपे-तौर पर पैम्फ़लेट निकालने की राय दी थी।"[1]

मुझे बताया गया कि इस बात के लिए ख़ास तौर से एहतियात बरतने का आदेश दिया गया था कि मैं भूमिगत न हो जाऊँ। लगता है, सरकार को मेरी क्षमता के बारे में मुझसे ज़्यादा पता था।

मैं अपनी बहन की पुरानी परिचित नीले रंग की फ़ियट कार का इंतज़ार कर रहा था। वह चन्द्राकार सड़क पर मोड़ लेकर आती दिखायी दी। मैंने अपना हैंड-बैग उठाया और पुलिस की निगरानी में सीढ़ियों से उतर कर सड़क पर आ गया।

मेरी माँ बीमारी से हाथ-पैरों के बराबर हिलते रहने के कारण गाड़ी में रह गयीं, लेकिन मेरी बहन, पिता और ससुर मेरे पास आ गये और उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। मेरे पिता रो रहे थे, लेकिन मेरे ससुर, जो अँग्रेज़ों के ज़माने में वर्षों तक जेलों में रहे थे, शान्त थे। उन्होंने मज़ाक करते हुए कहा कि मैंने सोचा था कि मैं ही सबसे पहले गिरफ़्तार होऊँगा। उन्होंने कहा, "मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ, क्योंकि मैंने भी उनको एक चिट्ठी लिखी है।"[2]

मेरी माँ की आँखों में कोई भी आँसू नहीं था। उन्होंने कहा, "मैं क्यों रोऊँ?" उन्हें इस बात का गर्व था कि उनका बेटा एक उसूल के लिए जेल जा रहा है। मैं अपने को नहीं रोक पा रहा था। लेकिन उन्होंने मुझे ढाँढ़स दिलाया, "हम लोगों की फ़िक्र मत करो। हम बिलकुल ठीक रहेंगे और तेरी वापसी का इन्तज़ार करेंगे।" मेरी बहन राज ने कहा, "तुम अब नेता हो।" उसकी आँखें गीली थीं। भारती ने अपना मुँह छिपा लिया। जैसे ही मैं पुलिस की जीप में बैठा, राजू धाड़

---

1. शाह कमीशन के सामने ज़िला-मैजिस्ट्रेट सुशीलकुमार ने बताया कि नैयर को गिरफ़्तार करने के आदेश प्रधानमंत्री के निवास-स्थान से उन्हें उप-राज्यपाल के सचिव नवीन चावला की मार्फ़त मिले। जिस पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने मुझे गिरफ़्तार किया उसने यह बताया कि नैयर को गिरफ़्तार करने के लिए आरोप उनको गिरफ़्तार करने के दो या तीन दिन बाद तैयार किये गये थे। यह आरोप के० एस० बाजवा, एस० पी० (सी० आई० डी०) की सूचना के आधार पर तैयार किये गये थे जो उन्होंने उसे दी थी। बाजवा ने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने कोई सूचना दी थी। पी० एस० भिंडर ने गवाही देते हुए बताया कि उन्हें नैयर की गिरफ़्तारी का पता के० डी० नैयर, एस० पी० से चला। उन्होंने एक यही काम किया कि उन्होंने अफ़सरों से कहा कि वह कुलदीप नैयर को 'उचित सम्मान' दें, क्योंकि वह एक श्रेष्ठ पत्रकार हैं।

   इस मामले में भी किशनचन्द ने 'महान प्रधानमंत्री' के हुकुम का 'सिर्फ़ पालन' किया। किशनचन्द ने कहा कि वह मेरी गिरफ़्तारी से खुश नहीं थे, क्योंकि वह मुझे जानते थे, लेकिन ओम मेहता ने उन्हें बताया कि श्रीमती गांधी "उन्हें (नैयर को) गिरफ़्तार किये जाने पर तुली हुई हैं।"
2. इस पत्र में जो कुछ लिखा गया था वह इस पुस्तक में आगे उद्धृत है।

मार कर री पड़ा। लेकिन इस चरम सीमा के बाद इसके उतार जैसी स्थिति भी आयी। जीप स्टार्ट नहीं हो रही थी, उसकी बैटरी कमज़ोर थी और इंजन में जान डालने के लिए इसे धक्का लगाना पड़ा।

"शेर पिंजरे में"—यह कहकर एस०एच०ओ० ने मेरी गिरफ़्तारी की सूचना जीप में लगे वायरलेस सेट पर अपने पुलिस-सुपरिटेंडेंट को दी। यह एक हँसी की बात थी, लेकिन मैं पीछे की ओर अपने उन लोगों की ओर देख रहा था जिनसे मैं मुहब्बत करता था और जिनको मुझे डूबते चाँद की पृष्ठभूमि में मकान पर छोड़ना पड़ा था। मेरी आँखों में आँसू छलछला रहे थे। बहुत-से हाथों ने मुझे विदाई दी और जैसे ही जीप ने मोड़ लिया, मेरी आँखों से वह सब ओझल हो गये।

मुहल्ले में सब लोग अभी भी सोये हुए थे। बहुत-से गेटों पर चौकीदार घूमते हुए नज़र आ रहे थे। तड़का होकर ही चुका था। जो लोग सड़कों पर थे वह कौतुकवश जीप को देखने लगे। पिंजरानुमा एक बस पास से निकल गयी जिसमें बच्चे शोर कर रहे थे। कुछ देर के बाद जीप डिप्लोमेटिक पुलिस-स्टेशन में आ गयी। मैंने इसे सड़क से अपनी गाड़ी से कई बार देखा था, लेकिन मैंने यह नहीं सोचा था कि एक दिन मैं यहाँ क़ैदी बनकर आऊँगा।

एस० एच० ओ० ने मुझसे कहा कि अब मुझे तिहाड़ जेल ले जायेगा, जिसमें अभी कुछ देर लगेगी और इसलिए मैं उसके कमरे में ही रहूँ। मैं दर्शक के रूप में इस जेल में एक बार गया था, जब मैं गृह-मंत्रालय में काम करता था। मुझे याद नहीं आ रहा था कि यह जेल कैसी थी, लेकिन मेरी याददाश्त के मुताबिक़ तब यह नयी बनकर तैयार हुई थी जिसमें कई कँटीले दरवाज़े थे।

एक नौजवान पुलिस-अफ़सर ने मुझे अपना परिचय देते हुए अपना नाम बरार बताया। वह इंडियन पुलिस सर्विस का था और हाल ही में अफ़सर बनकर पुलिस एकेडमी से आया था। इमर्जेंसी लागू होते ही इन सबको जल्दी-जल्दी नियुक्ति दे दी गयी थी और बड़ी तादाद में गिरफ़्तारियाँ करने के लिए ख़ास-ख़ास पुलिस-स्टेशनों का चार्ज दे दिया गया था।

"आप जानते हैं, मैंने पिछले हफ़्ते ही आपकी किताब 'डिस्टेंट नेबर्स' ख़त्म की है।" बरार ने कहा, "मेरी आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी, लेकिन मैंने यह ख़याल भी नहीं किया था कि यह भेंट इस तरह से होगी।" मैंने यह कहकर उसको और ज़्यादा बोलने से रोक दिया, "ठीक है, आपको अपने कर्तव्य का पालन करना है चाहे वह कितना ही अप्रिय क्यों न हो।"

"नहीं, यह मेरे विवेक को कचोटता रहेगा," वह बोला, "मैंने एक बेगुनाह आदमी को गिरफ़्तार किया है।" वह आगे और कुछ नहीं बोल सका, क्योंकि उसकी आँखें डबडबा आयी थीं और वह तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गया।

मैं उससे मिलकर उदास हो गया। पुलिस में काम करने के लिए वह बहुत सुकोमल और मानवीय था। या हो सकता है कि मेरी यह धारणा कि पुलिस का लाठीधारी आदमी दयाशून्य होता है, ग़लत रही हो।

मैं बहुत देर तक अकेला बैठा रहा और काँटेदार खिड़की से जितना देख सकता था, बाहर की दुनिया देखता रहा। मैंने एक स्त्री को देखा जो एक लड़की के बाल सँवार रही थी, शायद वह माँ-बेटी थीं। वह लोग कितने निश्चिन्त और खुश थे! मैं क़ैद में होने के कारण यह महसूस करने लगा था कि मैं सताया जा रहा हूँ। पास में किसी का तेज़ रेडियो बज रहा था और मैं सोचने लगा कि अब हफ़्तों, महीनों और कई साल तक संगीत सुनने को नहीं मिलेगा।

बरार मुझे यह बताने आया कि अब चलना चाहिए। मैं उसके साथ हो लिया। वह बोला कि यह बड़े ताज्जुब की बात है कि सरकार में ऊँचे अधिकारियों ने मेरे बारे में यह सोचा था कि मैं गिरफ़्तारी से बचने के लिए कोशिश करूँगा। किसी नैयर[1] नाम के पुलिस-सुपरिंटेंडेंट को, जिसे मुझे वारंट देने का काम सौंपा गया था, यह चेतावनी दी गयी थी कि अगर मैं गिरफ़्तारी से बच निकला तो उसकी ज़िम्मेदारी होगी। यह शक किया गया था कि एक नैयर दूसरे नैयर को पेशगी ख़बर भिजवा देगा। मैंने उसे कभी देखा नहीं था और मुझे इस बात की खुशी थी कि मैं उससे मिला भी नहीं था।

बरार ने मुझे गले मिलकर विदा किया। उसने एक बार फिर कहा कि सारी ज़िन्दगी उसका विवेक उसे कचोटता रहेगा कि उसने मुझ जैसे आदमी को गिरफ़्तार किया है और मैंने फिर देखा कि वह अपने आँसुओं को रोकने की कोशिश कर रहा है। एस०एच०ओ० पुराना पका हुआ आदमी था। जब वह मुझे देख रहा था तब उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं थे।

जीप फिर ठंडी पड़ गयी थी। इस बार थाने के आदमियों ने धक्का देने में मदद की और जल्दी ही हम लोग चल पड़े। तिहाड़ जाने वाली सड़क पर लोगों का आना-जाना शुरू हो रहा था। सरदार पटेल मार्ग पर खुले और बड़े-बड़े बँगलों में लोग जाग गये थे और पार्कों में कुछ बच्चे अपनी 'आयाओं' के साथ खेल रहे थे। हम इस रईस मुहल्ले को छोड़ ज्यों ही आगे बढ़े, हमने आगे काफ़ी चहल-पहल देखी। ग़रीब लोगों के लिए दिन जल्दी शुरू हो जाता है। सड़क पर भीड़ बढ़ने लगी थी।

जीप रेल के फाटक के पास आकर फिर रुक गयी। जेल अब बहुत दूर नहीं थी। इस बार धक्का लगाने पर भी इंजन स्टार्ट नहीं हुआ। हमने सोचा कि अब बाक़ी रास्ता पैदल चलकर पूरा करना पड़ेगा। तभी क़ैदियों की एक गाड़ी, जिसमें कुछ अपराधी बन्द थे, पास से निकली। हमको देखकर वह रुक गयी। मेरे साथ जो सिपाही थे, वह मुझे उसमें ले गये। मेरे सामने एक क़ैदी बैठा था, उसके हाथों में हथकड़ी थी और पैरों में बेड़ी पड़ी हुई थी। वह पहले तो मुझे नज़र बचाकर देखने लगा जैसे वह मुझे लज्जित नहीं करना चाहता था, लेकिन बाद में वह सीधी नज़रों से देखने लगा। सारे रास्ते हम एक-दूसरे से कुछ भी नहीं बोले, लेकिन हम दोनों एक अजीब संबंध से बँधे जा रहे थे; हम लोग दोनों क़ैदी थे।

जेल की गाड़ी भारी पत्थरों की दीवाल के पास एक विशालकाय लोहे के दरवाज़े पर आकर रुक गयी। इस क़िलानुमा इमारत के ऊपर राष्ट्रीय झंडा फहरा रहा था। मैं ताज्जुब करने लगा। सभी सरकारी इमारतों पर तो यह नहीं फहराता, फिर यहाँ ही क्यों? यह झंडा शायद सत्ता का प्रतीक था। जो लोग इस जेल में

---

1. मेरी गिरफ़्तारी के बारे में जो रिपोर्ट उसने तैयार की थी उसमें लिखा था : "श्री कुलदीप नैयर एस० डी० एम० नई दिल्ली से मिले वारंट के आधार पर 24 जुलाई 1975 को मीसा के तहत नज़रबन्द किये गये। उनको नज़रबन्द करने के लिए आरोपों को बाद में स्पेशल ब्रांच से मिली सूचना के आधार पर तैयार किया गया और उन पर पुरानी तारीख़ डालकर ए० डी० एम० नई दिल्ली को भेज दिया गया। श्री कुलदीप नैयर को नज़रबन्द करने के आदेश डी० आई० जी० (आर०) से टेलीफ़ोन पर प्राप्त हुए। नज़रबन्द करने से पहले श्री कुलदीप नैयर के घर पर डी० आई० जी० (आर०) की हिदायतों के तहत सी० आई० डी० और स्थानीय पुलिस द्वारा निगरानी रखी गयी। श्री कुलदीप नैयर को गिरफ़्तार करने के लिए आदेश जारी करते समय मुझे यह बताया गया कि प्रधानमंत्री की कोठी में लोग यही चाहते हैं।"

बन्द हैं उन्हें तो क़ैद में रोज़ाना, महीनों और सालों हर घड़ी सत्ता का बोझ झेलना होगा, फिर भी उनको सत्ता के अस्तित्व की याद दिलाना ज़रूरी है।

पुलिस के जो सिपाही मुझे अपने साथ लाये थे उन्होंने फाटक खटखटाया। उस फाटक में एक छोटा-सा दरवाज़ा खुला और किसी ने बाहर झाँक कर देखा। वह शायद आने वाले आदमी को पहचानना चाहता था। इस फाटक का कुछ हिस्सा बिना ताले का खुला रहता था। पुलिस के सिपाहियों और फाटक के अन्दर बैठे आदमी के बीच कुछ बातें हुईं। एकाध कागज़ों पर, जो माल की रसीद जैसे थे, दस्तखत किये गये। मुझमें और अन्य क़ैदियों में कोई फ़र्क़ नहीं था—हम सभी 'सिपुर्द' कर दिये गये। मैं इस छोटे दरवाज़े में झुककर घुसा जिससे मेरा सिर न टकरा जाये। मुझे बताया गया कि जब कोई बहुत बड़ा आदमी या अफ़सर यहाँ दौरा करने आता है तभी यह फाटक पूरा खुलता है; बाक़ी लोगों को इसी छोटे और तंग दरवाज़े से आना-जाना होता है, ताकि अपराधियों को यह जानकारी हो जाये कि इसमें घुसना जितना मुश्किल है, उससे ज्यादा मुश्किल इससे बाहर निकलना है।

मैं एक मैले-कुचैले आदमी को सौंप दिया गया। इस आदमी ने धारीदार पाजामा और कमीज़ पहनी हुई थी और इसके सिर पर एक सूती टोपी थी। मुझे बाद में पता चला कि इसे कई साल की क़ैद मिली हुई है और क़ैद के कुछ साल काटने के बाद उससे अब 'अर्दली' का काम लिया जा रहा है। क़ैदियों को उनके काम और व्यवहार के आधार पर ज़िम्मेदारी का काम सौंपा जाता है। आम तौर पर यह 'पदोन्नति' जेल में तीन साल बिताने के बाद होती है।

जेल-सुपरिंटेंडेंट मुझसे मिलना चाहता था। मुझे यह बताया गया कि क़ैदी के लिए यह बड़ी इज़्ज़त की बात होती है। मुझे उसके दफ़्तर के बाहर लकड़ी के एक स्टूल पर बैठने को कहा गया। लेकिन उसने मुझे तुरंत अन्दर बुला लिया—मुझे एक कुर्सी दी गयी; यह भी क़ैदी के लिए इज़्ज़त की बात थी।

"मैं जानता था कि आप जल्दी ही यहाँ आयेंगे।" उसने मुझे बताया। 'मैं आप के लेखों को पढ़ता रहता हूँ। मुझे आपके नज़रबन्द किये जाने की ख़बर कल टेलीफ़ोन पर मिली थी।" ऐसा लगता था कि उसको इस तरह के कई टेलीफ़ोन आते रहते थे। उसकी मेज़ पर टेलीफ़ोन की घंटी अक्सर बज उठती थी। मैं इससे यह जान रहा था कि उसे इस तरह उन लोगों के बारे में बताया जाता था जो उसके यहाँ भेजे जायेंगे। जेल-सुपरिंटेंडेंट परेशान-सा नज़र आता था—वह यात्रियों की भीड़ आने पर फ़ाइव स्टार होटल के रिसेप्शनिस्ट की तरह परेशान था। "मैं इतने आदमियों को कहाँ रखूँगा ? सारी जगह भर गयी है।" वह चिढ़-कर मुझसे बोला। लेकिन होटल पर रिज़रवेशन के काउंटर पर बैठे आदमी की तरह वह यह नहीं कह सकता था कि 'जगह नहीं है'।

मैं इस आदमी से पहले कभी नहीं मिला था, लेकिन वह मुझसे ऐसे मिला जैसे वह मेरा वर्षों पुराना दोस्त हो। वह मुझसे यह बताना चाह रहा था कि वह सहानुभूति रखता है और वह, अगर उसके वश में हो तो, नागरिक अधिकारों के ख़त्म किये जाने के लिए विरोध भी कर सकता है।

जो कुछ मेरे साथ हुआ उससे वह मेरे प्रति बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण महसूस कर रहा था और लग रहा था कि ज्यादती हुई है। इसलिए मैंने उससे पूछा कि क्या मैं टेलीफ़ोन कर सकता हूँ। मैंने सोचा कि मैं अपने परिवार को टेलीफ़ोन कर उन्हें अचम्भे में डाल दूंगा कि मैं बच गया हूँ। लेकिन उसने मुझे समझाया कि यह

क़ानून के खिलाफ़ है कि कोई क़ैदी टेलीफ़ोन का इस्तेमाल करे। पहले तो वह नरमी से और उसके बाद सख़्ती से बोला : "आज से बग़ैर हमारी इजाज़त आप बाहर वालों से कोई ताल्लुक़ नहीं रखेंगे।" मैंने स्वीकृति में अपना सिर हिला दिया। ज़ाहिरा तौर पर बराबरी की बातचीत के बाद वह मुझे मेरी हैसियत बता देना चाहता था—मैं एक क़ैदी था और वह मेरा जेलर।

मैंने अपनी हैसियत स्वीकार कर ली, यह देखकर वह ख़ुश लग रहा था! लेकिन इसके बाद के दो घंटे बड़ी मुश्किल से बीते। मुझे उसकी उर्दू की कुछ नज़्मों को दाद देते हुए सुनना पड़ा। उसने बताया कि यह नज़्में उसकी ख़ुद की लिखी हुई हैं।

तब तक एक टेलीफ़ोन आ गया, जो ज़्यादा महत्वपूर्ण था और मुझे इस जेल-सुपरिंटेंडेंट से छुटकारा मिला। उसने एक दूसरे अर्दली को बुलाया जो धारीदार पाजामा-कमीज़ पहने था और मुझे वार्ड में ले जाने को कहा। उसने डपट कर कहा, "देखो, नैयर साहब को कोई तकलीफ़ नहीं होने पाये।"[1]

इस आदमी ने मेरा हैंडबैग उठाया और सीधा चल पड़ा, वह क़ैदियों की भीड़ को छाँटता हुआ मेरे लिए रास्ता बनाता हुआ चल रहा था। उनके हाथों में हथ-कड़ियाँ पड़ी हुई थीं और जिस तरह से वे हथकड़ियों को देख रहे थे उससे लगता था कि यह उनके लिए एक नयी बात थी—जैसे मेरे लिए मेरी गिरफ़्तारी।

जेल के भीतरी भाग की सुरक्षा के लिए एक और भारी और बड़ा दरवाज़ा था। इस अर्दली ने इस पर दस्तक देते हुए कहा, "कोई आदमी यहाँ से बचकर नहीं निकल सका है।"

मुझे एक बार फिर इस तंग दरवाज़े में झुककर निकलना पड़ा। और उसके बाद अन्दर जाने पर मैंने कई वार्ड देखे, जिनके अलग-अलग लोहे के दरवाज़े थे। "यहाँ अठारह वार्ड हैं," अर्दली ने कहा। मैंने देखा कि अन्दर कई बुर्जियाँ हैं। जब मैं इन बुर्जियों की ओर देख रहा था तो मेरे इस साथी ने बताया कि इन बुर्जियों पर चौबीसों घंटे पुलिस के सिपाही मशीनगन लिये हुए पहरा देते रहते हैं। "कोई भी यहाँ से बचकर नहीं निकल सका है," उसने फिर दुहराया, जैसे उसे यह शक हो रहा था कि मैं जेल तोड़कर भाग निकलने की सोच रहा हूँ।

कुछ और आगे चलने के बाद अर्दली रुक गया। उसने फुसफुसाते हुए कहा, "यह ज़नानियों का वार्ड है...यहाँ चन्द्रेश शर्मा रहती है," और उसकी हँसी फूट पड़ी। यह नाम तो जाना-पहचाना था; इसके बारे में यह आरोप था कि इसने आँखों के मशहूर स्पेशलिस्ट डॉक्टर एन० एस० जैन की बीवी को मरवाने की साज़िश की थी और डॉक्टर के बारे में यह कहा गया था कि इसने अपनी बीवी का खून किया था जिससे वह श्रीमती शर्मा के साथ रह सके। "वह देखने में कैसी है?" मैंने पूछा, क्योंकि यह स्पष्ट था कि वह मुझसे कुछ सुनना चाहता था—शायद वह हर नये क़ैदी से, जिसे यहाँ लाता था, यही बात करता था। "मैं उसके लिए किसी का खून नहीं करूँगा," उसने हँसकर जवाब दिया—शायद यही जवाब वह हमेशा देता था।

यह अर्दली मुझे लोहे के एक दूसरे दरवाज़े की ओर ले गया और बोला, "यह आपका वार्ड है।"

---

1. बाद में जब मैंने दूसरे नज़रबंदों से बातचीत की तो मुझे पता चला कि उसने ऐसी ही बात हर किसी से कही थी।

मैं ख़ाकी कपड़े पहनें एक वार्डर को सौंप दिया गया। वह कामकाजी लगता था, उसने पहले तो मेरी और बाद में मेरे हैंडबैग की तलाशी ली। उसने पाजामों में लगे कमरबन्दों को ज़ब्त करना चाहा, लेकिन वह बाद में नरम पड़ गया—शायद वह यह समझ गया कि मैं इन कमरबन्दों का इस्तेमाल आत्महत्या के लिए नहीं करूँगा।

जेल में

मुझे टीन की एक चम्मच और टीन का एक कटोरा और छोटी-छोटी दरियों के कुछ टुकड़े बिस्तर के लिए दिये गये और बैरकों की ओर ले जाया गया।

वहाँ पर लगभग पन्द्रह-बीस आदमी थे। मुझे आते ही उन्होंने घेर लिया। इनमें से बहुत-से लोग मुझे मेरी रचनाओं की वजह से जानते थे और उन्हें यह जानने की लालसा थी कि बाहर दुनिया में—उस दुनिया में जिससे वह अलग कर दिये गये हैं—क्या हो रहा है। किस तरह का आंदोलन चल रहा है? क्या बड़े पैमाने पर दंगे भी हुए हैं?

वह इस बात पर आश्वस्त-से लगते थे कि विद्रोह का झंडा ऊँचा है। उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं होता था कि बाहर सिर्फ़ श्मशान की शान्ति है—आज़ादी खून का एक बूँद भी गिराये बिना मर चुकी है। बुद्धिजीवी क्या कर रहे हैं? जब मैंने यह स्पष्ट बताया कि वे तो पहले ही मर चुके हैं तो सन्नाटा छा गया।

तभी किसी ने ग़ुस्से में भर कर कहा कि यह सब जयप्रकाश नारायण की ग़लती से हुआ। जब राष्ट्र संघर्ष के लिए तैयार नहीं था तब उन्होंने इसका आह्वान ही क्यों किया? किसी ने कहा कि यह तो नेहरू-जैसी बात हुई जिन्होंने लड़ाई के लिए तैयारी किये बिना बड़े गर्व से पत्रकारों से कहा था, "मैंने सेना से कह दिया है कि तुम चीनियों को बाहर खदेड़ दो," और यही ऐलान हार का कारण बना।

भूमिगत आंदोलन का क्या हाल है? मैंने कहा कि चूँकि नेताओं को गिरफ़्तारी का पहले से कोई पता नहीं था, इसलिए सारी चीज़ों को संगठित होने में कुछ समय लगेगा। लेकिन नानाजी देशमुख और जार्ज फ़र्नानडीज़ पुलिस की आँखों से बच निकले हैं और संघर्ष को जारी रखने में कुछ-न-कुछ ज़रूर कर रहे होंगे।

यह सुनकर जेल के मेरे साथी खुश नज़र आये। लेकिन मैंने उन्हें बताया कि जनता इस बात से असन्तुष्ट है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई भी कार्यकर्ता गिरफ़्तार होने के लिए आगे बढ़कर नहीं आया है। नज़रबन्दों में से कुछ लोगों ने जो संघ के लगते थे यह स्पष्ट किया कि गिरफ़्तारी के लिए आगे आना संघ की नीति नहीं है। उन्होंने कहा, "श्रीमती गांधी हम लोगों को उत्तेजित करना और समाप्त करना चाहती हैं. लेकिन हम उन्हें ऐसा कोई मौक़ा नहीं देंगे। हम अपने मौक़े का इन्तज़ार कर रहे हैं।"

हम अभी बात ही कर रहे थे कि करछी से थाली बजाये जाने की आवाज़

सुनायी पड़ी। मैं भौंचक-सा रह गया, लेकिन सभी नज़रबन्द आदमी जल्दी से अपनी-अपनी दरियाँ, थाली और चम्मच लेकर दौड़ पड़े और एक पेड़ के नीचे इकट्ठे हो गये। मैं भी उनके पीछे-पीछे हो लिया। सामने कुछ खुली जगह थी। यहाँ पर बनी दो अन्य बैरकों से कुछ और आदमी भी आ गये—तीन बैरकों को मिला-कर एक वार्ड बनता है। दो दिन पहले पानी बरसने से ज़मीन अभी भी गीली थी। हम लोगों ने दरियाँ खोलकर बिछा दीं और लाइन बनाकर बैठ गये। तभी कुछ साथ के क़ैदी रोटियाँ ले आये और उन्होंने हमारे सामने परोस दीं। वहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थीं—हर एक को बात करते समय मुँह पर हाथ रखना पड़ता था कि कहीं कोई मुँह में न चली जाये। जब मैं खाने के लिए पहुँचा तो खाना इतना गरम था कि मक्खियाँ उस पर नहीं बैठ सकती थीं।

तभी कोई चिल्लाया, "ठहरिये, पहले हम लोग मंत्र पढ़ लें।" यह ईश्वर की एक छोटी-सी प्रार्थना थी। इसके बाद लोगों ने खाने की तरफ़ हाथ बढ़ा दिये। इसी समय मैंने उन्हें रोक दिया। वहाँ नज़रबन्द लोगों में मैंने तीन मुसलमानों—राव शमशाद अली, अब्दुल रऊफ़ और सक़ाब—को पहचान लिया था, जिनको मैं जानता था। ये वह लोग थे जिनके साथ मैं एक साल पहले दिल्ली के किशनगंज इलाक़े में हिन्दू-मुसलिम दंगे के बाद एक हफ़्ते तक रहा था।

मैंने एक से कहा, "क्या आप बिस्मिल्ला नहीं कहेंगे।' वह बोला, "हाँ, लेकिन अपने ही मन में।" मैंने कहा, "ज़ोर से कहिये।" और हमारे खाना शुरू करने से पहले, हिन्दू-मंत्र के बाद बिस्मिल्ला पढ़ा गया।

दाल बहुत पतली और रोटियाँ आधी सिकीं थीं। जब दुबारा दाल दी गयी तब मैंने देखा कि उसमें कुछ मक्खियाँ उतरा रही हैं। मैं घबरा गया। लेकिन पास में बैठे आदमी ने कहा, "चिन्ता मत कीजिये, आप इनके आदी हो जायेंगे।" वह सही था। कुछ दिनों के बाद मैं खाने में मक्खी देखता-देखता इतना आदी हो गया कि मैं उनको बड़े आराम से निकाल देता था, बग़ैर मतली आये मैं खाना शुरू कर देता था। ईश्वर ने जिन प्राणियों का सृजन किया है उनमें मनुष्य, निश्चय ही, एक ऐसा प्राणी है जो अपने को हर परिस्थिति के अनुसार ढाल लेता है।

जिस बैरक में मुझे रखा गया उसमें कभी उन क़ैदियों की क्लास लगा करती थी, जिन पर मुक़दमा चल रहा होता था। यह अब बी०आई० पी० लोगों के लिए खोल दी गयी थी। वहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिग्गज नेता मेरे साथी थे। अन्य बैरकों की तुलना में इस बैरक की खिड़कियों में लोहे की छड़ें कम लगी हुई थीं और यहाँ सोने के लिए ईंटों के चबूतरों के बजाय बान की चारपाइयाँ थीं। लेकिन यहाँ छत में एक ही पंखा था, जिसकी हवा कुछ ही दूर जाती थी। हममें से बहुतों ने ऐसी स्थिति को देखा तो था, लेकिन इसका कभी अनुभव नहीं किया था। गर्मी थीं, लेकिन गर्मी से ज़्यादा मच्छरों का प्रकोप था जिससे हम सभी परेशान थे। मैं अपने परिवार और दोस्तों के बारे में सोचने लगा, जिन्हें मैं बाहर छोड़ आया था कि अब तक बहुत-से लोगों को मेरी गिरफ़्तारी का पता चल गया होगा। एक नज़रबन्द आदमी ने, जो शाम को आया था, मुझे बताया कि उसने मेरी गिरफ़्तारी की खबर पुरानी दिल्ली में सुनी थी।

शाम रात में बदल गयी। रात में खाना (फिर वही रोटियाँ और दाल) खाने के बाद हम में से कुछ लोग बातें करते रहे। यहाँ छोटी से भी छोटी ख़बर महत्वपूर्ण थी। इन ख़बरों को सुन कर वे लोग यह अनुभव करते थे कि बाहर की दुनिया से उनका संबंध अभी तक बना हुआ है, जिससे वे लोग एक महीने से

भी ज्यादा समय से अलग थे।

मैंने सोने की कोशिश की, लेकिन रात के दो बजे तक भी आँख न लग सकी (जेल का गजर एक-एक घंटे के बाद दिन-रात बजता रहता था)। सारी रात मच्छर भनभनाते रहे और जो चारपाई दी गयी थी वह मुझ-जैसे छह फ़ुट के आदमी के लिए छोटी थी। मैं घर में जिस गद्दे पर सोता था उसकी तुलना में यह दरियाँ कुछ भी नहीं थीं। और चूँकि क़ैदियों को कोई तकिया नहीं दिया जाता है, मैंने सिर को सहारा देने के लिए अपनी बाँह का इस्तेमाल किया। इसके अलावा, मेरी चारपाई पंखे से दूरी पर थी। इस बैरक में सिर्फ़ एक ही पंखा था। हम सभी अट्ठाइस आदमी एक पंखे के नीचे नहीं आ सकते थे।

दूसरे दिन चारपाई के एक किनारे पर बैठकर मैं छड़ों से बाहर देखने लगा। सारी रात मेरा बोझ सहकर भी चारपाई अपने पैरों पर टिक नहीं सकी थी। बाहर, हाल की बरसात से एक तालाब-सा बन गया था। मैंने देखा कि इस बरसाती पानी के निकलने का कोई रास्ता नहीं है और यह यूँ ही सूखता रहेगा। हम लोगों को कई दिनों तक इन्तज़ार करना पड़ेगा कि ज़मीन अच्छी तरह सूख जाये और हम लोग यहाँ रिंग टेनिस खेल सकें।

अचानक इस तालाब में दो सफ़ेद परछाइयाँ चमक उठीं और मैंने देखा कि इनमें से एक तो मेरे ससुर हैं। हमेशा की तरह वह स्वच्छ खादी पहने हुए थे; उनके पीछे एक क़ैदी था, जो अपने सिर पर एक सूटकेस और बिस्तरबंद लिये हुए था।

मैंने सोचा कि मेरे ससुर मुझसे मिलने और बिस्तर देने आये हैं, जो मैं अपने साथ नहीं लाया था। उन्होंने मुझे इसी खुशफ़हमी में रहने दिया। जब मैंने उन्हें बिस्तर के लिए धन्यवाद दिया तब वह थोड़ा मुसकरा कर बोले, "तुम बहुत-सी चीज़ें छोड़ आये थे, मैंने सोचा कि मैं तुमसे मिलूँगा और उन्हें तुम्हें दे दूँगा।" मैं तब यह बिलकुल नहीं जानता था कि ऐसी मुलाक़ात सिर्फ़ फाटक पर ही होती है और स्टाफ़ के अलावा कोई भी 'बाहरी आदमी' जेल के अन्दर नहीं आ सकता है।

लेकिन मेरे साथी क़ैदी मुझसे ज्यादा जानते थे। उन्होंने पूछा कि उन्हें क्यों भेजा गया है, तब मैंने जाना कि वह भी एक क़ैदी थे। मेरी बैरक के एक साथी ने कहा कि अब गांधीवादियों के गिरफ़्तार होने की बारी आयी है। मेरे ससुर भीमसेन सच्चर 1919 से गांधीवादी थे, जब उन्होंने अंग्रेज़ों से असहयोग करने की गांधीजी की अपील पर अपनी पढ़ाई छोड़ दी थी। एक क़ैदी ने कहा कि अगर श्रीमती गांधी एक ऐसे आदमी को गिरफ़्तार कर सकती हैं जो पंजाब का मुख्यमंत्री, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश का राज्यपाल और श्रीलंका में भारत का उच्चायुक्त रहा हो तो वह कुछ भी कर सकती हैं।

मेरे ससुर ने हमें बताया कि उन्होंने और सात अन्य आदमियों ने (महात्मा गांधी के सचिव प्यारेलाल ने आख़िरी वक़्त हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया) बिना मुक़दमा चलाये लोगों को नज़रबन्द करने और समाचारपत्रों पर पाबन्दी लगाने के खिलाफ़ विरोध में प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा था। वह पत्र[1] इस प्रकार था :

---

1. मुझे बाद में पता चला कि अधिकारियों ने यह समझा था कि यह पत्र मैंने लिखा था। उन्होंने यह निष्कर्ष इस बात से निकाला कि मेरे ससुर और उनके पाँचों दोस्तों ने अपने पत्र में समाचारपत्रों की भूमिका पर नेहरू के उसी कथन को उद्धृत किया, जिसे मैंने पहले श्रीमती गांधी को लिखे अपने पत्र में उद्धृत किया था। इन लोगों ने यह उद्धरण मेरी पुस्तक 'इंडिया आफ़्टर नेहरू' से लिया था।

माननीया प्रधानमंत्री,

आमतौर पर प्रधानमंत्री का समय बहुत ही बहुमूल्य होता है, उसे छोटी-छोटी बातों के लिए नहीं लिया जाना चाहिए। लेकिन चूँकि पिछले कुछ दिनों से आप मुक्त रूप से सभी तरह के विचारों वाले लोगों से निकट निजी-सम्पर्क के लिए मिलती रही हैं, हमारे मन में भी यह उत्साह हुआ कि हम आपका बहुमूल्य समय लें।

2. हम आपके सह-देशवासियों में से अत्यन्त विनम्र देशवासी और सामान्य नागरिक हैं, जो मुख्यत: रचनात्मक कार्यों में रुचि रखते हैं। हममें से कोई भी व्यक्ति किसी भी राजनीतिक पार्टी से संबंधित नहीं है। हमारा कोई भी राजनीतिक स्वार्थ नहीं है और न किसी राजनीतिक पद या सत्ता प्राप्त करने के इच्छुक हैं। हमारी मुख्य रुचि व्यक्ति की स्वतंत्रता और मर्यादा को बनाये रखने में है।

3. हम पंडित जवाहरलाल नेहरू को भारतीय लोकतंत्र का एक प्रधान निर्माता मानते हैं। वह कहा करते थे : "किसी भी व्यक्ति को आलोचना से परे नहीं होना चाहिए चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो।" पंडितजी ने ही समाचार-पत्रों की आज़ादी के बारे में कहा था :

"मेरे विचार में उदारतापूर्वक समाचारपत्रों की आज़ादी सिर्फ़ एक नारा नहीं है बल्कि लोकतंत्रीय पद्धति का अभिन्न अंग है। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि अगर सरकार समाचारपत्रों द्वारा अपनी आज़ादी के इस्तेमाल को पसन्द न करे और खतरनाक समझे तो भी समाचारपत्रों की आज़ादी में दख़ल देना ग़लत होगा। पाबन्दियाँ लगाने से आप किसी चीज़ को बदल नहीं सकते, आप सिर्फ़ कुछ बातों के खुलकर कहने पर रोक लगाते हैं और इससे इन बातों की पृष्ठभूमि में निहित विचारों और भावनाओं का और ज़्यादा प्रसार होने में सहायता मिलती है। इसलिए प्रतिबन्धित या नियंत्रित समाचारपत्रों के बजाय मैं चाहता हूँ कि समाचारपत्र पूरी तरह से आज़ाद रहें, चाहे इस आज़ादी के ग़लत इस्तेमाल किये जाने से कितना ही बड़ा ख़तरा क्यों न उठाना पड़े।"

उन्होंने हमें यह अविस्मरणीय नारा तब दिया था, जब आज़ादी की लड़ाई में अंग्रेज़ हम पर ज़ुल्म बरसा रहे थे—"आज़ादी ख़तरे में है; इसकी जी-जान से रक्षा करो।" उनकी याद कर हमारा गला भर आता है, क्योंकि अगर आज वह जीवित होते तो वह हमें आह्वान करते कि "लोकतंत्र ख़तरे में है, जी-जान से उसकी रक्षा करो।"

4. हम सरकार के इस अधिकार पर विवाद नहीं उठा रहे हैं कि संविधान के अंतर्गत आपातकालीन व्यवस्था की वह सहायता ले सकती है और इसके लिए पहल भी उसी को करनी है। लेकिन यही काफ़ी नहीं है। इसके बाद भी बहुत कुछ करना बाक़ी रह जाता है।

5. जन-प्रिय सरकार का कर्तव्य है कि जनता को, जिससे उसे जीवन मिलता है, संतुष्ट करे कि क़ानून की आपातकालीन व्यवस्था को लागू करना बिलकुल ही अनिवार्य हो गया है। यह मौजूदा समस्या पर मुक्त और सार्वजनिक रूप से चर्चा के बिना संभव नहीं है। इस समय तो सामान्य जनता को इस बात की आज़ादी प्राप्त नहीं है कि वह इस विषय पर चर्चा कर सके। इसके विपरीत कुछ विशिष्ट वर्ग के लोगों को, जो सरकार को खुश कर लाभ उठा रहे हैं

या उठाना चाहते हैं, पूरी आजादी मिली हुई है कि सरकार के निर्णय के समर्थन में प्रदर्शन आदि करें। क्या यह सामान्य जनता के हित में है? इस स्थिति का दुष्परिणाम यह है कि उन समाचारपत्रों को छोड़कर सभी समाचारपत्रों का गला घोंट दिया गया है, जो सरकार की नीति और सरकार द्वारा अपनाये जा रहे उपायों का समर्थन कर रहे हैं और जो सरकारी पार्टी के प्रचार में सहायक हो रहे हैं। जन-प्रिय सरकार को चाहिए कि वह समान भाव से समाज के सभी वर्गों की बातों को सुने।

6. हम यह दोहराते हैं कि क़ानून तोड़ने वालों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के लिए आपके पास पर्याप्त शक्ति होते हुए भी और अधिक शक्ति प्राप्त करने के आपके अधिकार को हम चुनौती नहीं देते हैं, लेकिन हमारी समझ में यह नहीं आता कि जनता को—जनता के सभी वर्गों को—खुलकर सरकार द्वारा किये जा रहे उपायों के गुणावगुण पर चर्चा करने के लिए सामान्य रूप से प्राप्य अवसर का क्यों निषेध किया जा रहा है!

7. ऐसे समाचारपत्रों के खिलाफ़, जो सिर्फ़ सनसनीखेज ख़बरें छापते हैं या राजनीतिक नेताओं पर सार्वजनिक रूप से कीचड़ उछालते हैं, चाहे वे नेता आपकी पार्टी के हों या विरोधी पार्टी के, कार्रवाई करने के बजाय हर समाचार और टिप्पणी को छपने से पहले सेंसर किया जाता है। यह हमारे संसदीय लोकतंत्र पर कुठाराघात है कि हमारी संसद की कार्रवाई भी बिना सेंसर हुए समाचारपत्रों में प्रकाशित नहीं हो सकती। अखिल-भारतीय समाचारपत्रों के सम्पादक ससरशिप के विरोध-स्वरूप सम्पादकीय कालम को खाली नहीं छोड़ सकते, क्योंकि उन्हें आपके सूचना और प्रसारण-मंत्री द्वारा बदला लिये जाने का डर है और उन्हें मजबूर किया जाता है कि वह लिखें तो आपके समर्थन में, अन्यथा बिलकुल ही न लिखें। जनता की नागरिक स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों और राजनीतिक चर्चा करने और समाचारपत्रों या जन-सम्पर्क के अन्य स्रोतों से निष्पक्ष समाचार प्राप्त करने के उनके अनतिक्रम्य अधिकारों का बिना खेद व्यक्त किये हनन कर दिया गया है।

8. विरोधी नेताओं और स्वयं आपकी पार्टी के असन्तुष्ट लोगों को क़ानून की अदालत में मुक़दमा चलाये बिना जेलों में बन्द कर दिया गया है। हमें पूरी आशा है कि जो संसद-सदस्य गिरफ़्तार हो चुके हैं उन्हें संसद के चालू सत्र में अपनी बात कहने का अवसर दिया जायेगा। क्या यह सचमुच ज़रूरी था कि जिन राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं को आपने गिरफ़्तार किया है उनके नाम जनता को न बताये जायें और उनके निकट संबंधियों को उनसे मिलने या उनके लिए क़ानून के तहत बचाव करने का मौक़ा नहीं दिया जाये, चाहे वह मौजूदा अध्यादेशों के अधीन संभव हो। गिरफ़्तार हुए लोगों में कुछ लोग तो अभी हाल तक आपके मंत्रिमंडल में मंत्री और राज्यों में मुख्यमंत्री और मंत्री रहे हैं। क्या ये सचमुच रातोंरात ऐसे देशद्रोही हो गये कि ये इस लायक़ भी नहीं रहे कि इनके नाम और इनके पते-ठिकाने जनता को या उनके निकट संबंधियों को बताये जायें?

9. आपके राजनीतिक समर्थकों के अलावा दिल्ली में आम आदमी अब डरा हुआ-सा बात करता है जैसा कि कम्युनिस्ट देशों के लोग करते हैं, वह अब कॉफ़ी हाउस या बस-स्टैंड पर राजनीतिक चर्चा नहीं करता और कोई भी राय व्यक्त करते समय अग़ल-बग़ल देख लेता है। डर और राजनीतिक दमन का

वातावरण छाया हुआ है और आपके दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले राजनीतिक प्रबुद्ध लोग बड़ी सावधानी से चुप रहना पसन्द करते हैं और इनमें से कुछ को हमेशा यह डर बना रहता है कि उनका भी दरवाज़ा रात में खटखटाया जायेगा।

10. क्या भय का यह दैत्य हमें दुबारा निगल जायेगा, जिसे समूल नष्ट करने के लिए हमारे प्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपना सर्वस्व—अपनी धन-दौलत, ऐशो-आराम, अपने माँ-बाप और यहाँ तक कि अपनी पत्नी का—बलिदान कर दिया था ? वह भय को भारत का सबसे बड़ा शत्रु मानते थे। अच्छा हो कि हम उनके इन स्मरणीय शब्दों से प्रेरणा लें :

"हमारे प्राचीन ग्रंथों में बताया गया है कि मनुष्य या राष्ट्र के लिए 'अभय' सबसे बड़ा वरदान है, जो केवल शारीरिक साहस नहीं है बल्कि मन से भय का निकल जाना है। हमारे इतिहास के आरंभ में जनक और याज्ञवल्क्य ने कहा था कि राष्ट्र के नेताओं का काम वहाँ के निवासियों को निर्भय बनाना है। लेकिन अँग्रेज़ों के शासन के अधीन भारत में भय, आतंक, दमन, और दम घोंटने वाला भय प्रधान रूप से व्यापत रहा—यह भय सेना से भय, पुलिस से भय और देशव्यापी गुप्तचर सेवा से भय और कुचल देने के लिए बनाये गये क़ानून का भय था। इसी सर्वव्यापी भय के ख़िलाफ़ गांधीजी ने अपनी गंभीर और संकल्प भरी आवाज़ को बुलन्द किया था कि 'डरो मत'।"

11. मौजूदा परिस्थितियों को देखकर हर नागरिक और ख़ास कर स्वतंत्रता-सेनानियों की बची हुई बूढ़ी पीढ़ी हैरान है। हमें इस पुकार के अनुसार काम करना है। इसलिए हमारा यह इरादा है कि इस बात की चिन्ता किये बिना कि इसका हमें क्या नतीजा भोगना पड़ेगा, विशेषाधिकारों द्वारा स्वयं की रक्षा करने वाली सरकार के गुण-दोषों पर चर्चा करने के लिए हम 9 अगस्त 1975 से सार्वजनिक भाषण और सार्वजनिक सम्मेलन करने और समाचार-पत्रों की आज़ादी के अधिकारों का खुलकर समर्थन करेंगे। इसका उद्देश्य अधिकारियों को परेशानी में डालना या अनावश्यक आंदोलन करना नहीं है। हमारी यह आत्म-तपस्या मातृभूमि के चरणों में एक तुच्छ भेंट होगी, जिसकी बेड़ियों को काटने में हमें राष्ट्रपिता के महान नेतृत्व में अपना अकिंचन योगदान करने का गौरव प्राप्त हुआ था।

भवदीय

ह० (1) भीमसेन सच्चर	20, तुग़लक क्रीसेंट, नई दिल्ली-11
ह० (2) एस० डी० शर्मा	ए-312 डिफ़ेंस कालोनी, नई दिल्ली-24
ह० (3) जे० आर० साहनी	आध्यात्म साधना केन्द्र, छतरपुर रोड (महरौली), नई दिल्ली-30
ह० (4) विष्णुदत्त	डब्ल्यू० ज़ेड, 1282, नंगल राया, नई दिल्ली-56
ह० (5) किशनलाल वैद्य	नजफ़गढ़, नई दिल्ली-43
ह० (6) सेवकराम	लाजपत भवन, लाजपतनगर, नई दिल्ली-24
ह० (7) जे० के० शर्मा	बी-999, शास्त्रीनगर, दिल्ली-52
ह० (8) के० के० सिन्हा	बी-97, नीति बाग, नई दिल्ली-49

उन लोगों को सीमेंट के चबूतरों पर अपना बिस्तर बिछाने, अपना सामान क़रीने के साथ लगाने और रोज़ाना का काम शुरू करने में देर नहीं लगी। ऐसा लगा, जैसे वह यहाँ महीनों से रह रहे हैं। कोई चर्खा कातने लगा, जिसे वह अपने साथ लाया था, कोई ज़ंग लगे हैंडपम्प पर जाकर अपने कपड़े साफ़ करने लगा और कोई गीता का पाठ करने लगा।

"आपने कितनी जल्दी इसे अपना घर बना लिया," मैं अपने ससुर से बोला। उन्होंने जवाब दिया—"तुम पहली बार जेल आये हो, तुम जल्दी ही इसके आदी हो जाओगे।"

वे हमारे साथ सिर्फ़ एक दिन रहे। कुछ कारणों से, जिन्हें जेल के अधिकारी ही जानते थे, एक को छोड़कर बाक़ी सभी अम्बाला जेल ले जाये गये। जो हमारे साथ रह गये थे उन्हें हम वैद्यजी कहते थे। उनके पास आयुर्वेद की दवाइयाँ थीं और जब कभी कोई बीमार पड़ता वह उसका इलाज करते। जो लोग निराश थे, वह उनको सांत्वना भी देते थे।

हम लोग उनके चले जाने पर उदास थे, वह हम लोगों को प्यार करते थे। मेरे ससुर की उम्र 82 साल थी और दो व्यक्ति 75 साल से ऊपर के थे। चूँकि वह उर्दू और फ़ारसी अच्छी जानते थे—वह पश्चिमी पंजाब के थे—इसलिए हममें जो मुसलमान थे उन्हें उनके साथ बात करने के लिए काफ़ी मसाला मिल जाता था।

हमारी रसोई का इंचार्ज देविंदर जैन नाम का क़ैदी, जिसने यह कसम खा रखी थी कि जब तक श्रीमती गांधी हटा नहीं दी जाती हैं तब तक मैं दाढ़ी नहीं बनाऊँगा, इन लोगों को विदाई-भोज देने के लिए उस दूध की खीर बना लाया, जो हम अपनी सवेरे की चाय में डालते। इन लोगों को सवेरे जाना था, लेकिन इनको अपने साथ ले जाने वाला पुलिस का दस्ता दोपहर के बाद आया।

हम लोग उन्हें विदा देने के लिए लोहे के फाटक तक गये जो हमारी लक्ष्मण-रेखा थी। मेरे ससुर की आँखें गीली हो आयीं और मेरी भी। मुझे उनकी चिन्ता सता रही थी, क्योंकि उन्हें सवेरे से बुखार था। उन्होंने मुझे विदा करते हुए कहा, "देखो, तुम मुझे अम्बाला जेल के पते पर चिट्ठी भेज सकते हो।"

उनके चले जाने के बहुत देर बाद हम लोगों ने इस बात पर विचार किया कि उन्हें क्यों नज़रबंद किया गया। सिर्फ़ एक चिट्ठी लिख देने से श्रीमती गांधी ने उन्हें जेल में डाल दिया है। किसी ने कहा कि श्रीमती गांधी अब काफ़ी हताश हो चुकी हैं, नहीं तो वह ऐसे बड़े और बूढ़े नेताओं को जेल न भेजतीं। यह भी हो सकता है कि वह सबके दिमाग़ में यह आतंक पैदा करना चाहती हैं कि जो उनका विरोध करेगा वह बचकर कहीं नहीं जा सकता।

जब तत्कालीन गृह-मंत्री ब्रह्मानन्द रेड्डी आंध्र प्रदेश में मंत्री हुआ करते थे तब मेरे ससुर वहाँ के राज्यपाल थे। मैं सोच रहा था कि वह उनकी गिरफ़्तारी का विरोध कर सकते थे, हालाँकि मैं पूरी तरह समझता था यह मुमकिन नहीं था।

मुझे याद आया कि जगजीवनराम भी 26 जून 1975 की सुबह को इमरजेंसी की ख़बर सुनकर कितने घबरा गये थे। उस दिन हम दस पत्रकार उनसे मिलने के लिए उनके बरामदे में उनका इंतज़ार कर रहे थे। उन्होंने डेढ़ घंटे के बाद हम लोगों को बुलाया और सिर्फ़ यह कहा : "मुझे इस बारे में कुछ नहीं कहना है।" यह सुनकर हम लोग भौंचक रह गये। उनके बारे में यह कहा गया था कि उन्होंने चन्द्रशेखर, कृष्णकान्त और कुछ अन्य लोगों को श्रीमती गांधी से इलाहाबाद हाई-कोर्ट के फ़ैसले के बाद इस्तीफ़े की माँग करने के लिए उकसाया था।

बाक़ी लोग चले गये, मैं वहाँ रुका रहा और बाद में खुद ही अन्दर घुस गया। लेकिन जगजीवनराम ने फिर भी आगे एक शब्द नहीं कहा। कुछ देर बाद वह बोले कि वह शायद गिरफ़्तार कर लिये जायेंगे। और यह उन्होंने बड़ी सावधानी से टेलीफ़ोन के रिसीवर को नीचे रखते हुए कहा; वह सोचते थे कि अगर रिसीवर रखा रहा तो उनकी यह बातचीत टेप हो सकती है।

मैं जब उठने लगा तब उन्होंने मुझसे कहा, "मेरे स्टेनो से सम्पर्क बनाये रखियेगा और अगर आप मेरे बारे में कुछ सुनें तो उसे बता दीजियेगा।" ये सब कितने कमज़ोर थे!

जेल में जब किसी को यह कहना होता कि सभी नेताओं ने कुछ निजी स्वार्थों के लिए सिद्धांतों और मूल्यों को ताक़ पर रख दिया है तब जगजीवनराम का नाम खास तौर से लिया जाता था। कोई बड़ा मंत्री या कांग्रेस का नेता विरोध क्यों नहीं करता?

मैं जल्दी ही इन चर्चाओं का, जिनका कोई अन्त ही नहीं था, आदी हो गया, जैसे मैं जेल की ज़िन्दगी का आदी हो गया, हालाँकि तिहाड़ में परिस्थितियाँ बड़ी ही कठोर और घिनावनी थीं। हमारी 'डॉरमीटरी' में अट्ठाइस साथियों[1] के लिए सिर्फ़ तीन सूखे पाख़ाने थे और हम लोगों को बड़े तड़के से ही लाइन लगानी पड़ती थी। लम्बी सज़ा पाया हुआ एक क़ैदी हमारा जमादार था और उसे इस काम के लिए तनख्वाह के रूप में हर महीने कुल दस रुपये मिलते थे। वह पाख़ाने को दिन में सिर्फ़ एक बार साफ़ करता था। शाम को जब कभी उधर से होती हुई हवा का झोंका हमारी डॉरमीटरी में आता तो बदबू-ही-बदबू भर जाती, जो अगरबत्तियाँ, जिन्हें हमारे कुछ नज़रबन्द साथी अपने साथ ले आये थे, जलाने पर भी दूर नहीं होती थी।

लगता था, इस जमादार की मेरे ऊपर ख़ास मेहरबानी रहती थी। वह जैसे ही मुझे जाता देखता, सफ़ाई कर देता। मुझे बाद में पता चला कि यह मेहरबानी हम लोगों का एक ही नाम, कुलदीप, होने की वजह से थी। वह चंडीगढ़ का था और पंजाबी अच्छी तरह जानता था।

हम लोगों के नहाने के लिए कोई गुसलखाना नहीं था और खुले में नहाना पड़ता था। वहाँ एक ही नल था और वह सवेरे 9 बजे ही बन्द हो जाता था। इसलिए हम लोगों को हैण्ड-पम्प पर निर्भर रहना पड़ता था। यह इतना पुराना और टूटा-फूटा था कि एक-एक बूंद पानी लेने के लिए पूरी ताक़त लगानी पड़ती थी।

हम इसी पम्प पर नहाते-धोते थे। जो साबुन की बट्टियाँ हममें से कुछ लोग लाये थे वह एक-दूसरे को दे देते थे, लेकिन हम कपड़े साबुन की बजाय ज़्यादातर अपनी ताक़त से धोते थे। गीले कपड़े सुखाने के लिए बहुत थोड़ी जगह थी, क्योंकि ज़मीन या तो गीली रहती या उसमें पानी भरा रहता था।

ज़मीन पर बरसाती पानी से ज़्यादा वहाँ बंद नालियों का पानी निकल कर बहता रहता, जिससे मल-मूत्र चारों तरफ़ फैला रहता था और बदबू-ही-बदबू रहती थी। हमें बैठकर खाना खाने के लिए भी सूखी जगह ढूँढनी पड़ती थी और सूखी जगह तक जाने के लिए हम ईंट बिछा देते। हम जब खाना खाते तब अक्सर गीली लकड़ियों का धुआँ भरा होता था, जो हमारी आँखों में भर जाता था।

1. यह संख्या एक पखवाड़े में बढ़कर छियानवे हो गयी।

इस धुआँ-भरे रसोईघर का मालिक जैन यह देखकर बहुत ही घबरा गया कि मैं बहुत थोड़ा खाता हूँ, हालाँकि मैंने उसे विश्वास दिलाया कि इससे उसके खाने बनाने का कोई संबंध नहीं है। सवेरे और शाम को खाने में चपाती और मक्खियाँ पड़ी दाल देखते-देखते मेरी भूख खत्म हो गयी थी। मेरे संगी-साथियों को मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता सताने लगी। वह मिर्च डालकर मेरी भूख जगाने की कोशिश करते, लेकिन मुझे खाना निगलना मुश्किल होता था।

एक रात को जैन मेरे लिए एक गिलास दूध ले आया। उसने कहा, "इसको पी लीजिये, मैंने सवेरे की चाय के लिए काफ़ी बचा लिया है।" जैन के साथ ही एक नौजवान ने भी एक पैकेट से कुछ मिठाई निकालकर मुझे दी, जो वह अपने साथ कपड़ों में छिपाकर अन्दर ले आया था। सभी को यह तुरंत पता लग गया कि मुझे मिठाई पसन्द है और वह मेरे लिए कुछ मीठा, चाहे वह लेमनचूस ही क्यों न हो, लाने की हर संभव कोशिश करने लगे। वह मुझको मीठे बिस्कुट भी देते थे। उनकी यह मेहरबानी कुछ ऐसी थी जिसे मैं भुला नहीं सकूँगा।

एक आदमी हर वार्ड के लिए लकड़ी की पेटियों में मीठे बिस्कुट और साबुन, सिगरेट और टूथपेस्ट लाता था। वह कैंटीन का आदमी था और उससे मीठे बिस्कुट मिल सकते थे। इसका भुगतान नक़द करना मना था। कूपनों का ही इस्तेमाल हो सकता था, जो जेल-अधिकारियों द्वारा हर महीने के शुरू में दिये जाते थे। हर कूपन पच्चीस पैसे का होता था और कोई भी आदमी तीस रुपये से ज़्यादा के कूपन नहीं ख़रीद सकता था। लेकिन अगर कोई घूस देने को राज़ी हो तब वह जितने कूपन चाहता, चोरी-छुपे ले सकता था—इन अतिरिक्त कूपनों की क़ीमत लगभग तीस प्रतिशत ज़्यादा होती।

एक महीने के लिए तीस रुपये की यह पाबन्दी इसलिए थी कि हर आदमी इतना रुपया ही घर से मँगा सकता था। इससे ज़्यादा जितना रुपया मेरे पास था उसे मैं जेल में अन्दर आते समय सुपरिंटेंडेंट के पास जमा कर आया था। लेकिन कुछ क़ीमत देने पर जितना रुपया भी कोई चाहता, बाहर से मँगा सकता था। वहाँ मनीआर्डर और चिट्ठियाँ भेजने व मँगाने की भी एक व्यवस्था थी जो शायद डाक-विभाग की व्यवस्था से ज़्यादा विश्वसनीय थी। उदाहरण के लिए, मेरे वार्ड में एक क़ैदी को दो सौ रुपयों की ज़रूरत थी, इसके लिए उसने वार्डर के मार्फ़त पुरानी दिल्ली में अपने आदमियों को एक चिट्ठी भिजवायी और चौबीस घंटे से भी कम समय में उसे रुपये मिल गये। उसने उसके लिए लाने-ले आने पर खर्च के लिए छियासठ रुपये दिये—ऐसे कामों के लिए 'मनीआर्डर के चार्ज' के रूप में तैंतीस प्रतिशत कमीशन बँधा हुआ था। मुझे यह बताया गया कि चाहे जितना रुपया मँगाया जाये, कभी भी कोई धोखाधड़ी नहीं होती है—और इससे ज़्यादा कमीशन भी नहीं लिया जाता। क़ैदी इस गुप्त मनीआर्डर-सेवा द्वारा बड़ी रक़में मँगाया करते थे। हम लोगों को बताया गया कि जहाज़ी कम्पनियों के मालिक धर्म तेजा ने हज़ारों रुपये इसी तरह मँगवाये थे। और अगर कोई जेल-कर्मचारियों की जेब गर्म कर सकता हो तो उसे हर तरह का आराम—जो भी वह चाहे—मिल सकता था। तेजा को सभी तरह के आराम मिले हुए थे—उसकी सेल में एअर-कूलर लगा हुआ था, उसे रेडियो व रेकर्ड-प्लेअर का सेट मिल गया था और उसे टेलीफ़ोन करने की सुविधा भी मिली हुई थी। धनाढ्य होने के अलावा तेजा को एक सुविधा यह भी थी कि उस समय सरकार में ऊँची जगहों पर काम करने वालों में उसके दोस्त थे। इन्दिरा गांधी के दोनों लड़के विदेशों में उसी के यहाँ

ठहरते थे। एक भूतपूर्व विदेश-सचिव टी० एन० कौल के वारे में कहा जाता था कि वह उससे जेल में मिलने अक्सर आया करते थे।

हरिदास मूँधड़ा नामक व्यापारी, जिसे धोखाधड़ी के अपराध में सजा मिली थी, एक दूसरा धनी आदमी था जिसने कुछ दिन तिहाड़ में विताये थे। उसे जेल में सब तरह का आराम ही नहीं मिला हुआ था, वल्कि वह जव चाहता जेल के बाहर भी जा सकता था; वह कई बार कई दिनों तक जेल के बाहर रहा और उसने कलकत्ता तक यात्रा भी की थी। लेकिन इस सवके लिए वहुत रुपया चाहिए था। इससे ज़्यादा धनी क़ैदी था रामकृष्ण डालमिया; उसने अपनी जेल की अधिकांश अवधि अस्पताल में वितायी थी। वह जेल के अधिकारियों में अपनी उदारता के लिए मशहूर था, एक डॉक्टर को तो उपहार के रूप में एक गाड़ी मिल गयी थी।

तिहाड़ में व्यापारियों से अधिक तस्करों को रखा जाता था, जो पानी की तरह रुपया खर्च करते थे। उनके लिए खाना मोती-महल से और ह्विस्की कनाट-प्लेस से आती थी। उनको शराब ही नहीं वल्कि औरतें भी मिल जाती थीं। एक वार्डर ने कहा, "वावूजी, ये औरतें वेश्याएँ नहीं वल्कि असली सोसायटी-गर्ल होती थीं।" यह औरतें तब लायी जाती थीं जव 'साहब लोग' खाना खाने घर चले जाते थे और उनके ख़ाली कमरों में 'मन वहलाव' होता था। वार्डरों के साथ वातचीत कर लंच-इंटरवल का समय वढ़कर तीन घंटे हो जाता था और इससे इन तस्करों को मनवहलाव के वाद अपने-अपने सेल और औरतों को शहर लौटने के लिए काफ़ी समय मिल जाता था। इन कामों में वहुत ख़तरा रहता था और इसमें कई लोग शामिल होते थे। इसलिए इसके लिए वहुत रुपया लिया जाता था।

एक दिन हम चार आदमियों ने यह पता लगाने का निर्णय किया कि क्या राजनीतिक 'अपराधियों' को भी उतना अच्छा खाना मिल सकता है जो आर्थिक अपराधियों को मिल जाता है? हमने वार्डर से पूछा कि क्या वह हम लोगों के लिए चिकन करी और तन्दूरी रोटी ला सकता है? उसने सहमति में सिर हिला दिया। हमने पन्द्रह-पन्द्रह रुपये दे दिये। हमको जो हमने चाहा था, मिल गया—चिकन करी और गरम-गरम तन्दूरी रोटी। हमको वताया गया कि हमने वार्डर को जो साठ रुपये दिये थे, उसमें से सवने, जो यह सामान लाये, अपना-अपना कमीशन ले लिया है।

जेल में भ्रष्टाचार इतना सुगठित और इतना व्यवस्थित था कि एक वार क़ीमत देने पर सब काम घड़ी की तरह होने लगते थे। इसमें सभी स्तर के जेल-कर्मचारियों का हाथ था और हर एक का अपना हिस्सा वँधा हुआ था। कभी कोई झगड़ा नहीं होता था। चोरों में भी एक अनोखी ईमानदारी होती है!

हर आदमी या तो जेल के वड़े रसोईघर से वना-वनाया खाना ले सकता था या ख़ुद वनाने के लिए राशन ले सकता था। मैंने वड़े रसोईघर का खाना खाया तो वह खाने लायक़ नहीं लगा। दाल और रोटियों में, जो जेल का स्थायी खाना था, वहुत ज़्यादा रेत भरी रहती थी।

हमारे वार्ड में हमने यह चाहा कि हम ख़ुद ही खाना पकायेंगे। इससे सफ़ाई भी रहेगी और फ़ी आदमी ढाई रुपये के दैनिक भत्ते से थोक में ख़रीद करने से सामान भी ज़्यादा मिलेगा; दाल के अलावा कभी-कभी कुछ सब्ज़ी भी ले ली जाया करेगी। हममें से कई ऐसे थे, "खास तौर से आर० एस० एस० और जन संघ के नज़रवन्द लोग", जो थोड़ा-वहुत खाना पका सकते थे—उन लोगों ने अपने

संगठनों द्वारा लगाये गये कैम्पों में सैकड़ों आदमियों के लिए खाना बनाया था। आपस में बातचीत कर सभी लोगों ने यह स्वीकार किया कि हममें देविन्दर जैन ही सबसे अच्छा खाना बना सकता है।

क़ैदियों को जो गेहूँ और चावल मिलता था उसमें मिलावट रहती थी। वज़न बढ़ाने के लिए उसमें मिट्टी, कंकड़ और कूड़ा-करकट मिला रहता था। जलाने के लिए जो लकड़ियाँ हमें दी जाती थीं वह भी इसी उद्देश्य से पानी में भीगी रहती थीं। और तौलने की मशीन भी तोड़ दी गयी थी। जेल-सुपरिंटेंडेंट से शिकायत करने पर एक-सा जवाब मिलता कि चूँकि क़ैदी अपने-आप राशन ख़रीद रहे हैं, इसलिए जेल वालों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। हम लोग जेल में एक दूकान से ही ख़रीदारी कर सकते थे और जेल-सुपरिंटेंडेंट तौलने वाली मशीन की जाँच करने पर भी राज़ी नहीं हुआ।

जेल में हर-एक का अपना हिस्सा होता है। दूध थोक में फाटक पर आता था। वहाँ डिब्बों में से ऊँचे अधिकारियों के लिए काफ़ी मात्रा में दूध निकाल लिया जाता था और उतना ही पानी डाल दिया जाता था। ज्यों-ज्यों यह डिब्बे वार्डों की तरफ़ ले जाये जाते, त्यों-त्यों जो भी उनको उठाते-रखते अपने-अपने शेयर के मुताबिक़ दूध निकालते और बदले में उतना ही पानी डाल देते थे। एक बार जब हम लोगों ने वार्डर से यह शिकायत की कि दूध में पानी जितना होना चाहिए उससे ज़्यादा मिला होता है तब वह हँसकर बोला कि सुपरिंटेंडेंट से लेकर नीचे तक हर आदमी का इसमें हिस्सा होता है। "जब वह मेरे वार्ड तक पहुँचता है तब मैं भी अपने शेयर वाला दूध निकाल लेता हूँ और कमी को पानी डालकर पूरा कर देता हूँ," उसने कहा। हम इतनी ही आशा कर सकते थे कि इसमें जो पानी मिलाया जाये वह ज़्यादा गन्दा न हो।

इस भ्रष्टाचार से ज़्यादा दहलाने वाली विलक्षण 'दास-प्रथा' थी, जो हमने जेल में देखी। ये दास दस से अट्ठारह साल के लड़के होते थे, जिनको 'सहायक' के रूप में इस्तेमाल किया जाता था और ये बीसियों थे। वे खाना पकाते, बर्तन साफ़ करते, कमरों की सफ़ाई करते, पानी लाते और कमर-तोड़ काम उन आदमियों के लिए करते जिन्हें इसके लिए तनख़्वाह मिलती थी। इन्हें सुबह की चाय तैयार करने के लिए छह बजे से पहले उठा दिया जाता था और बरतन साफ़ करने पर रात को लगभग दस बजे के बाद सोने दिया जाता था—इनको भेड़ों की तरह एक वार्ड में भर दिया जाता था, जहाँ न कोई पंखा था और न सफ़ाई की उचित व्यवस्था। लेकिन रोशनी खूब रहती थी, सारी रात बहुत-से बल्ब जलते रहते थे, जिससे नींद में ऊँघता हुआ वार्डर एक ही नज़र में यह जाँच कर सके कि सभी मौजूद हैं।

इन लड़कों पर मुक़दमा चल रहा होता था, बहुत से वहाँ आठ महीने से थे और एक लड़का तो दो साल से रह रहा था। इनको किसी-न-किसी अभियोग के आधार पर मुक़दमा चलाने के लिए एक अदालत से दूसरी अदालत ले जाया जाता और जेल में ही रखा जाता। ऐसा करने का उद्देश्य इनको जब तक हो सके जेल में डाले रखना था, क्योंकि इनके बग़ैर उन लोगों को जो बरतन वग़ैरह की सफ़ाई आदि कामों के लिए नियुक्त किये जाते थे, आराम करने का मौक़ा नहीं मिल सकता था।

एक दिन एक लड़के के रोने से सवेरे-सवेरे मेरी नींद टूट गयी और मैंने देखा कि बाक़ी "सहायक" लोग उसे समझा-बुझा रहे हैं और एक वार्डर चुपचाप खड़ा

देख रहा है। मैं उसके पास गया, उसके घुंघराले बालों को देखकर मुझे अपने छोटे लड़के राजू की याद हो आयी। यह लड़का पिछली शाम को नयी दिल्ली में डिफेंस कालोनी में पकड़ा गया था और रात-भर पुलिस चौकी में रखे जाने के बाद सवेरे जेल में लाया गया था।

मैंने उससे पूछा कि उसने क्या किया है जो जेल में आना पड़ा। उसकी हिचकियाँ बन्द नहीं हो रही थीं कि वह कुछ भी जवाब देता। वार्डर ने हँसकर कहा "इमरजेंसी।" मैंने ज़्यादा जानने के लिए पूछा तो वार्डर ने बताया कि जब कभी जेल में क़ैदियों की संख्या बढ़ जाती है, यहाँ के नौकरों की मदद के लिए पुलिस से लड़के लाने के लिए कहा जाता है। वार्डर ने बताया कि पिछले कई दिन से जेल के अधिकारी पुलिस पर दबाव डालते रहे थे कि नज़रबंदों की संख्या बढ़ गयी है, इसलिए और ज़्यादा "सहायक" लाये। पिछली शाम को जब यह लड़का डिफेंस कालोनी की एक दूकान पर पान ख़रीद रहा था, पुलिस द्वारा आवारा समझ कर पकड़ लिया गया था, पुलिस वाले जेल-अधिकारियों की इस अपील पर कि और ज़्यादा "हेल्पर" लाये जायें, इन लड़कों को पकड़ते रहे।

"यह कोई नयी बात नहीं है ऐसा हमेशा से होता रहा है," वार्डर ने समझाया। ऐसे कई लड़कों ने जेल में मुझे अपनी दुख-भरी कहानी सुनायी कि किस तरह उन्हें झूठा आरोप लगाकर गिरफ़्तार किया गया और फिर किसी-न-किसी बहाने से उन्हें जेल में बन्द रखा गया है।

इन लड़कों के अजीब से नाम होते। वहाँ एक था रायनू। वह मालिश का काम करता था। नज़रबन्द क़ैदी उससे अक्सर मालिश करने के लिए कहते थे। उसे दो घंटे काम करने के बाद सिर्फ़ पच्चीस पैसे का एक कूपन मिलता था। हर आदमी चाहे वह नज़रबन्द हो या जेल-अधिकारी, उससे काम लेता था। वह मना करने की हिम्मत नहीं कर सकता था, क्योंकि उसे मालूम था कि कुछ ही दिन पहले दो लड़कों को कुछ नज़रबन्दों की शिकायत पर दूसरे वार्ड में भेज दिया गया था। "ये लड़के बड़े लापरवाह हो गये हैं," उन्होंने शिकायत की थी। राजनीतिक वार्ड में काम अन्य वार्डों की अपेक्षा हलका कहा जाता था और इसलिए अधिकतर लड़के उन्हीं वार्डों में बने रहना पसन्द करते थे।

रायनू जेल में सोलह महीने से था। उसके ख़िलाफ़ चोरी का इल्ज़ाम था। उसने स्वीकार किया कि उसके पास दो दिन से खाने के लिए कुछ भी नहीं था, इसलिए उसने एक घर में घुसकर यह कोशिश की कि जो भी मिले चुरा लिया जाये। उसने बताया कि जब भी उसका केस अदालत में सुनवाई के लिए आता है, पुलिस किसी-न-किसी बहाने से मुल्तवी करा देती है। जाहिर था कि वह इस लड़के को अपने चंगुल से नहीं निकलने देना चाहती थी।

मुझे बताया गया कि अभी हाल में जेल में एक ऐसा लड़का था जो एक साल से ज़्यादा समय से यहाँ किसी झूठे अभियोग के कारण बन्द था। उस पर बहुत दिनों से कोई मुक़दमा भी नहीं चल रहा था और न अदालत में उसकी कोई पेशी ही की जाती थी। वह इस तरह जेल में ही सड़ जाता, लेकिन सेना के एक मेजर ने उसकी जान बचा ली। वह लड़का उसका नौकर होता था। जब से वह लड़का ग़ायब हुआ तभी से मेजर उसकी तलाश में लग गया और उसके बाद जेल के अधिकारी उसे यहाँ बन्द नहीं रख सके।

मैं एक नये लड़के के प्रति आकृष्ट हो गया। उसका नाम था वेद। वह अनाथ था। इसे मशक़्क़ती कहते थे। मशक़्क़ती उनको कहा जाता है जिनको ज़बरदस्ती

काम करना पड़ता है। जब मैंने इससे बात की तब इसकी आँखों से आँसू बह निकले। यह लड़का चोरी का इल्ज़ाम लगा कर जेल में लाया गया था, लेकिन इसने कसम खाकर कहा कि उसने कोई भी चोरी नहीं की थी। मैंने उसे पुचकारा और कहा कि जब वह छूट जायेगा तब उसे यह बेगार नहीं करनी पड़ेगी। इससे उसको सन्तोष हुआ। और तब मुझे अचानक लगा कि जैसे अधिकारियों ने मेरे लड़के को गिरफ़्तार कर लिया है, वह उसे सता रहे हैं और उसको मेरी ही कोठरी में ले आये हैं। मैंने इस लड़के से कहा कि वह मेरे ही साथ रहे, मैंने उसका विस्तर अपने विस्तर के पास लगा लिया और अपने हाथों से उसे खिलाता था। मैंने उसको पढ़ना भी सिखाया, जो काम मैंने कभी नहीं किया था। वेद का विसूरना देख मेरी कल्पना हवा हो गयी। मैंने वार्डर से निवेदन कर कहा कि वह उसे रसोईघर में रखे—बहुत कम मशक़्क़ती रसोईघर में रखे जाते थे, यहाँ उनको बहुत कम काम करना पड़ता था।

मुझे ताज्जुब था कि लड़कों को सुधार-गृह में क्यों नहीं रखा जाता, चाहे उन्होंने कोई अपराध ही किया हो। जेल-अधिकारी यह मानते तो थे कि यही होना चाहिए और यह लिखा हुआ भी था। जिन बैरकों में मैं अपने सत्ताइस साथियों के साथ रह रहा था, वह असल में पढ़ाने का कमरा था। मैंने देखा कि दीवाल पर ब्लैक-बोर्ड लगा हुआ है। अधिकारियों ने मुझे बताया कि इमरजेंसी लगने के बाद जगह की कमी के कारण इसे वार्ड बना दिया गया है। उन्होंने मुझसे कहा कि जब कभी बाहर आन्दोलन होते हैं, जेल में वे ऐसा ही करते हैं।

कुछ लड़के जेल की ज़िन्दगी के आदी हो गये थे। वह हँसी-खुशी से रहते और हम लोगों के पास सिगरेट या मिठाई ख़रीदने के लिए कूपन माँगने आ जाया करते थे। कुछ क़ैदियों को ये लड़के उपयोगी लगते थे—वे ख़ाली समय में इनसे कपड़े धोने का या ऐसा ही कुछ और काम कराते थे। बदले में उनको साबुन की एक बट्टी या बिस्कुट का एक पैकेट मिल जाता था।

हमें लगा कि उनकी ज़िन्दगी उन क़ैदियों की तुलना में अधिक कठोर थी जिन्हें कठोर कारावास की सज़ा दी जाती थी। उन्हें मुक़दमा चलाये जाने की कोई सुविधा भी नहीं मिली हुई थी। जेल-अधिकारी उन्हें सिर्फ़ खाना देते थे, वह भी अक्सर बचा-खुचा। उन्हें जेल के तोशाख़ाने से कपड़े भी नहीं मिलते थे, क्योंकि उन पर मुक़दमा चलते रहने से वह क़ैदी नहीं माने जाते थे। जब ज़्यादा क़ैदी लाये जाते और सहायकों को सोने के लिए कोई फ़ालतू वार्ड नहीं बचता तो उन्हें काल-कोठरियों में रख दिया जाता—छह फ़ीट लम्बी और तीन फ़ीट चौड़ी इन कोठरियों में हवा के आने-जाने के लिए सिर्फ़ एक ही छोटी-सी खिड़की होती और सोने के लिए सीमेंट का एक चबूतरा। चार-पाँच लड़के उन कोठरियों में भर दिये जाते थे।

यह यक़ीन नहीं होता कि बीसवीं शताब्दी में भी ऐसा हो सकता है। मेरी बड़ी इच्छा होती थी कि मैं यह जानूं कि ये असहाय लड़के खुश कैसे रहते हैं? मेहनत, संघर्ष और सपनों में पल कर भी यह बरसों इसी तरह जियेंगे और शायद ये ज़िन्दगी के आख़िर तक भी इसी तरह रहेंगे। उनका कोई नहीं है, उन्हें उनके संबंधियों ने छोड़ दिया है और फिर भी वे ऐसी ज़िन्दगी बिता रहे हैं—सिर्फ़ बने रहने के लिए, ज़िन्दा रहने के लिए। अगर मनुष्य ईश्वर का अपना ही प्रतिबिम्ब है तो यह सबसे निकृष्ट बिम्ब था जो किसी ने देखा होगा। भूख से तपे इन चेहरों पर खुशी का कोई भी निशान नहीं था और जब रात में देर तक ये लड़के

गाते रहते तव मैं ताज्जुब करता था कि इनको कहाँ से प्रेरणा मिल रही है। और जब उनका गाना वन्द हो जाता और वे सो जाते तव भी लगता कि मैं उनको गाते सुन रहा हूँ :

...अहरह सुनता हूँ
निश्शव्द विषण्ण संगीत मनुजता का...!

शायद जनता के लिए धर्म से ज़्यादा संगीत अफ़ीम का काम करता है। संगीत एक कल्पना है जिसका आकर्षण ऊपरी सतह पर नहीं रहता, बल्कि दिल के किसी गहरे कोने में रहता है जहाँ बुद्धि नहीं पहुँच सकती। इस कल्पना में हम अपने को भूल जाते हैं, कम-से-कम तब तक के लिए जब तक इसमें हम डूबे रहते हैं। जव यह संसार विखर जाता था तो अकेलापन हमें वड़ी तेज़ी से काटने दौड़ता था और हमारा मन उचाट हो जाता था।

असंभव का सपना देखने और ज़िन्दगी के उचाटपन और थकान को भूलने के लिए कल्पना की उड़ानें ज़रूरी थीं। मैं अक्सर अपने को गुनगुनाता हुआ पाता था, हालांकि ईश्वर साक्षी था कि मैं कोई संगीतज्ञ नहीं था—और कोठरी में मेरी गुनगुनाहट कभी तेज़ नहीं होती थी कि दूसरे सुन सकें। यह ताज्जुव की वात थी कि कभी तो उस वातावरण से कष्टों को सहने में सहायता मिलती थी, क्योंकि हर व्यक्ति की संवेदनशीलता मर जाती थी; लेकिन कभी इस वातावरण से निराशा छा जाती थी। तव इन ऊँची दीवालों से वाहर सुन्दर-सा चेहरा देखने के लिए, फूलों की क्यारियों की सुगन्ध प्राप्त करने के लिए, संगीत की लय सुनने के लिए मन को कविता के पंखों पर उड़ना पड़ता था।

मैंने अपने से पूछा कि जेलों को दण्ड का स्थान क्यों बनाया जाता है, सुधार-घर क्यों नहीं! जव कभी कोई आदमी जेल में होता है तो भौतिक परिस्थितियों के अलावा मनोवैज्ञानिक कारणों से भी उसमें और अधिक आज़ादी पाने और घूमने-फिरने की लालसा जग उठती है। मेरा विचार था कि जेल के बहुत-से वार्डर और अधिकारियों को अपेक्षित पृष्ठभूमि का न तो कोई ज्ञान था और न उनको आवश्यक प्रशिक्षण ही मिला हुआ था। लगता था, जैसे ये लोग विश्वास करते हों कि क़ैदी को लाठी से ही ठीक किया जा सकता है। मैंने अपनी आठ हफ़्ते की नज़रवन्दी की अवधि में जेलों के इंस्पेक्टर-जनरल या डिप्टी-कमिश्नर को अपने वार्ड में कभी नहीं देखा।

जव मैं 1960 में गृह-मंत्रालय में था तव सारे भारत के जेलों के इंस्पेक्टर-जनरलों के सहयोग से उनके सुझाव के आधार पर 'एक आदर्श' जेल-मैनुअल तैयार किया गया था। अपराधों को रोकने पर और अपराधियों के साथ किये जाने वाले व्यवहार के वारे में सुझाव इकट्ठे करने के लिए एक केन्द्रीय सुधार-सेवा ब्यूरो भी स्थापित किया गया था। लेकिन जेलों में रहन-सहन की दशा और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों में सुधार लाने पर थोड़ा-वहुत ध्यान दिया गया था।

एक या दो बार जव कोई राजनीतिक क़ैदियों का ज़िक्र करता तव यह जवाव दिया जाता कि उनका वर्ग अलग होता है और उन्हें 'ए' क्लास या 'वी' क्लास का दर्जा दिया जाता है। मैं नहीं जानता था कि यह 'क्लास' क्या होता है। शायद 'मीसा' के क़ैदियों को एक ही क्लास मिलता था, या कभी कोई क्लास नहीं मिलता था। उनको एक ही जगह भर दिया जाता था। कम-से-कम यह एक ऐसी जगह थी जहाँ सरकार ने समाजवाद लागू कर रखा था; यह सचमुच एक समतावादी समाज था। किसी को वे अखवार भी नहीं मिल सकते थे जो वह चाहता। हम

लोगों को एक दैनिक समाचारपत्र की एक ही प्रति दी जाती थी। चूँकि हम सभी बाहरी दुनिया की खबरों के लिए भूखे रहते थे, कभी-कभी इस अख़बार को लेकर या इस अख़बार के एक खास पेज को लेकर झगड़ा हो जाता था, क्योंकि इसके पन्ने हम लोगों में बँट जाते थे। वहाँ कोई रेडियो नहीं था जिसे हम सुन लेते। हम लोगों ने जेल-सुपरिंटेंडेंट से पूछा कि क्या वह हम लोगों को कम-से-कम एक मीडियम वेव का ऐसा रेडियो दे सकता है जिस पर बी० बी० सी० या किसी दूसरे विदेशी स्टेशन का प्रोग्राम न सुना जा सकता हो तो उसने मना कर दिया।

जो अखबार हम लोगों को मिलता था मैं उसे बड़े ध्यान से पूरा पढ़ता था, जो मैंने पहले कभी नहीं किया था। और मुझे इसमें ढेर सारी ग़लतियाँ मिलती थीं, हालाँकि यह अखबार फीका होता था तो भी मैं इसे पढ़ता था—चूँकि समाचार-पत्रों पर पाबन्दियाँ लगी हुई थीं, इसलिए यह फीका होने के अलावा कुछ और हो ही नहीं सकता था। मैं मुख्य पृष्ठ पर लगभग रोज़ाना श्रीमती गांधी और उनके लोगों द्वारा इमरजेंसी की बड़ाई पढ़ते-पढ़ते थक गया था। एक दिन वह कहती थीं कि लोग इमरजेंसी चाहते थे, दूसरे दिन वह कहतीं कि इमरजेंसी ने राष्ट्र की सेवा की है और तीसरे दिन यह कि जब से इमरजेंसी लगी है तब से देश में घी-दूध की नदियाँ बह निकली हैं।

इस अखबार में किसी ने शोक-समाचार के कालम में लोकतंत्र के मृत्यु की सूचना बड़ी ही चतुराई से छपवायी थी। यह विज्ञापन इस प्रकार था :

डि' आक्रेसी—डी० इ० एम० बिलव्ड हसबैंड ऑफ़ टी० रुथ, लविंग फ़ादर ऑफ़ एल० आई० बर्टी, ब्रदर ऑफ़ फ़ेथ, होप, जस्टीशिया एक्सपायर्ड ऑन टवेन्टी-सिक्स्थ जून।

[डि' आक्रेसी (अर्थात डिमोक्रेसी या लोकतंत्र)—टी० रुथ (अर्थात ट्रुथ या सत्य) के प्रिय पति, एल० आई० बर्टी (लिबर्टी अर्थात स्वतंत्रता) के पिता, फ़ेथ (विश्वास) होप (आशा), जस्टीशिया (न्याय) के भाई का 26 जून को देहावसान।]

मुझे याद है कि जब सेंसरशिप लागू हुई थी, हमने भी नियमों से बचने के लिए अपने समाचारपत्र में टैगोर की निम्नलिखित प्रार्थना छापी थी :

जहाँ चित्त अभय है, शीश है उच्च जहाँ पर
जहाँ मुक्त है ज्ञान
जहाँ विश्व विच्छिन्न नहीं है छोटे-छोटे घर की दीवारों से
जहाँ वचन के स्रोत हृदय से फूटा करते
जहाँ अजस्र कर्म के हाथ निपुण हो जाते हैं
जहाँ तर्क की स्वच्छ-धारा रूढ़ि-मरुस्थल में सूख नहीं जाती है
जहाँ चित्त को तुम ले जाते हो विस्तीर्ण भाव और कार्य-क्षेत्र में
ऐसे मुक्त गगन में प्रभु मेरा देश जगे!

इसके तुरंत बाद ही मुख्य सेंसर-अधिकारी ने एक आदेश जारी किया कि सरकार भविष्य में ख़ाली जगह रखकर या देश-निर्माताओं की कविताएँ या भाषण छापकर विरोध या सेंसरशिप की अवज्ञा करने की किसी कोशिश को बर्दाश्त नहीं करेगी।

सौ नज़रबंदों में एक अख़बार की एक प्रति को लेकर झगड़ा होना स्वाभाविक

था। एक दिन हमारे वार्ड का एकमात्र मार्क्सवादी—कम-से-कम वह अपने को यही कहता था—सवेरे जल्दी जग गया और दरवाज़े पर चिपककर खड़ा हो गया। अख़बार बाँटने वाले से उसने अख़बार को ले लिया। जो लोग रोज़ाना अख़बार पढ़ा करते थे, चिढ़ गये और जब उसने अख़बार पर क़ब्ज़ा ही कर लिया तब और ज़्यादा चिढ़ गये। इस पर झगड़ा शुरू हुआ। कई लोगों ने शांत करने की कोशिश की।

लेकिन मैं नहीं समझता कि वह मार्क्सवाद जानता भी था या उसमें कोई गहरी आस्था रखता था। वह केवल ऐसे नारे दोहराता रहता था : "पूँजीवाद की काली दैत्याकार मिलें", "इतिहास केवल वर्ग-संघर्ष का दस्तावेज़" आदि-आदि।

वह पश्चिमी पाकिस्तान से आया हुआ एक शरणार्थी था जो दिल्ली में बस गया था। 1947 की घटनाओं ने उसके विचारों को पराभूत कर रखा था। उसका सब-कुछ छिन गया था और उसके मन में उस समाज के लिए विद्वेष पैदा हो गया था। उसका विचार था कि उसे समाज दुवारा पनपने नहीं देगा।

यह मार्क्सवादी एक हरिजन से हमेशा लड़ता रहता था, जो अपने को जनसंघी कहता था। दोनों ही ग़रीब थे और दोनों के पास लड़ने की कोई बात नहीं थी। लेकिन मार्क्सवादी यह नहीं भूल पाता था कि दिल्ली में जन संघ के शासन-काल में वह अपनी दो गायों से हाथ धो चुका था। उसने हमें बताया कि उसे पहले तो अपनी झोंपड़ी के बाहर दो गायें रखने की इजाज़त दे दी गयी और बाद में मना कर दिया गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि उसे इन गायों को, जो पहला ख़रीदार मिला उसके हाथ कौड़ियों के मोल बेचना पड़ा, ताकि वे कहीं पकड़कर काँजी-हाउस में न भेज दी जायें।

मार्क्सवादी और जनसंघी अक्सर आपस में भिड़ जाते, ग़रीबी कोई ऐसी चीज़ नहीं थी जो उनको आपस में मिलाकर रखती। ताज्जुब की बात यह थी कि उस मार्क्सवादी का ऐसा व्यवहार हमारे सेल में अन्य किसी जनसंघी या आर० एस० एस० के आदमी के साथ नहीं था। इस मार्क्सवादी से अक्सर साम्यवाद के आदर्शों पर नहीं, बल्कि भारत में मार्क्सवाद की उपयोगिता के बारे में चर्चा होने लगती थी।

हमारे दिमाग़ पर श्रीमती गांधी का प्रभुतावाद छाया हुआ था और हम लोग तानाशाही के नाम मात्र से, चाहे वह सर्वहारा की हो या अन्य किसी की, चौंक जाते थे। हमारे वार्ड में मार्क्सवादी और कुछ कम्युनिस्ट यह दलील देते कि जब सूचना के साधन और संचार की पद्धति परिवर्तन के पक्ष में न हीं और जब समाचारपत्रों की आज़ादी सपना रह गयी हो, क्योंकि एक समाचारपत्र निकालने के लिए कई लाख रुपयों की ज़रूरत होती है, तब समझाने-बुझाने से कोई फ़ायदा नहीं होगा; धनी आदमी ही समाचारपत्रों के मालिक होंगे। इनके ख़िलाफ़ बहुत-से ऐसे आदमी भी थे जिनका लोकतंत्र में विश्वास अटूट था, उनका यह कहना था कि अगर किसी उचित मामले को हम सही ढंग से पेश करें तो लोगों के दिलों को जीत सकते हैं। उदाहरण के लिए, श्रीमती गांधी को सन् 1971 में भारी सफलता मिली, क्योंकि उन्होंने जनता को यह वचन दिया था कि सत्ता में आने पर ग़रीबी हटा देंगी। इन लोकतंत्रवादियों का कहना था कि अगर उन्होंने इस दिशा में कोई उल्लेखनीय काम नहीं किया तो इसमें पद्धति की कोई त्रुटि नहीं थी, ग़लती श्रीमती गांधी की थी जिन्होंने इस पद्धति का पालन नहीं किया।

तानाशाही में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता, वह मशीन का पुर्ज़ा बनकर

रह जाता है। उसकी सारी आज़ादी ख़त्म हो जाती है, वह न तो सोच सकता है और न खुद कुछ कर सकता है। वह मशीनी आदमी हो जाता है। उसको चलाया जाता और बन्द किया जाता है, वह खुद नहीं चलता, बल्कि मशीन है जो उसे चलाती है।

लोकतंत्रवादियों की एक और दलील यह थी कि भौतिक सम्पन्नता लाने की कोशिशों में साम्यवाद मनुष्य की प्रकृति में निहित आध्यात्मिक तत्व को भूल जाता है। जीवन का नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष मनुष्य के बुनियादी तत्व हैं। साम्यवाद मानवीय व्यवहार के आदर्शों और मूल्यों की उपेक्षा ही नहीं करता, बल्कि उनको विलग भी कर देता है। उसकी भाषा हिंसा की भाषा है और दमन, किसी भी प्रकार हो, मनुष्य में जो कुछ भी अच्छाई है, उसे कुचल देता है।

श्रीमती गांधी अक्सर पूछती थीं : आज़ादी किसके लिए ? जैसा कि कम्युनिस्ट कहते हैं, क्या यह "पूंजीपतियों, प्रतिक्रांतिकारियों" के लिए या "धनी-मानी लोगों" के लिए ? "क्या व्यक्ति समाज से ज़्यादा महत्वपूर्ण है ?"

मैं सोचता था कि समाज व व्यक्ति में विरोध कहाँ है, क्योंकि समाज का अस्तित्व व्यक्ति के हित के लिए है। जब हम समाज के हित की चर्चा करते हैं तब यह हित कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो व्यक्ति के, जो समाज का अंग होता है, हित से अलग हो, असल में व्यक्ति ही समाज बनाता है। साम्यवाद, समाजवाद या पूंजीवाद—लक्ष्य तक जाने के लिए साधन हैं, स्वयं में लक्ष्य नहीं हैं। हम कल्याणकारी राज्य की बात करते थे, लेकिन यह कैसा राज्य होगा ? क्या इसमें उन कामों के लिए जो समाज के हित में समझे जायेंगे, व्यक्ति की उपेक्षा की जायेगी या उसकी बलि दे दी जायेगी ? नेहरू अक्सर कहा करते थे और उन्होंने लिखा था : व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

हमारे वार्ड में कुछ गांधीवादी थे जो हमेशा कहा करते थे कि बुरे साधनों से अच्छे परिणाम नहीं मिलते हैं। उनकी धारणा थी कि हिंसा से कोई स्थायी हल नहीं निकलता है, यह हमको अनुचित दिशा की ओर ले जाती है। समाज में कोई भी परिवर्तन संवैधानिक तरीक़ों से लाया जाना चाहिए और इसके लिए शक्ति बंदूक से नहीं बल्कि जनमत से हासिल की जानी चाहिए। वे प्रायः बहुत ज़ोरों से कहते थे कि समय-समय पर सरकार को अपनी नीतियों की पुष्टि मतदाताओं से करानी चाहिए। किसी भी आदमी या पार्टी को खुद यह दम्भ नहीं करना चाहिए कि उसे यह तय करने का अधिकार है कि देश के हित में क्या है, क्या नहीं।

बहस चाहे जितनी गर्म होती, अंत में हम लोग इस बात पर सहमत हो जाते कि ऐसी पद्धति जो हमारी निजी स्वतंत्रता पर हावी हो जाये या उसे छीन ले, अपनाये जाने लायक़ नहीं हो सकती। भविष्य के बारे में बात करते समय हम सहमत थे कि एक ऐसा तंत्र बनना चाहिए जो हमें आज़ादी दे और रोटी भी। नज़रबंदों ने यह प्रतिज्ञा की कि जब कभी वे जेल से छूटेंगे, ऐसे ही तंत्र की स्थापना के लिए कोशिश करेंगे जो लोकतंत्र के सिद्धांतों को क्षति पहुँचाये बिना आर्थिक खुशहाली ला सके।

हम लोगों में थोड़े-बहुत ऐसे लोग भी थे जो कहते थे कि इस का एकमात्र उपाय अपनी आवश्यकताओं को कम करना, सादा जीवन बिताना और सहनशील बनना ही है। लेकिन हम लोगों में से एक उग्रवादी ने यह कहा कि सहनशील होने से हम यथा-स्थिति को बनाये रखेंगे और जो व्यवस्था पहले से ही स्थापित है उसकी रक्षा करेंगे। उसका विश्वास था कि इस सवाल का कोई जवाब नहीं दिया

जा सकता कि क्या विरोध को पनपने दिया जाये। वह विरोध का औचित्य तो मानता था, लेकिन यह भी मानता था कि विरोध किसी भी कार्यक्रम को पूरा करने में रुकावट बन जाता है।

जन संघ और आर० एस० एस० दोनों के आदमी मुझ पर बेहद मेहरबान थे। इनमें से अधिकतर लोगों ने मेरे लेखों को पढ़ा था, इसलिए ये लोग अपने संगठनों के बारे में मेरे विचार जानते थे। शायद इसी वजह से ये लोग कुछ आम बातों को छोड़कर राजनीति पर मुझसे कोई ख़ास बहस नहीं करते थे। मुझे शंका है कि इन लोगों ने आपस में यह तय कर लिया था कि मुझसे अगर कोई राजनीति पर चर्चा करेगा तो केवल दो आदमी ही करेंगे। इनमें से एक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक था।

उसके साथ बात करने में एक बात स्पष्ट हुई, जो मैं सोचता भी था, वह यह कि जन संघ और आर० एस० एस० एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वह इसे छिपाते भी नहीं थे और कहते थे कि जन संघ का जन्म राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से हुआ है, जिसे वह एक सांस्कृतिक या सामाजिक संगठन बताते थे और यह इसी की एक राजनीतिक संस्था है। हर क्षेत्र के लिए उनका अलग-अलग संगठन था—जैसे, विद्यार्थियों के लिए विद्यार्थी परिषद, मज़दूरों के लिए भारतीय मज़दूर संघ आदि-आदि। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग इन संस्थाओं के सदस्य होते थे।

बंगाल के श्यामाप्रसाद मुखर्जी, जो हिन्दू महासभा के नेता थे, सबसे पहले व्यक्ति थे जो आर० एस० एस० से जन संघ में भेजे गये थे। दीनदयाल उपाध्याय और दूसरे लोगों ने इसके बाद जन संघ में प्रवेश किया था। मैं यह जानना चाहता था कि जो लोग जन संघ में भेजे जाते हैं उन पर आर० एस० एस० का कितना नियंत्रण रहता है। मुझे बताया गया कि वे हमेशा आर० एस० एस० के अधीन रहते हैं। आम तौर पर वे अपने मन के मुताबिक़ काम करते हैं, लेकिन जब कभी ज़रूरी या नीति-विषयक मामलों को सुलझाना होता है तब उन्हें निर्देश दिये जाते हैं। उन्हें इन निर्देशों के अनुसार चलना पड़ता है। उदाहरण के लिए, चुनावों के लिए अभ्यर्थियों को छाँटना "हमारे परामर्श से" होता है, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आदमी ने कहा और हम लोग चुनावों में जन संघ के अभ्यर्थियों का प्रचार करने, धन आदि इकट्ठा करने में सहायता करते थे। आर० एस० एस० ही यह निर्णय करता था कि इस काम पर कौन लगाया जाये और कौन नहीं।

इस बात में कोई सन्देह नहीं था कि जन संघ और आर० एस० एस० के लोग निष्ठावान और राष्ट्रभक्त थे। मुझे विश्वास हो गया था कि ये लोग कभी भी राष्ट्र के प्रति ग़द्दारी नहीं करेंगे। लेकिन जिस बात पर मुझे हैरत होती थी वह यह थी कि उनका झुकाव स्वयं को ही सच्चा देशभक्त मानने की ओर ज़्यादा था। अन्य लोगों के प्रति, ख़ास तौर से मुसलमानों के प्रति, वह शक की नज़र से देखते थे। मुसलमानों के बारे में वह यह सोचते थे कि उनका ध्यान पश्चिमी एशिया की ओर रहता है और इनका 'दिल' भारत में नहीं लगता। यह दोनों प्रवक्ता कहते थे कि जिसे हिन्दू संस्कृति कहा जाता है वही भारतीय संस्कृति है और मुसलमानों को भारतीय होने के नाते इसे अपनाने में कोई झिझक नहीं होनी चाहिए। गीता, वेद, पुराण और पूजा-विधि भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति है, हिन्दू संस्कृति की नहीं। एक-आध बार वह बहस के दौरान धर्म-परिवर्तन में मुसलमानों की 'आस्था' और काफ़िरों का सफ़ाया करने में उनके

'विश्वास' की भी चर्चा करते। वह चाहते थे कि भारत में मुसलमान सच्चे मुसलमान बनें।

मुझे कुछ ऐसा लगता था कि जन संघ और आर०एस०एस० के लोग इस्लाम के बारे में बहुत कम जानते थे और भारतीय मुसलमानों के बारे में तो उससे भी कम। मुसलमान भी नयी दुनिया के प्रभाव में अपने को ढाल रहे थे। दुनिया के बहुत-से मुसलमान नेताओं ने कहा था कि इस्लाम को अपने समाज में भीतर से सुधार लाने की कोशिश करनी चाहिए। बहुत-से मुसलमान देशों में यह हुआ भी है। ऐसा लगता था कि जन संघ और आर० एस० एस० के ये हमारे दोस्त इस बात से अनभिज्ञ थे कि वे मुसलमानों से यह कहकर कि उन्हें अच्छा मुसलमान बनना चाहिए, उन पर अपना बड़प्पन जताते हैं। ऐसा लगता था कि वे यह अनुभव नहीं करते कि मुसलमानों के प्रति दया की भावना का प्रदर्शन करने से मुसलमान और भी निराश होते हैं और समझते हैं कि उन्हें बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता; नौकरी ढूंढ़ने, व्यापार करने या रोज़गार शुरू करने में उनके साथ भेद-भाव किया जाता है; उन्हें जान-बूझकर अलग रख दिया जाता है। और सरकार भी उनको समान अवसर दिलाने के लिए कुछ नहीं करती। प्राइवेट कम्पनियाँ तो उनको पूर्वाग्रहों के कारण नौकरी देने में हिचकिचाती थीं। और फिर, हर तरफ़ से उनको यह उपदेश सुनने को मिलता था कि उन्हें राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा के साथ मिल जाना चाहिए। यह भारतीयकरण के पुराने सिद्धान्त का नया रूप-जैसा लगता था। लेकिन भारतीय होने के योग्य बनने के लिए उनसे क्या करने की आशा की जाती थी? उन्होंने सभी राजनीतिक सभाओं में तो भाग लिया था जिसमें जन संघ भी शामिल था, मुसीबत के दिनों में उन्होंने तकलीफ़ें भी झेली थीं और उन्होंने पाकिस्तान के ख़िलाफ़ लड़ाई में भी हिस्सा लिया था। इससे ज़्यादा उनसे और किस बात की आशा की जाती है? वह और किस तरीक़े से राष्ट्रीय जीवन की अवधारणा में अपना योगदान कर सकते हैं?

मैंने जन संघ के अपने इन दोस्तों को बताया कि आज़ादी के अट्ठाइस साल बीतने के बाद भी बहुत-से मुसलमान सोचते हैं कि उन्हें अपनी वफ़ादारी और देशभक्ति का सबूत देना होगा। जब से विभाजन हुआ तब से उनको ही सबसे ज़्यादा तकलीफ़ झेलनी पड़ीं। वह अपने भविष्य के बारे में निश्चित नहीं हैं, राष्ट्रीय मुसलमान भी कभी-कभी अपने को असुरक्षित समझते हैं। नेहरू के शब्दों में, "हिन्दुओं को चाहिए था कि मुसलमानों के दिमाग़ में सुरक्षा का भाव जगाते, अल्पसंख्यकों के प्रति बहुसंख्यकों की यही ज़िम्मेदारी होती है।"

लेकिन जन संघ के मेरे दोस्त इस बात पर सहमत नहीं होते थे। वे कहते थे कि मुसलमानों के प्रति उनके मन में कोई द्वेष नहीं है—हो सकता है कि एक दिन मुसलमान जन संघ में शामिल भी हो जायें। लेकिन इससे पूर्व, उन्हें भारतीय पहले और तब मुसलमान होना पड़ेगा।

मेरे इस सवाल का कि क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जन संघ के लोग पहले भारतीय और तब हिन्दू हैं, उनका जवाब था कि हाँ। लेकिन तब उनके मत में हिन्दू होना भारतीय होना था। और बहस वहीं पर ख़त्म हो जाती जहाँ से शुरू हुई थी।

वार्ड में किसी ने कहा कि मुसलमान इस भावना से ही, कि उन्हें किसी भी क्षेत्र में उचित स्थान नहीं मिला है, या तो दक़ियानूसी हो जाते हैं या किसी शुद्ध साम्प्रदायिक संगठन में जा मिलते हैं। वे समझने लगते हैं कि साम्प्रदायिक

आधार पर अपने को संगठित करके अब से ज़्यादा लाभ उठा सकते हैं। बेरोज़गार होने के कारण नौजवानों को निराशा का ज़्यादा एहसास होता है और वे लड़ने-भिड़ने को तैयार हो जाते हैं। हालाँकि वह यह जानते हैं कि ऐसे कामों से हिन्दुओं में ख़राब प्रतिक्रिया होगी तो भी उन्हें कोई परवाह नहीं होती।

इसलिए मुसलमान किसी तरह की तब्दीली यहाँ तक कि अपने विवाह क़ानून में भी किसी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं हैं। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की तरह उनका विवाह क़ानून भी उनके धर्म का एक आख़िरी गढ़ बन गया है। उनको डर है कि वह अपनी विशेषता, या जिसको वह अपनी संस्कृति कहते हैं, खो बैठेंगे। अन्यथा यह बड़े ताज्जुब की बात है कि उन्होंने ऐसी तब्दीलियों को भी स्वीकार नहीं किया जो अधिकांश मुस्लिम देशों ने अपने यहाँ की हैं। यहाँ तक कि पाकिस्तान में भी दूसरी शादी करने के लिए पहली पत्नी की लिखित सहमति लेनी पड़ती है। लेकिन भारत में मुसलमानों ने चार-चार बीवियाँ रखने के अपने अधिकार को बनाये रखा है।

मुसलमानों के उत्तराधिकार क़ानून के अनुसार लड़के अपने पिता की सम्पत्ति के वारिस होते हैं लेकिन इस पिता के मरने के बाद उसके लड़कों के लड़के उत्तराधिकारी नहीं होते। बहुत वर्षों पहले, जब डॉ० ज़ाकिर हुसैन जीवित थे, इस बात की कोशिश की गयी कि मुसलमानों के विवाह क़ानून को 'नया' रूप दिया जाये। लेकिन केन्द्रीय मंत्रियों और संसद-सदस्यों ने इसका विरोध किया और, इस दलील के बावजूद कि जब संसद हिन्दुओं, सिखों और ईसाइयों के लिए क़ानून बना सकती है तब वह मुसलमानों के लिए भी बना सकती है, यह कोशिश छोड़ दी गयी थी।

मुसलमान बिना किसी कारण विवाह-क़ानून के बारे में अड़ गये थे, लेकिन अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के बारे में सरकार का दृष्टिकोण संकीर्ण था। अगर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी को अल्पसंख्यक संस्था का रूप दे दिया जाता, जो मुसलमान बुरी तरह चाहते हैं, तो आसमान नहीं फट जाता। अगर अधिनियम से अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के बुनियादी ढाँचे में कोई परिवर्तन किया जाना था तो ऐसा ही अधिनियम बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के लिए भी क्यों नहीं बनाया गया? लेकिन सरकार बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में 'हिन्दू भावना' के कारण कुछ भी परिवर्तन नहीं करना चाहती थी। सन् 1971 में जब अलीगढ़ यूनिवर्सिटी विधेयक का बनना शुरू हुआ तब यह सुझाव रखा गया कि इसी तरह का विधेयक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के लिए भी बनाया जाना चाहिए। लेकिन सरकार ने इस विचार को छोड़ दिया, क्योंकि वह हिन्दू मतदाताओं को 1972 के विधान-सभा-चुनाव के पहले नाराज़ नहीं करना चाहती थी।

उर्दू की समस्या भी है, जिसे साढ़े छह करोड़ भारतीय मुसलमान अपनी भाषा कहते हैं। उर्दू के ख़िलाफ़ निश्चित द्वेष रहा है और सबके मन में यह बात जैसे घर कर गयी है कि वह पाकिस्तान की भाषा है। इस तथ्य को भी ध्यान में नहीं रखा जाता कि उर्दू का जन्म दिल्ली और उसके आस-पास के इलाक़ों में हुआ था। इस भाषा के साथ जो सौतेला व्यवहार होता है उससे मुसलमानों में यह भावना और उग्र होती गयी कि उनके प्रति अन्याय हो रहा है। यह सुना गया कि उर्दू को उचित दर्जा दिलाने के लिए स्थापित इन्दर गुजराल-कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि उर्दू उस कसौटी को पूरा नहीं करती है जिसके आधार पर उसे किसी भी राज्य में दूसरी सरकारी भाषा का दर्जा दिया जाये। जब छठी अनुसूची

में दी गयी हर भाषा को देश के किसी-न-किसी भाग में सरकारी दर्जा मिला हुआ था, तब उर्दू को क्यों नहीं दिया जाता ? यह अधिकांश भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक जनसंख्या द्वारा बोली जाती है और इसके साहित्य की बराबरी कुछ भाषाओं के साहित्य के साथ ही हो सकती है। जमात-ए-इस्लामी के सभी तीनों नज़रबंदों ने अपनी विनम्रता के अलावा उर्दू के सलीक़ेदार इस्तेमाल से हम लागों का दिल जीत लिया था। हुकूमत-ए-इलाही की उनकी धारणा राम-राज्य या (ईसाई धर्म मानने वालों के लिए) किंगडम ऑफ़ गॉड ऑन अर्थ (पृथ्वी पर ईश्वर का शासन) जैसी है। लेकिन मनुष्य-निर्मित क़ानूनों के प्रति उनका विरोध और क़ुरान के सदियों पुराने क़ानून के प्रति उनका झुकाव इतना कट्टर है कि जन संघ के सदस्य कभी-कभी उसकी तीव्र आलोचना करते थे। मुझे याद आया कि गृह-मंत्रालय की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि जमात का "दूसरे लोगों के साथ गँठबंधन है।"

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, आर० एस० एस० और जन संघ के लोग और जमात के सदस्य एक-दूसरे के नज़दीक आते गये। वे अपना अधिकांश समय आपस में बातचीत करने और खेलने में बिताते थे। एक-दूसरे के प्रति दोनों के सन्देह दूर होते गये और उनमें से अधिकांश लोगों ने यह स्वीकार किया कि वे एक-दूसरे को ठीक से नहीं जानते थे। वे तानाशाही के ख़िलाफ़ लड़ाई में एक-दूसरे का हाथ बँटाने की बात अक्सर करते थे। एक बात निश्चित हो गयी थी कि जब कभी वे छूटेंगे तो उनके आपसी संबंध पूर्वाग्रहों से अधिक मज़बूत साबित होंगे।

जहाँ तक जमात की कट्टरता का संबंध है, यह एक तथ्य है। मुझे याद है, हाल ही में गृह-मंत्रालय की एक अध्ययन-रिपोर्ट[1] में इसे "आधुनिकता के प्रति प्रतिरोध" कहा गया था। इस अध्ययन-रिपोर्ट में यह कहा गया था कि चूँकि मुसलमान अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में हैं जो अपनी विशेषता को सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, इसलिए आधुनिकता के प्रति उनकी प्रतिक्रिया संदिग्ध है और जो रूढ़िवादी हैं वे तो स्पष्ट रूप से आधुनिकता के विरोधी हैं। इस अध्ययन-रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि जो लोग आधुनिकता से प्रभावित हैं वही परिवर्तन के विरोध में अगुआ रहते हैं, क्योंकि उन्हें इस्लामी विशेषता के लिए आधुनिकता से पैदा होने वाला ख़तरा ज़्यादा साफ़ दिखायी देता है। वह साम्प्रदायिक राजनीतिक आन्दोलनों को छेड़ने में, इस्लामी भाषाओं का विकास करने में और सुधार का विरोध करने में अगुआई करते हैं। रूढ़िवादी मुसलमान समुदाय की एकता के बारे में चिन्तित रहता था, जिसे वह आधुनिकता की प्रक्रिया में निहित बिखरने वाली संभावनाओं के प्रसंग में विशेष ज़रूरी समझता है। इस अध्ययन के अनुसार ऊँचे वर्ग के ऐसे लोग जो आधुनिकता में रंगे होते थे उनमें धार्मिक भावनाओं की कमी रहती थी, वे सामुदायिक एकात्मता को विकसित करने के लिए राजनीति और समानता की चर्चा को मुख्य साधन के रूप में इस्तेमाल करते थे।

मेरा अनुमान था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विभाजन के पूर्व की घटनाओं से बहुत ज़्यादा प्रभावित था। वह पाकिस्तान बनने पर हिन्दुओं और सिक्खों के क़त्ल किये जाने के लिए मुसलमानों को दोषी ठहराता रहता था और यह भूल जाता था कि लगभग इतने ही ज़्यादा मुसलमान भी मारे गये थे। मुझे याद है कि जब मैं सरहद पार कर भारत में शरणार्थी के रूप में आया था तब वही खून-ख़राबे

1. 'कंटम्पोरेरी मुस्लिम एटिट्यूड्स ऑन देयर प्लेस इन इंडियन सोसाइटी'

की घटनाएँ यहाँ भी हो रही थीं, सिर्फ़ आदमी बदल गये थे। पाकिस्तान में ग़ैर-मुस्लिम मारे जा रहे थे और भारत में मुसलमान।

लेकिन दोनों तरफ़ ऐसे लोग थे जो अपने को और दूसरों को पहले मनुष्य और बाद में हिन्दू, मुसलमान या सिख समझते थे। हमने पाकिस्तान बनने से दो दिन पहले 12 अगस्त को अपना घर छोड़ा और हम कैंटोनमेंट में चले आये, जो फ़ौज की निगरानी के कारण ज़्यादा सुरक्षित था। यहाँ हमें एक ऐसे घर में पनाह मिली जो मुसलमान का था। एक दूसरे मुसलमान ने हमें खाना और दूध दिया था। एक बार हमारे रिश्तेदारों और दोस्तों की संख्या, जो इस मकान में रहते थे, सौ से भी ज़्यादा हो गयी। मेरे पिता के मुसलमान दोस्त ने हम सबको खाना खिलाया। एक बार मेरे पिता ने उनको रुपये देने चाहे तो इसका उन्होंने बेहद बुरा माना। उन्होंने कहा कि ज़िन्दगी में एक बार उन्हें यह मौक़ा मिला कि वह अपने दोस्त की सेवा करें, ऐसे दोस्त की जिसने डॉक्टर होकर बहुत लोगों की जानें बचायी थीं। मेरे पिता के दोस्त कहते थे कि ऐसे मौक़े पर उनको सेवा करने से न रोका जाये।

मैं आर० एस० एस० के अपने दोस्तों की बातचीत को सुनता हुआ यह याद कर रहा था कि किस प्रकार मैंने अपना वतन सियालकोट छोड़ा और किस तरह अमृतसर पहुँचा। डॉक्टर होने के नाते मेरे पिता सेना के बहुत-से ग़ैर-मुस्लिम अफ़सरों को जानते थे जो सड़क के रास्ते भारत आने की तैयारी कर रहे थे। हमने पूछा : क्या कोई हमको भी साथ ले चलेगा ? लगभग सभी ने इंकार कर दिया। हर एक की अपनी कार या ट्रक भरी हुई थी। लेकिन एक मेजर ने, जो मेरे पिता का बड़ा उपकार मानता था, हमें अपने ट्रक में एक सीट दी। हमारे परिवार में से कौन जाये ? कोई भी दूसरे से अलग नहीं होना चाहता था। आख़िर में लॉटरी निकाली गयी और मैं बे-मन से जीता हुआ ट्रक में धँस कर बैठ गया जो जल्दी ही एक काफ़िले में जा मिला। ट्रक में सामान ठसाठस भरा हुआ था और मैं एक एक पुरानी जर्जर कोच के नीचे सिमटा बैठा था। सभी लोग डरे हुए थे। कोई किसी से ज़्यादा बात नहीं कर रहा था। लेकिन कभी-कभी भारतीय नेताओं पर लोग उबल पड़ते थे कि उन्होंने पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं को धोखा दिया था। सियालकोट से लगभग बत्तीस किलोमीटर दूर संब्रियाल तक कोई घटना नहीं हुई। लेकिन उसके बाद यह काफ़िला रुक गया। एक भीड़ ने हमें रोक लिया। हमारे सैनिक रक्षकों के पास जो स्टेनगनें, राइफ़लें और मशीनगन थीं वह तन गयीं। लेकिन यह झूठा अलार्म था। यह ग़ैर-मुसलिम आदमियों का जत्था था जो दूर के शहरों से भारत पैदल आ रहा था। एक दर्दनाक दृश्य था। वे सब फटेहाल थे, हर एक के चेहरे पर तकलीफ़ों की रेखाएँ उभर आयी थीं। उनका सब-कुछ लुट चुका था। कुछ आदमियों के शरीर पर घाव थे जिससे पता लगता था कि इन्हें लाठी से मारा-पीटा गया था, औरतें और बच्चे हक्के-बक्के थे।

मुझे आज भी याद है कि एक सिख, जिसकी लम्बी-लम्बी दाढ़ी आधी पक चुकी थी, मुझे बार-बार रोक रहा था और एक बच्चे को, जो उसका इकलौता पोता था, मेरी गोदी में दे रहा था। उसने मुझसे अनुनय की थी, "हमारे ख़ानदान में एक यही बचा है। इसे भारत लेते जाओ। कम-से-कम यह तो ज़िन्दा रहे।" एक नौजवान औरत ने अपना बच्चा ट्रक में फेंक दिया, "मैं तुम्हें ढूँढ़ लूंगी, मेरे बच्चे को लेते जाओ।" मैं इन लोगों के इन बच्चों को ट्रक में कैसे ले जा सकता था, जब मेरे परिवार में से अकेले मुझी को इसमें जगह दी गयी थी ? मैं किस

तरह समझाता ? किसको समझाता ? क्या समझाता ?

इन बेसहारा लोगों को छोड़ना बड़ा मुश्किल था। हर आदमी को अपनी चिंता खुद थी। इससे ज्यादा हम कर भी क्या सकते थे! सरहद तक पहुँचने के लिए लम्बा रास्ता तय करना बाक़ी था। फ़ौजें दिन में ही सब काम पूरा कर लेना चाहती थीं। गाड़ियाँ घर-घर कर चल पड़ीं। मैंने पीछे देखा, लोग हाथ उठाकर चिल्ला रहे थे और हम लोगों से कुमक जल्दी भेजने के लिए बार-बार कह रहे थे। ट्रकों के पीछे से उड़ती धूल उनके चेहरों पर छा गयी और वह हमारी आँखों से ओझल हो गये।

हम ग्रांड ट्रंक रोड से जा रहे थे। हमें रास्ते में कई और दस्ते मिले, छोटे और बड़े, कुछ रावलपिंडी की तरफ़ से और कुछ गुजरानवाला की तरफ़ से और कुछ साथ के शहरों से थे। लगता था कि पूरी आबादी ही चली आ रही है। कितनी दूर चलना है? शायद कोई नहीं जानता था, किसी को इसकी परवाह भी नहीं थी। इन बातों में क्या रखा है कि वह अपने उन घरों को छोड़ आये जहाँ उन्होंने सारी ज़िन्दगी काटी थी, अपने उन दोस्तों को छोड़ आये जिनको वह दिल से चाहते थे।

जब हमारा दस्ता लाहौर की सीमा पर पहुँचा तब दिन काफ़ी ढल चुका था। यह रुक गया पर पता नहीं क्यों, ख़बर मिली कि अमृतसर में मुसलमानों के एक दस्ते पर हमला हो गया है और लाहौर के मुसलमान इसका बदला लेने का इन्तज़ार कर रहे हैं। हम लोगों को ट्रक से उतर जाने का हुकुम दिया गया जो घेरा बनकर खड़ी किये गये थे, जिससे रक्षा की पहली पंक्ति-जैसी तैयार की जा सके। आदमी ट्रकों से उतरकर पीछे बैठ गये और औरतें तथा बच्चे बीच में बिठा दिये गये। हम ख़ामोश होकर इन्तज़ार करने लगे। दूर पर कभी-कभी गोली चलने की आवाज़ सुनायी पड़ जाती थी। नज़दीक में खेतों से सड़ती हुई लाशों की बदबू आ रही थी। हम लोग 'अल्लाह ओ अकबर', 'या अली', 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे सुन रहे थे, लेकिन कोई हमला नहीं हुआ। देर तक इन्तज़ार करने के बाद हमारा डर ग़लत निकला।

हम फिर चल पड़े। मैंने सड़क के दोनों तरफ़ लाशों पर लाशें देखीं। इधर-उधर ख़ाली ट्रक खड़े हुए थे, जो इस बात की गवाही दे रहे थे कि क़त्ल करने के पहले या बाद में लूटपाट हुई थी। ज्यों-ज्यों हम अपने लक्ष्य के नज़दीक पहुँचते जाते हमारी घबराहट बढ़ती जाती।

और तब हमने 'भारतमाता की जय' सुनी। यही हमारे सफ़र का आखिरी लक्ष्य था। हम सफ़ेद रंगे ड्रमों के पास से जल्दी से निकल गये, बाँस के खम्भे पर भारत का राष्ट्रीय झंडा फहरा रहा था, जो सरहद का प्रतीक था। सब लोग खुश थे। लोग एक-दूसरे के गले मिल रहे थे। यह एक बड़ी बात थी कि हम लोग ज़िन्दा रह गये। फ़ौज के एक अफ़सर की बीवी ने एक पैकेट निकाल कर मिठाई बाँटी, जो स्पष्ट ही वह अपनी सीट के नीचे छिपाये हुई थी। अब भी दिन था। मैंने देखा कि लोग ट्रकों में भरे हुए और पैदल हमारे नज़दीक से उल्टी दिशा की ओर जा रहे हैं। वे मुसलमान थे। मैं उनके चेहरों पर वही दर्द की झुर्रियाँ देख रहा था—आदमी और औरतें अपने सिर पर अपने-अपने सामान की गठरियाँ लिये हुए थीं। उनके बच्चे उनके पीछे चल रहे थे। वह भी अपना घर-बार अपने दोस्त और अपनी आशाओं को छोड़ आये थे।

हमारे ट्रक रुक गये, जिससे उनको रास्ता दिया जा सके। हम में से कुछ लोग

ट्रकों से उतर गये उनको देखने—सिर्फ़ देखने के लिए। कोई कुछ बोला नहीं—न वे और न हम। लेकिन हम लोगों ने एक-दूसरे को पहचान लिया, यह संबंध तुरंत जुड़ गया। दोनों ने लोगों को क़त्ल होते हुए और तकलीफ़ें झेलते हुए देखा था, दोनों को अलग कर दिया गया था, दोनों शरणार्थी थे।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये लोग शान्त होते गये, उन्होंने अनुभव किया कि बहुत दिनों तक जेल से छूटने का कोई चारा नहीं था। कुछ लोगों ने ब्रिज का खेल सीखना शुरू कर दिया, कुछ भाषा-वैज्ञानिक बनने लगे और अपने संगी क़ैदियों से बंगला या उर्दू सिखाने का आग्रह करने लगे। कुछ लोग पढ़ना चाहते थे, मुझे जेल की लायब्रेरी जाकर वार्ड में लोगों के लिए किताबें लाने का काम सौंपा गया। हमने जेल-अधिकारियों से इस बात के लिए इजाज़त माँगी और मुझे लायब्रेरी आने जाने की इजाज़त मिल गयी।

लायब्रेरी में कुछ लोग ही होते थे। मैंने वहाँ आँखों के मशहूर डॉक्टर एन० एस० जैन को भी देखा, जिन्हें अपनी पत्नी की हत्या के अपराध में सज़ा मिली हुई थी। मैं ताज्जुब में पड़ गया। वही लायब्रेरियन भी थे। मैंने उन्हें पहचान लिया, क्योंकि जब उन पर मुक़दमा चल रहा था तब उनकी फ़ोटो अखबारों में छपी थी। मैंने उनसे सारी घटना के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि मसौदा तैयार हो गया है, एक दिन यह छप जायेगा। उन्होंने आगे कहा, "आप शायद मेरी इस बात से सहमत होंगे कि इसमें वर्णन प्रामाणिक है।" लायब्रेरी जैसे क़बूतरखाना थी, जेल के अन्दर एक-दूसरी जेल। किताबें आलमारी के पटरों पर रखी थीं, बेतरतीब। किसी ख़ास किताब को ढूँढ़ना जैसे कूड़े में से दाना निकालना था। अधिकांश किताबें बहुत पुरानी थीं, जैसी कि उन पुराने क्लबों में मिलती हैं, जो कभी सिर्फ़ अंग्रेज़ों के लिए हुआ करते थे।

मेरे साथी चाहते थे कि मैं राजनीति पर कुछ किताबे लाऊँ। लेकिन वहाँ श्रीमती गांधी के भाषणों को छोड़कर राजनीति पर कोई भी किताब नहीं थी। वहाँ पर महात्मा गांधी की लिखी कोई किताब नहीं थी, लेकिन नेहरू की **ग्लिम्पसेज़ ऑफ़ हिस्ट्री** थी। हिन्दी की किताबों का संग्रह अच्छा था।

ताज्जुब था कि वहाँ **लेडी चैटर्लीज़ लवर** की एक प्रति आलमारी में मिल गयी। मुझे नेहरू की वह टिप्पणी याद हो आयी जो उन्होंने **लेडी चैटर्लीज़ लवर** पर उस समय लिखी थी जब मैं गृह-मंत्रालय में काम करता था। सीमा-शुल्क के अधिकारियों द्वारा नोबोकोव की **लोलिता** किताब रोक ली गयी थी और गृह-मंत्रालय की यह दलील थी कि **लेडी चैटर्लीज़ लवर** की तरह इस किताब पर भी रोक लगा दी जानी चाहिए। नेहरू ने दलील दी थी कि "**लेडी चैटर्लीज़ लवर** किताब पर क्यों रोक लगायी जाये और **लोलिता** पर क्यों नहीं?" नेहरू ने जिस बात पर आपत्ति की थी वह इस पुस्तक के मुख्य पात्रों द्वारा व्यवहृत या चर्चित शृंगार-क्रियाओं का इसमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वर्णन था। उन्होंने कहा था कि यह वर्णन भद्दा और आपत्तिजनक है, अगर इस किताब में कोई साहित्यिक गुण है तो वह घासलेटी, गन्दे परिच्छेदों और शब्दों के कारण ढक गया है। और यह किताब कुल मिला कर अश्लील है।

जैन एक रजिस्टर रखते थे। इसमें उन्होंने उन किताबों के नाम दर्ज कर लिये जो मैंने चुनी थीं। मेरी आँखें कुछ दिनों से दुख रही थीं। उन्होंने मेरी आँखों की जाँच कर कहा कि मेरी आँखों में कंजेक्टीवाइटिस नाम की बीमारी हो गयी है। उन्होंने इसका इलाज करने में अपनी असमर्थता प्रकट की, क्योंकि उनको जेल

में इसके लिए कोई सुविधा नहीं मिली हुई थी। लेकिन उन्होंने एक ख़ास दवा लगाने के लिए कहा, जो मुझे जेल से मिल गयी।

मेरी आँखें उस दवा से तो ठीक नहीं हुईं जो डॉक्टर जैन ने वतायी थी, वल्कि उस देखभाल से ठीक हुईं जो वार्ड में वैद्यजी ने की। वह दिन में दो वार आते और नीम की पत्तियों से मेरी आँखों की सिकाई करते, जिससे मेरी आँखों को आराम मिला।

जो किताबें मैं वार्ड में लाया उनमें लेडी चैटर्लीज़ लवर भी थी। मेरे कुछ दोस्त मेरे चुनाव पर खुश थे। इस वात पर वड़ी गरम वहस हुई कि अश्लीलता क्या है और कला क्या है। इस वात पर सभी दुखी थे कि चाहे जितनी भी रोक लगाओ, किताबों में, सिनेमा में और नाटकों में अशिष्टता वड़ी तेज़ी से साधारण वात होती जा रही है। लेकिन कुछ का विचार था कि कला, साहित्य और मनोरंजन पर रोक लगाने की कोई कोशिश नहीं की जानी चाहिए। इसे रोकने का तरीक़ा सिर्फ़ यही था कि पावन्दी या रोक विलकुल हटा ली जाये। एक प्रोफ़ेसर ने कहा कि क्रामवेल ने ज्यों ही थियेटरों को वन्द करने का आदेश दिया था त्यों ही लोग चोरी-छिपे पिछवाड़े से निषिद्ध अभिनयों को देखने जाने लगे थे। हमारी वहस एकाएक रुक गयी, जव हमने एक भारी-भरकम आदमी को अपने वार्ड के पास से गुज़रते हुए देखा और हम लोग काँटोंदार दरवाज़ों से उसे ग़ौर से देखने लगे। वह राजनारायण थे, उनके पीछे-पीछे जेल का एक अदना-सा कर्मचारी चल रहा था। वह रोज़ाना उधर से निकलते और हम लारेल और हार्डी की इस जोड़ी के आने का इन्तज़ार करते। लेकिन कोई उनकी तरफ़ हँसता नहीं था, क्योंकि वह जन संघ के लिए भी एक हीरो वन गये थे, उन्होंने श्रीमती गांधी के खिलाफ़ चुनाव-याचिका जो जीती थी। वह दरवाज़े पर अक्सर रुक जाते और मेरे वारे में पूछते। पत्रकार होने के नाते मैं उनसे अक्सर मिल चुका था, लेकिन इस समय वह मेरे पत्रकार थे जो वाहर की ख़वरें सुनाते। उनके संवाददाता वे वकील थे जो उनकी चुनाव-यात्रिका स्वीकार करने के वाद में इलाहावाद हाईकोर्ट के निर्णय के खिलाफ़ सुप्रीम कोर्ट में दर्ज अपील की वावत उनसे रोज़ाना मिला करते थे।

मैंने उनसे सुना कि मेरी पत्नी ने पाँच अगस्त को मेरी नज़रवन्दी के खिलाफ़ संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन दिल्ली हाईकोर्ट में एक याचिका दायर की है, जिसमें मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रार्थना की गयी है। इस याचिका में एक दूसरे आदेश को भी चुनौती दी गयी थी, जिसमें कहा गया था कि मेरी नज़रवन्दी राष्ट्रपति द्वारा घोषित इमरजेंसी को 'प्रभावी' ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक थी।

मुझे ताज्जुव हुआ कि भारती ने याचिका दायर करने के वारे में मुझे पहले से कोई संकेत नहीं दिया था और न याचिका दर्ज हो जाने के वहुत दिन के वाद भी कोई ख़वर भेजी थी। राजनारायण ने वताया कि मेरा केस पक्का है। लेकिन मुझे शक था। मैं देश में डर के वातावरण का अनुभव कर रहा था। सभी वुज़दिल थे, जज भी।

राजनारायण का साथ हमेशा अच्छा था। एक दिन मैंने जेल-सुपरिंटेंडेंट से पूछा जो हर सोमवार को क़ैदियों से निजी सम्पर्क के लिए सभी वार्डों में आता था, कि हमारे सेल में राजनारायण को क्यों नहीं रख दिया जाता? हमने वताया कि उनका वार्ड, जो वहुत लम्वा-चौड़ा था, महिला नज़रवंदों को दे दिया जाये। हमें मालूम हुआ था कि महिलाओं का वार्ड वहुत वुरी तरह भर गया था। जेल-सुपरिंटेंडेंट ने

बताया कि उसे यह हुकुम था कि राजनारायण को अकेला रखा जाये—उन्हें अपने जेलरों और वकीलों के सिवा किसी से भी मिलने की इजाज़त नहीं थी।

लेकिन राजनारायण उन आदेशों से विचलित होने वाले नहीं थे। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम ही मेरे वार्ड में चले आया करो।

जेल का अदना कर्मचारी, जो उनके साथ चलता था, हमारे वार्ड में उनके आने-जाने से स्पष्ट रूप से असन्तुष्ट था। उसने मुझसे कहा कि मैं राजनारायण से बात न किया करूँ। उसे डर था कि वह झंझट में पड़ जायेगा और उसे अपनी नौकरी से हाथ भी धोना पड़ सकता था। राजनारायण को कोई दबा नहीं सकता था। एक दिन मुझे उनके पास आने में कुछ देर हो गयी थी। बस, वह मेरा नाम लेकर इतनी ज़ोर से चिल्लाने लगे कि वार्डर ने समझा, उसके अफ़सर आ धमकेंगे। वह डरता-डरता राजनारायण से बोला कि वह हम लोगों से बात न करें। राजनारायण ने शान्त होकर जवाब दिया कि उसे कुछ रुपयों के पीछे अपना ईमान नहीं बेचना चाहिए। उन्होने कहा, "हम जब सरकार में आयेंगे तब तुमको अच्छी नौकरी देंगे।" वार्डर परेशानी में पड़ गया—वह इस बात से इनकार भी नहीं कर सकता था कि राजनारायण कभी सरकार में नहीं आयेंगे।

राजनारायण ने मुझे बताया कि जैसे ही सुप्रीम कोर्ट में उनके केस की सुनवाई ख़त्म हो जायेगी वह हिसार ले जाये जायेंगे। उन्होंने कहा कि बंसीलाल उन्हें 'लेने' के लिए बहुत उत्सुक हैं। सुना गया था बंसीलाल ने अपने कुछ आदमियों से कहा है, "मैंने बहन जी (श्रीमती गांधी) से कहा कि आप मुझे राजनारायण को दे दीजिये और मैं उनके पुट्ठे छाँट दूँगा।"

राजनारायण ने एक दिन बड़ी संजीदगी के साथ पूछा कि श्रीमती गांधी की तानाशाही के लिए क्या वे ज़िम्मेदार हैं? अगर वह अपनी चुनाव-याचिका न दायर करते और जीतते तो क्या वह जनता से उसकी निजी आज़ादी छीनने के लिए यह सब भयंकर कार्य करतीं ?

यह एक मनोरंजक विषय था। निश्चय ही एक दिन कोई ईमानदार शोधकर्ता डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने के लिए इस पर शोध करेगा। लेकिन तब यह निर्णय करना कठिन था कि क्या इलाहाबाद हाईकोर्ट ने तानाशाही के लिए रास्ता खोल दिया था। निर्णय से श्रीमती गांधी को उस रास्ते पर चलने में आसानी हो गयी, जिस पर वह पहले से ही चल रही थीं।

क्या वह सोचती थीं कि वह ऐसी जगह पहुँच गयी हैं कि किसी-न-किसी तरह की तानाशाही ज़रूरी है ? अगर ऐसा था तो उन्होंने इलाहाबाद के निर्णय के बाद ही इमरजेंसी लागू करने का विचार क्यों किया ?

मेरा अनुमान था कि जैसे ही स्थिति बिगड़ती गयी उनके दृष्टिकोण में दो तब्दीलियाँ आ गयीं। पहली यह कि उन्होंने दूर भविष्य का विचार करना छोड़ दिया, वह घटनाओं के अगले मोड़ के बारे में ही चिन्तित रहने लगीं। दूसरे यह कि वह अन्तिम लक्ष्य व संस्थाओं के बारे में सोचने के बजाय सिर्फ़ इस बात की फ़िक्र में थीं कि किस तरह प्रधानमंत्री बनी रहें। उन्होंने इस भावना को यह दलील पेश कर न्याय-संगत बनाया कि अगर वह प्रधानमंत्री नहीं रहीं तो देश में ऐसा कोई नहीं रहेगा जो देश को उसके चमकीले लक्ष्यों की ओर ले जाना सुनिश्चित कर सकेगा।

केन्द्र से ज़्यादा राज्यों में, शासकों ने जो मिला उसे हथियाना शुरू कर दिया, जैसे सभी को यह विश्वास हो गया था कि यह मौक़ा है कि हर चीज़ जो हाथ लग

सके हथिया ली जाये। चूँकि नेताओं का दिमाग़ इस तरह काम कर रहा था, इसलिए मनमाने और निरंकुश कामों का दौर दिन-पर-दिन बढ़ता गया।

तब जैसे संकट की घड़ियों में संभ्रांत वर्ग पर अधिक ज़िम्मेदारी आ जानी चाहिए थी, लेकिन इन लोगों ने चुपचाप अपनी स्वीकृति दे दी। इस वर्ग के लोगों ने अपनी इस चुप्पी को कई तरह से युक्ति-संगत बताया, सभी लोग बढ़ा-चढ़ाकर बहाना करने लगे। निरुपाय होने की एक दलील यह थी, "अकेले मेरे बोलने से, सबके साथ न चलने से क्या फ़ायदा, एक आदमी के विरोध करने से क्या लाभ होगा?" दूसरी दलील ज़रा ज़्यादा दमदार थी, "लेकिन मुझे यह कैसे विश्वास हो कि जो बातें आप कह रहे हैं, सच्ची हैं? मैं असलियत को कैसे जान सकता हूँ? इसका सबूत कहाँ है?" यह एक अजीब विडम्बना थी कि नेताओं को जब कुछ नहीं करना होता था तब वह इन्हीं दलीलों का इस्तेमाल करते थे।

जो बात मेरी समझ में नहीं आती थी वह यह थी कि जिन लोगों के पास इतनी ज़्यादा सुख-सुविधाएँ थीं कि वे इन्हें छोड़ सकते थे। वे स्थिति की गंभीरता के अनुसार अभी तक अपने को नहीं ढाल रहे थे। ऊँचे वर्ग को ही लीजिये जिसमें मंत्रीगण, ऊँचे अधिकारी, प्रशासक, व्यापारी और बुद्धिजीवी शामिल थे। इनके रहन-सहन के तौर-तरीक़े में उन कठिनाइयों से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा जिनसे देश गुज़र रहा था, सिवाय इसके कि हो सकता था कि इनका तड़क-भड़क का ख़र्च ऊँची क़ीमतों के कारण कुछ कम हो गया हो। जब वे समाजवाद की, कल्याणकारी राज्य या उत्पादन-प्रधान समाज की चर्चा करते तब उनकी कथनी और करनी में इतना ज़्यादा अन्तर होता था कि यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि कभी इन्होंने भी तक़लीफ़ें झेली हैं या ग़रीबी का मुँह देखा है।

अगर उनसे कुछ काम करने के लिए तैयार होने को कहा जाता तो वे अपना कंधा डाल देते और कहते, "थोड़े-से लोग क्या कर सकते हैं?" यह सच था कि उनका अपने महत्व को न समझना और काम करने के लिए आगे न आना मौलिक दृष्टि से ज़्यादा महत्व नहीं रखता था। लेकिन वे यह भूल गये थे कि जो आदर्श वे प्रस्तुत करते उससे देश में मनोवैज्ञानिक वातावरण तो तैयार होता ही, इसके अलावा वे करोड़ों लोगों के नज़दीक़ आ जाते जो ग़रीब थे। उदाहरण के लिए, अगर मंत्रीगण छोटे-छोटे घरों, ख़ास तौर से फ़्लैट्स में आ जाते या चमचमाती विदेशी मोटर-गाड़ियों पर चढ़ना छोड़ देते तब वे देश में एक नवीन विचारधारा को जन्म दे सकते।

महात्मा गांधी मंत्रियों से यह चाहते थे कि वे सीधे-सादे जीवन का आदर्श प्रस्तुत करें, जिससे लोगों की आवश्यकताएँ उनकी आमदनी से ज़्यादा न बढ़ जायें और दूसरी ओर वे रचनात्मक कार्यों के लिए धन बचायें। लेकिन नेता आज़ादी की लड़ाई के दौरान तो सादगी से रहा करते थे, लेकिन अब उनको अँग्रेज शासकों के तौर-तरीक़ों को अपनाने में देर नहीं लगी। केन्द्रीय मंत्रियों ने वाइसराय के इक्ज़ीक्यूटिव कौंसिलरों की, राज्यपालों ने भूतपूर्व गवर्नरों की नक़ल करनी शुरू कर दी, जब कि आई० सी० एस० अफ़सर शासक और शासितों में फ़र्क़ करने की पुरानी परम्परा पर चलते रहे। आई० ए० एस० अफ़सरों ने उनका अनुसरण किया और उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि उनका वेतन और अन्य सुख-सुविधाएँ आई० सी० एस० अफ़सरों से कम थीं।

मैं सोचता था कि अगर मोरारजी देसाई, चरणसिंह या जॉर्ज फ़र्नानडीज़ सरकार में आये तो क्या ये भी रहन-सहन का वही तरीक़ा अपनायेंगे जो कांग्रेसी

मंत्रियों का है ?

औरतों का वार्ड हमारे वार्ड के बाद था, बीच में सिर्फ़ एक दीवाल थी। जब वहाँ कोई नज़रबंद आता, हम लोगों तक ख़बर पहुँच जाती। जेल में ख़बर बड़ी तेज़ी से फैलती थी, जिसके लिए वहाँ कई साधन थे। वहाँ वार्डर थे जो हमें ख़बर देना पसन्द करते और कैंटीन वाला सवेरे सामान के साथ ख़बरें भी ले आता था। लेकिन हमारा सर्वोत्तम संवाददाता था पालिश करने वाला एक लड़का—वह अपने को राजू कहता था। वह एक वार्ड से दूसरे वार्ड में दिन में कम-से-कम तीन बार घूम जाता था। वह जूते-चप्पलों पर पालिश करते समय बातें करता और ख़बरें इकट्ठी करता था। उसने किसी से भी यह बात नहीं छिपायी कि वह लड़कियों के छेड़ने के अपराध में पकड़ा गया था। हमारे जूते-चप्पलों पर पालिश की ज़रूरत तो होती नहीं थी, लेकिन हम उसका बड़ी उत्सुकता से इन्तज़ार करते थे। वह हमें गाना सुनाता था। वह हरदम कुछ-न-कुछ गाकर सुनाने के लिए तैयार रहता था। हम उसे सिगरेट या कूपन दे देते थे। वह जितनी देर हमारे पास ठहरता और खबरें सुनाता उतने ही ज़्यादा कूपन उसे मिलते थे।

उसी ने हमें बताया कि जयपुर की महारानी और ग्वालियर की महारानी औरतों के वार्ड में नज़रबंद थीं। बाद में उसने बताया कि इन दोनों को जेल की ज़िन्दग़ी दूभर हो रही थी। उनको अपराधिनों—हत्या करने, चोरी करने वाली औरतों और वेश्याओं—के साथ रखा गया है और उनको नल से पानी लेने, शौच के लिए और खाने के लिए इन्हीं के साथ लाइन में लगना पड़ता था। हम मर्द-नज़रबंदों को कम-से-कम इस तरह तो नहीं करना पड़ता था। जब हमने राजनीतिक औरत-नज़रबंदों की हालत के बारे में जेल-सुपरिंटेंडेंट से शिकायत की तब उसने बताया कि जेल में औरतों के लिए एक ही वार्ड है और सभी क़ैदी औरतों को उसी में रखा गया है।

ऐसा लगता था कि इस बात के आदेश दिये गये थे कि इन दोनों महारानियों को जितनी हो सके तकलीफ़ दी जाये। लगता था कि औरत-वार्डरों ने क़ैदियों को यह इशारा कर दिया था कि इन नज़रबंदों को शौच के लिए जितनी देर तक हो सके उतनी देर तक लाइन में खड़ा रखें। इस वार्ड में नहाने के लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं थी, सभी लोगों को असल में खुले में ही नहाना पड़ता था। उन्हें या तो खुले में या अन्दर सोना पड़ता था, जहाँ तिल रखने की जगह नहीं थी।

सबसे भयानक बात यह थी कि कुछ क़ैदी औरतें वहाँ पेशा भी करती थीं। यह पुलिस, वार्डरों, जेल के अधिकारियों और कुछ मर्द-क़ैदियों के मिले-जुले सहयोग से होता था।

इनमें एक नज़रबंद महिला भी थी—श्रीलता, जिसके बारे में यह कहा गया था कि यह नक्सलवादी है। उसने दिल्ली के बाहर श्रीमती गांधी के फ़ार्म के मज़दूरों को उकसाया था कि वह क़ानून में निर्धारित मज़दूरी की माँग करें। पता चला था कि उसने जेल में भी औरत-वार्डरों से कहा था कि वह अपने रहन-सहन के आधार पर वेतन की माँग करें।

इस महिला का सभी आदर करते थे, लेकिन निराशा की बात यह थी कि नक्सलवाद भी एक विनाशकारी सिद्धांत बनकर रह गया था। नज़रबंदों ने कहा कि व्यवस्था बदलने के लिए नक्सलवादी वर्षों से हिंसात्मक कार्रवाइयाँ कर रहे हैं, लेकिन उनको कोई सफलता नहीं मिली। भारत में शायद उनकी बात लोगों के

गले के नीचे नहीं उतरती है। हत्या तो हत्या है।

लेकिन नक्सलवादियों के लिए हिंसा व्यक्तिगत धरातल पर शुद्धीकरण का एक साधन है। नये वाम मार्ग के नेता फ्रांज़ फ़ानन ने भी इसी बात की शिक्षा दी थी। वार्ड में अधिकांश लोगों ने कहा कि इन हत्याओं से समस्या का हल नहीं निकलता, इनसे मानवीय व्यवहार में आदर्श और मूल्य समाप्त हो जाते हैं।

हम लोगों में अधिकांश का यह विचार था कि पश्चिमी देशों के मज़दूरों के प्रति नये वामपंथियों का असंतोष उचित ही था, क्योंकि यह मज़दूर स्वयं बुर्जुआ हो गये थे और इसीलिए कोई क्रांतिकारी क़दम नहीं उठा सकते थे। हमारा विचार था कि नया सर्वहारा वर्ग वह था जिसमें तीसरी दुनिया के ग़रीब लोग, ख़ासकर किसान और वह लोग शामिल हैं जो यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका या अन्यत्र रंग और जाति के कारण भेद-भाव से त्रस्त थे।

हमारी समस्या नक्सलवादी कम, व्यावहारिक ज़्यादा थी। पालिश वाले लड़के ने आकर ख़बर दी कि औरतों के वार्ड में बिजली के पर्याप्त बल्ब नहीं थे और वहाँ एक साँप देखा गया था। हमने यह बात अपनी दोपहर बाद वाली बैठक में रखी—वार्ड के सभी लोग रोज़ाना दोपहर बाद तीन बजे इकट्ठा होते थे, इस बैठक में जेल की दिक़्क़तों के बारे में या राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं पर चर्चा होती थी।

दोपहर बाद वाली इस बैठक में एक तरह की अध्ययन-गोष्ठी होती थी। बाद में रोज़ाना सन्ध्या होती थी। यह ताज्जुब की बात थी कि जन संघ और आर० एस० एस० के आदमी महात्मा गांधी की प्रिय प्रार्थना "ईश्वर अल्लाह तेरे नाम" गाते थे लेकिन वे इसमें से 'अल्लाह' शब्द छोड़ देते थे। उनके लिए यह प्रार्थना होती "ईश्वर ईश्वर तेरे नाम।" जब मैंने एक से यह पूछा कि वह 'अल्लाह' का नाम क्यों निकाल देता था तब उसने बताया कि ईश्वर और अल्लाह एक ही भगवान के दो नाम हैं। जब मैंने यह कहा कि उन्हें कम-से-कम कुछ बार इसे "अल्लाह-अल्लाह तेरे नाम" कहना चाहिए, तब उसके पास कोई जवाब नहीं था।

यह लोग दिन में दो बार प्रार्थना करते थे। पहली प्रार्थना सवेरे बड़े तड़के होती थी। चूंकि यह बैठक में ही होती थी, इसलिए इससे बाक़ी लोगों को तकलीफ़ होती थी। लेकिन किसी का भी यह साहस नहीं होता था कि वह इसका विरोध करे। वे मुझे अनीश्वरवादी समझते थे। असल में, एक दिन उनमें से एक आदमी ने मुझसे पूछा कि क्या मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ, तब मैंने जवाब दिया कि मैं यह तो नहीं जानता कि ईश्वर है या नहीं, लेकिन कभी-कभी मैं अनुभव ज़रूर करता हूँ कि वह है, लेकिन कभी मुझे लगता है कि वह नहीं है।

उन्होंने मेरे विचार बदलने की कोशिश की, लेकिन प्रार्थना में शामिल होने के लिए दो बार आग्रह करने के बाद उन्होंने मुझे छोड़ दिया। वार्ड में सभी हिन्दुओं के लिए प्रार्थना में शामिल होना ज़रूरी था और कुछ ही लोग शामिल नहीं होते थे। जन संघ और आर० एस० एस० के आदमियों के लिए प्रार्थना उनके अनुशासन का एक अंग थी। जब एक आदमी उपस्थित रहने में अनियमित हो गया तब उसको यह बताया गया था कि उसने आदेशों का उल्लंघन किया था और उसे तुरंत ही दंड भी दिया गया था।

शाम को जब यह प्रार्थना होती थी तब हममें से कुछ लोग ग़ज़ल सुना करते थे। बहुत-से लोगों ने भजन छोड़ दिये और हमारी ग़ज़लों को सुनना शुरू कर दिया। इस पर आर० एस० एस० के सर-संचालकों को यह हिदायतें देनी पड़ीं कि

उनका जो भी आदमी प्रार्थना में शामिल नहीं होगा उसे दंड दिया जायेगा। हमारे मनपसन्द शायर फ़ैज़, इक़बाल और ग़ालिब थे। लेकिन इनमें से हम फ़ैज़ को ज़्यादा पसन्द करते थे क्योंकि उनको भी बहुत साल जेल में रहना पड़ा था। फ़ैज़ की नज़्म जो हमारी भावनाओं को दर्शाती थी और जिसे हम इसीलिए रोज़ाना विधिवत गाते थे, यह थी :

निसार मैं तिरी गलियों पे ऐ वतन, कि जहाँ
चली है रस्म कि कोई न सर उठा के चले
जो कोई चाहनेवाला तवाफ़[1] को निकले
नज़र चुरा के चले, जिस्म-ओ-जाँ बचा के चले
है अह्ले-दिल के लिए अब यह नज़्मे-बस्त-ओ-कुशाद[2]
कि संग-ओ-ख़िश्त[3] मुक़य्यद[4] हैं और सग[5] आज़ाद

बहुत है ज़ुल्म के दस्ते-बहानः-जू[6] के लिए
जो चन्द अह्ले-जुनूँ तेरे नामलेवा हैं
बने हैं अह्ले-हवस, मुद्दई भी, मुंसिफ़ भी
किसे वकील करें, किससे मुंसिफ़ी चाहें
मगर गुज़ारनेवालों के दिन गुज़रते हैं
तिरे फ़िराक़ में यूँ सुब्ह-ओ-शाम करते हैं

बुझा जो रोज़ने-ज़िंदाँ तो दिल यह समझा है
कि तेरी माँग सितारों से भर गयी होगी
चमक उठे हैं सलासिल[7] तो हमने जाना है
कि अब सहर तिरे रुख़ पे बिखर गयी होगी
गरज़ तसव्वुरे-शाम-ओ-सहर में जीते हैं
गिरफ़्ते-सायः-ए-दीवार-ओ-दर में जीते हैं

यूँ ही हमेशा उलझती रही है ज़ुल्म से ख़ल्क़
न उनकी रस्म नयी है, न अपनी रीत नयी
यूँ ही हमेशा खिलाये हैं अपने आग में फूल
न उनकी हार नयी है, न अपनी जीत नयी
इसी सबब से फ़लक का गिलः नहीं करते
तिरे फ़िराक़ में हम दिल बुरा नहीं करते

गर आज तुझ से जुदा हैं तो कल बहम[8] होंगे
यह रात भर की जुदाई तो कोई बात नहीं
गर आज औज[9] पे हैं तालाए-रक़ीब[10] तो क्या
यह चार दिन की ख़ुदाई कोई बात नहीं
जो तुझसे अह्द-ओ-वफ़ा उस्तवार[11] रखते हैं
इलाजे-गर्दिशे-लैल-ओ-निहार[12] रखते हैं।

हम लोगों में राव का गला सबसे अच्छा था। वह दिल्ली में शिक्षक था और जमात-ए-इस्लामी-ए-हिन्द का सदस्य था। वह उर्दू बहुत अच्छी और साफ़ बोलता

1. परिक्रमा, 2. बंधने और खुलने की व्यवस्था, 3. ईंट-पत्थर, 4. क़ैद, 5. कुत्ते, 6. बहाना ढूंढ़ने वाले हाथ, 7. ज़ंजीरें, 8. मिलेंगे, 9. शिखर, 10. प्रतिद्वंद्वी का भाग्य, 11. पक्का, 12. रात और दिन के क्रम का इलाज।

था। वह इक़बाल की नज़्में सुनाना ज्यादा पसंद करता था। उसके लिए इक़बाल मर्द-ए-मुजाहिद था जबकि फ़ैज़ एक दहरिया (नास्तिक)। लेकिन वह जो भी ग़ज़ल सुनाता, दिल से सुनाता था।

यही वह मुसलमान था, जो मुझे जेल में पहले दिन जाना-पहचाना लगा था। मैं दिल्ली में किशनगंज में एक हफ़्ते रहा था, जहाँ कुछ दिनों पहले हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था। मैं ख़ुद यह अनुभव करना चाहता था कि अल्प-संख्यक समुदाय का होने से कैसा लगता है, उन परिस्थितियों को जिनमें ये लोग, ख़ास तौर से मुसल-मान, एक मोहल्ले में रहते हैं, उनकी कठिनाइयों और शंकाओं को जानना चाहता था। मैंने इस काम के दौरान जिन लोगों के साथ बैठकर घंटों बातचीत की उनमें यह शिक्षक भी था। इस मौहल्ले की जिन्दगी का सदियों से चला आ रहा अपना ही तरीक़ा था, लेकिन हिन्दुओं ने पुलिस की मदद से इसे अब ख़त्म कर दिया था। मौहल्ले में सभी लोग डरे हुए थे और बहुत-से मुसलमान छोड़कर बाहर जाने के लिए तैयार थे, शर्त यह थी कि अगर गये तो एक साथ जायेंगे।

एक दिन सवेरे मैं जगा दिया गया। पुलिस एक मुसलमान को तलाश करने आयी थी, जिसने दंगे में बंदूक का इस्तेमाल किया था। पुलिस वाले उजड्ड और अक्खड़ थे और वहाँ के रहने वाले लोगों की इज़्ज़त का खयाल रखे बिना हर घर की तलाशी ले रहे थे। पुलिस नाराज़ थी क्योंकि उसे पूरा यक़ीन था कि यहाँ के लोगों को पता था कि बन्दूक लिये लड़का कहाँ छिपा है, लेकिन ये बता नहीं रहे थे। मुझे बाद में मालूम हुआ कि बात सच थी। सारा मौहल्ला जानता था कि लड़का कहाँ छिपा था—यह लड़का उनकी नज़रों में हीरो था, क्योंकि उसकी बन्दूक की वजह से ही हिन्दुओं की भीड़ पास नहीं आ सकी थी। जब उन लोगों ने मुझे उस लड़के के 'करतब' सुनाये तब उनके चेहरों पर गर्व का भाव था। उस लड़के ने कभी सोचा भी नहीं था कि क़ानून अपने हाथ में ले लेने से वह अपराधी बन गया था। हमारे वार्ड में जन संघ का क़ैदी रामलाल भी किशनगंज का था। असल में जब मैं वहाँ रह रहा था तभी मैंने सुना था कि उसी ने मुसलमानों पर हमला करने के लिए लोगों को उकसाया था। लेकिन उसने इस बात से इनकार किया था और अपने पक्ष की बात मुझे बतायी थी। वह बन्दूक इस्तेमाल करने के लिए मुसलमानों को दोषी ठहराता था।

शायद उसका कहना ठीक था कि वह उस घटना के लिए दोषी नहीं था। जन संघ के सदस्यों ने कहा कि उन्हें मुसलमानों की निष्ठा पर शक था, तो भी उनकी नीति यह नहीं थी कि उन पर हमला किया जाये या उनको बाहर निकाल दिया जाये। असल में वह साम्प्रदायिक शान्ति चाहते थे जिससे यह बताया जा सके कि हिन्दुत्व का अर्थ सहनशीलता था।

वह चाहे जो कहें, असलियत यह थी कि मुसलमानों में डर था, पुलिस का रुख़ भी साम्प्रदायिक लगता था, जिसका एक कारण यह था कि पुलिस की नौकरी में मुसलमान थोड़े थे।

जब लालबहादुर शास्त्री गृह-मंत्री थे तब उन्होंने प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों को ये निर्देश भेजे थे कि थानेदार तक की जगहों के लिए आवश्यक योग्यता में ढील देते हुए मुसलमानों को भर्ती किया जाये। लेकिन प्रदेशों की सरकारों ने केन्द्र के इस आदेश का एक-न-एक बहाना लेकर पालन नहीं किया था। फिर भी यह ख़ुशी की बात थी कि हमारी जेल में कोई भी साम्प्रदायिक द्वेष नहीं था—यहाँ तक कि किशनगंज के मुसलमानों और हिन्दुओं में भी नहीं।

जन संघ और आर० एस० एस० के आदमी जमात-ए-इस्लाम-ए-हिन्द के आदमियों के आत्म-विश्वास और उनकी सफ़ाई से प्रभावित थे। वह उनके और अन्य मुसलमानों के साथ खाना खाते और यहाँ तक कि उनसे उर्दू सीखते थे। लेकिन यह स्पष्ट था कि उनकी अपनी शंकाएँ थीं।

एक दिन हमने देखा कि हमारा एक साथी, जो आमतौर पर चुप और अकेला रहता था, एकाएक चहल-पहल करने लगा और बहुत खुश था। उसने दाढ़ी बना, नहा-धोकर धुले कपड़े पहन रखे थे। मुझे बताया गया कि यह परिवर्तन इसलिए था, क्योंकि दोपहर बाद उसकी मुलाक़ात होगी। वह मीसा में नज़रबन्द होकर जब से जेल में आया था तब से आज पहली बार बाहर के लोगों से मिलेगा। सरकार ने यह आदेश दिया था कि नज़रबन्दों को अपने सबसे निकट के संबंधियों (पत्नी, बच्चे या माँ-बाप) से महीने में एक बार मिलने की इजाज़त रहेगी। वे सिर्फ़ आध घंटे के लिए मिल सकेंगे और वह भी पुलिस के सिपाही की उपस्थिति में।

रिश्तेदारों को इजाज़त के लिए डिप्टी-कमिश्नर को अर्ज़ी देनी पड़ती थी, जो बाद में जेल-अधिकारियों को सूचित कर देता था कि किस नज़रबन्द से कौन किस तारीख को किस समय मिल सकता था। मुझे बताया गया कि यह असल में एक रियायत थी जो अधिकांश नज़रबन्द क़ैदियों को दी जाती थी, क्योंकि इमरजेंसी लागू होने के बाद ऐसी कोई भी सुविधा नहीं थी। मुझे नहीं मालूम था कि मीसा में इस बारे में क्या नियम थे। हो सकता है कि मीसा क़ानून आलोचकों को दण्ड देने, उनकी ज़िन्दगी को कष्टमय या बंसीलाल के शब्दों में, विरोधियों को सही रास्ते पर लाने के लिए बनाया गया था।

एक दिन मेरी मुलाक़ात की बारी थी, लेकिन ताज्जुब था कि मुझे इसकी कोई खबर नहीं थी। वार्डर अचानक यह ख़बर लेकर आया कि मेरे कुछ मुलाक़ाती आये हैं। वह उनके बारे में नहीं जानता था, लेकिन मेरी ख़ुशी का पारावार नहीं था। खुश-क़िस्मती से यह वह दिन था जिस दिन मैंने दाढ़ी बनायी थी और धुले कपड़े पहने थे। मैं हफ़्ते में एक बार दाढ़ी बनाता और धुले कपड़े पहनता था, उस दिन मैंने अपने कपड़े ज्ञान के दिये हुए साबुन से साफ़ किये थे, जिसका बिस्तर मेरे बिस्तर के पास रहता था। मैं बड़ी उम्मीदों से वार्ड के बाहर आया। मैं दूसरी बार वार्ड से बाहर निकला था। रास्ते में मुझे औरतों का वार्ड, वही पेड़-पौधे, झाड़ियाँ और वही मोटी और ऊँची दीवार मिली जो पहले देखी थी। और यह वार्डर भी वही था जो पहले दिन मुझे यहाँ लाया था। जैसे ही मैं फाटक के पास पहुँचा मैंने एक दुबली-पतली, गेहुएँ रंग की औरत को देखा जो एक वार्डर-औरत के साथ हमारे नज़दीक आ रही थी। मेरे वार्डर ने मुझे बताया कि यही चन्द्रेश शर्मा है। बिना कुछ जाने कि मुझे क्या कहना चाहिए मैंने उससे कहा कि मैं डॉ० जैन से मिल चुका हूँ। वह कुछ नहीं बोली और अपने रास्ते चली गयी।

वार्डर ने फाटक पर आकर खटखटाया और बड़े ज़ोरों से कुछ बोला। मैं सिर्फ़ अपना ही नाम समझ सका। एक बार फिर फाटक का छोटा-सा दरवाज़ा खुला। गलियारे में भीड़ थी और मैं इसी भीड़ में से होकर सुपरिंटेंडेंट के कमरे में ले जाया गया। मैंने वहाँ भारती और राजू को देखा। वह लोग मुझे देखकर मेरी तरफ़ बढ़ने लगे, लेकिन एकाएक समझ गये कि हम लोग कहाँ थे। हम लोग बँधे हुए-से महसूस करने लगे, क्योंकि वहाँ कुर्सी पर सुपरिंटेंडेंट बैठा था और मेरे साथ मेरा वार्डर था। उन्होंने बताया कि वे लोग बड़ी देर से इन्तज़ार कर रहे थे,

मुझे पता चला कि मुलाक़ात की सारी औपचारिकताओं को पूरा करने में कम-से-कम एकाध घंटा लगा था, हालाँकि डिप्टी-कमिश्नर ने मुलाक़ात के लिए नज़रबंदों के रिश्तेदारों के आने की सूचना जेल-अधिकारियों को पहले भिजवा दी थी।

वे अपने साथ चीनी-खाना लेकर आये थे। उन्हें मालूम था कि यह मुझे बहुत पसन्द है। सुपरिटेंडेंट हम लोगों को देखता रहा। कोई बात भी क्या कर सकता था, जब सबके गले भरे हुए थे! हमने बात करने की कोशिश की। मैंने रिश्तेदारों और दोस्तों के बारे में पूछा। मैंने अपने सबसे बड़े लड़के सुधीर के बारे में पूछा। भारती ने बताया कि वह बाहर खड़ा है—सिर्फ़ दो आदमियों को अन्दर आने की इजाज़त थी। मैंने काँटेदार खिड़की से बाहर देखा। वह सड़क पर खड़ा नज़र आया। मैंने उसे पुकारा, उसने मुड़कर देखा और हाथ हिलाया। वह कानपुर में काम करता था और वहाँ से ट्रेन से मुझे मिलने यहाँ आया था। वह हम लोगों के पास नहीं आ सकता था, इसलिए वह दुखी था।

भारती ने कहा कि उससे मिलने कोई नहीं आया, यहाँ तक कि घनिष्ठ दोस्त और रिश्तेदार भी दूर ही रहे। उनको डर था कि घर आने से वहाँ मुसीबत में पड़ जायेंगे। अचानक मुलाक़ात हो जाने पर कुछ लोग अपनी ग़लती महसूस करते और माफ़ी माँगते थे। कुछ ही लोग उसे टेलीफ़ोन करते थे, क्योंकि यह ख़बर फैल गयी थी कि हमारा टेलीफ़ोन टेप किया जा रहा था। उसने बताया कि थोड़े-से लोगों ने ही उससे सम्पर्क बनाये रखा था, जिनकी संख्या छह या सात से ज़्यादा नहीं थी।

भारती अपने साथ मेरी चेक-बुक लायी थी लेकिन सुपरिंटेंडेंट ने कहा, वह मुझे चेकों पर दस्तख़त करने की मंज़ूरी नहीं दे सकता जब तक कि मजिस्ट्रेट इसके लिए अधिकृत न करे। भारती ने मुझे मिठाइयों का एक डिब्बा दिया, लेकिन मेरे लेने के पहले ही सुपरिंटेंडेंट फिर आड़े आ गया; उसने वह डिब्बा ले लिया। इसके लिए मजिस्ट्रेट की इजाज़त और यह भी प्रमाणित करना ज़रूरी था कि रिश्तेदारों से कितनी मिठाई—कौन-कौन-सी मिठाई—जैसे गुलाबजामुन या वर्फ़ी एक नज़रबन्द को मिल सकती थी। इस मिठाई की संख्या का मिलान मजिस्ट्रेट की मंज़ूरी के आदेश में दी गयी संख्या के साथ किया जाता था। लेकिन अधिकारियों के 'सहयोग' से मिठाइयों के झाबे जेल में लाये जा सकते थे—हमारी जेलों में भ्रष्टाचार के बारे में कोई कितना ही भला-बुरा क्यों न कहे, वहाँ नियमों की जकड़ नहीं, मानवीयता तो है।

मैं देख रहा था कि राजू बड़ा नाराज़ था, वह मिठाई लेने चाँदनी चौक गया था। सुपरिंटेंडेंट को दया आयी, "आप इसमें से जितनी चाहें मेरे सामने खा सकते हैं।" लेकिन इसके पहले कि मैं उसकी इस अचानक उदारता से लाभ उठाता उसने अपनी घड़ी की तरफ़ देखा और दृढ़तापूर्वक कहा कि समय ख़त्म हो गया। जब हम लोग अलग हो रहे थे, हमने चौधरी चरणसिंह को आते देखा। वह अपने हाथ में छड़ी लिये हुए थे जो मैंने समझा कि यह एक आम बात थी, लेकिन वह कमज़ोर थे और लगता था कि उन्हें सहारे की ज़रूरत थी। उन्होंने मुझे देखा और कहा, "इस औरत ने आप जैसे पत्रकारों को भी नहीं बख्शा है।" मैंने उनसे पूछा कि क्या वह आशा करते थे कि लोग इतनी बड़ी संख्या में गिरफ़्तार किये जायेंगे, उन्होंने कहा, "हर आदमी यह समझ रहा था कि ऐसा होने वाला है।" उन्होंने आगे कहा, 'नैयर साहब, अगर मैं कभी सरकार में आया तो इन कांग्रेसियों को

चौराहे पर खड़ा करकोड़े लगवाऊँगा।" चौधरी की पत्नी उनसे मिलने आयी थीं।

अख़बारों में उन दिनों एक दिन यह ख़बर प्रकाशित हुई कि नागाओं ने सेना के कुछ लोगों को पकड़ लिया और छिपा दिया है। बहुत दिनों के बाद ऐसी घटना घटी थी और मेरा अनुमान था कि इससे सेना भड़क उठेगी। मैं इसी बात को लेकर सोचा करता था।

वर्षों से नागालैंड में राजनीतिक पाबन्दियों और सेना की गतिविधियों को लेकर विरोध हो रहा था। भूमिगत नागाओं को शान्ति भंग करने पर सुरक्षा दलों द्वारा कितना और कब दण्ड दिया जाना चाहिए, इस बात पर असैनिक और सैनिक अधिकारियों में मतभेद था। वे मिलकर एक साथ कार्रवाई न करने के लिए एक-दूसरे को हमेशा दोषी ठहराते थे और नयी दिल्ली से उनमें आपस में तालमेल बिठाने के लिए कई बार कोशिश की गयी थी।

मैं उस लड़ाई की याद करने लगा जो कुछ दिनों पहले कोहिमा से तीस किलोमीटर दूर जोस्तोस्मा गाँव में भड़क उठी थी। सेना भूमिगत नागाओं के एक दल के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने गयी हुई थी, जो चीन और नागालैंड के बीच राइफल-प्रशिक्षण के काम में जुटे थे और जिनको चीन में प्रशिक्षण मिला हुआ था। नागालैंड के तत्कालीन गवर्नर बी० के० नेहरू ने नयी दिल्ली को इस आशय का एक विरोध-पत्र भेजा था कि इस कार्रवाई को करने के पहले उनसे सलाह लेनी चाहिए थी। चूँकि क़ानून और व्यवस्था गवर्नर की विशेष ज़िम्मेदारी थी, इसलिए उन्हें इसकी जानकारी का होना ज़रूरी था। रक्षा-विभाग के अधिकारियों ने बताया कि बरसात के कारण टेलीफ़ोन के तार टूट गये थे, इसलिए इस बारे में शिलंग को पहले सूचना नहीं भेजी जा सकी। लेकिन कार्रवाई करने का निर्णय कार्रवाई करने से दस दिन पहले लिया था, इसलिए टेलीफ़ोन के अलावा अन्य साधनों से भी सलाह-मशविरा किया ही जा सकता था।

इस विरोध-पत्र का कोई परिणाम नहीं निकला। इसी बीच केन्द्र का एक मंत्री दौरे पर नागालैंड गया। उसने प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी का ध्यान असैनिक और सैनिक अधिकारियों के बीच सम्पर्क न बने रहने की ओर दिलाया। उसने अपनी रिपोर्ट में कहा : "आजकल एक ओर नागालैंड सरकार और दूसरी ओर सुरक्षा सेनाओं के कमांडरों के बीच वे संबंध-सम्पर्क नहीं हैं जो इन दोनों के बीच होने ज़रूरी हैं और यही कारण है कि हम लोग भूमिगत नागाओं से हारते जा रहे हैं।" इस मंत्री ने उस उत्तेजक स्थिति की चर्चा की जिसका सामना सुरक्षा सेनाओं को इन निर्देशों के तहत करना पड़ता था कि वे गोली पहले नहीं चलायेंगे। उसने चेतावनी दी थी कि "हमारी सुरक्षा सेनाएँ अचानक ही भूमिगत नागाओं द्वारा की गयी गोलाबारी को बरदाश्त नहीं कर सकतीं।" जो जहाँ मन हुआ वहाँ और जब मन हुआ तब गोलाबारी करने से नहीं चूकते थे।

स्पष्ट ही भूमिगत नागाओं से किस प्रकार निबटा जाये, इस बारे में दो तरह के मत थे—एक वे लोग थे जो जैसे-को-तैसा सिद्धान्त में विश्वास रखते थे और दूसरे वे लोग थे जो एक तरफ़ थप्पड़ खाने पर दूसरा गाल भी सामने कर देने को तैयार थे। मध्य प्रदेश के एक सीनियर सिविल सर्विस के अधिकारी नरोना पाँचवें दशक के उत्तरार्द्ध में नागालैंड में समस्त कार्रवाइयों के असैनिक प्रभारी होकर लगभग नियुक्त हो गये थे। लेकिन जब तत्कालीन गृहमंत्री गोविन्दवल्लभ पन्त को यह पता चला कि वह इस सिद्धान्त को मानने वाला है कि तुमने हमारे

आदमी मारे, हम तुम्हारे आदमियों को मारेंगे, तो उनकी नियुक्ति टल गयी। सरकार ने भूलने और क्षमा करने की नीति अपना रखी थी। जे० पी०, माइकेल स्कॉट और कुछ अन्य लोगों की मदद से वहाँ शान्ति स्थापित हुई और कोडर्मा नाम के नागा गाँव में बहुत दिनों तक सफ़ेद झंडा फहराता रहा, जहाँ सरकार और भूमिगत नागाओं के प्रतिनिधियों ने परस्पर वातचीत की थी।

लेकिन सरकार के लिए नागा उतनी वड़ी समस्या नहीं थे जितनी चीन। चीन के शासक भारत की कठिनाइयों से फ़ायदा उठाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे और भूमिगत नागाओं को चीन में या भूतपूर्व पूर्वी पाकिस्तान में ट्रेनिंग दिया करते थे। मुझे याद है कि जब रक्षा-मंत्रालय ने मंत्रिमंडल की अन्तरंग समिति को यह सूचना दी थी कि नागाओं के छह दस्ते, जिसमें क़रीब 1000 आदमी हैं, पीकिंग गये हुए हैं तो कितनी घबराहट पैदा हुई थी। सबसे पहली बात जिस पर विचार हुआ, वह यह थी कि यह खबर राष्ट्र को न दी जाये और सरकार इस काम में बहुत दिनों तक सफल भी रही थी।

विदेश-मंत्रालय ने बताया कि चीन ने वियतनाम का उदाहरण देते हुए नागाओं से कहा है कि वह निर्भय होकर भारत का विरोध करें। यह दलील दी गयी कि जब वियतनाम-जैसा छोटा देश अमेरिका जैसी ताक़त से लोहा ले सकता है तब वे क्यों नहीं ले सकते ? वियतनाम जैसी लड़ाई शुरू कराने में पीकिंग को सफलता न मिलने का कारण यह था कि नागाओं में जो उदार वर्ग के लोग थे वे पीकिंग के साथ लेन-देन का कोई भी संबंध नहीं रखना चाहते थे। यह सच था कि इन उदार नागाओं में कुछ ऐसे भी थे जो नागालैंड के लिए आज़ादी की माँग करते थे, लेकिन यह लोग ईसाई थे और किसी कम्युनिस्ट देश से सहायता लेने के विलकुल ख़िलाफ़ थे।

ये सब लोग जानते थे कि जब श्रीमती गांधी वर्मा के प्रधानमंत्री से मिली थीं तब रंगून की सरकार ने यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि भारत की सेना विद्रोही नागाओं का पीछा करती हुई बर्मी सीमा के अंदर प्रवेश कर सकती है। तब से भारतीय सेनाए इसके तुरंत बाद भूमिगत नागाओं को वर्मा की सीमाओं के अन्दर तक खदेड़ आती थीं।

जब मैंने इस विषय पर जन संघ और आर० एस० एस० के अपने दोस्तों से चर्चा की तब उन्होंने कहा कि यह सारी समस्या नेहरू की कमज़ोरी और इस क्षेत्र में मिशनरियों को आने-जाने की आज़ादी के कारण पैदा हुई। आर० एस० एस० के लोगों ने मुझे बताया कि वे इस क्षेत्र में 'हिन्दुत्व' का प्रसार कर रहे थे, जिन लोगों ने ईसाइयत को 'ताक़त' के भय या 'धन' के लोभ के कारण अपनाया था उनको यह लोग फिर से अपने धर्म में वापस ला रहे थे। मुझे बताया गया कि यह अभियान न केवल इस क्षेत्र में बल्कि मध्यप्रदेश और केरल में भी जारी था। हज़ारों लोगों को, जो ईसाइयत अपना चुके थे, हिन्दू-धर्म में वापस आने के लिए कहा जा रहा था।

हालाँकि सभी दिन एक-जैसे होते थे, फिर भी कुछ विशेष दिन थे। इनमें एक था स्वतंत्रता-दिवस। हम लोग सवेरे जल्दी उठ बैठे, हमने दाढ़ी बनायी, नहाये और उस बैरक में इकट्ठे हो गये जिसे वी० आई० पी० बैरक कहा जाता था। ब्लैक-बोर्ड पर एक राष्ट्रीय झंडा बनाया गया और एक चादर से ढक दिया गया। हम लोगों में एक बहुत ही बुज़ुर्ग — हंसराज ने, जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के

नेता हैं और दिल्ली के मेयर रह चुके थे, झंडे का 'अनावरण' किया, एक बंगाली नज़रवन्द ने 'जन-गण-मन' के सामूहिक गायन का नेतृत्व किया और राव ने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गाया। जैन ने नाश्ते के लिए पूरी और एक चीज़, जिसे खाने में हलुए का स्वाद आया था, तैयार करायी थीं। फ़ैज़ की एक नज़्म जो इस अवसर के लिए वड़ी ही सटीक और जिसे हमारे एक मुसलमान साथी ने पढ़ा था, यह थी :

> रात वाक़ी थी अभी जव सर-ए-वलीं आकर
> चाँद ने मुझ से कहा जाग, सहर आयी है,
> जाग ! इस शव जो मय-ए-जाम उतर आयी है
> अक्स-ए-जानाँ को विदा करके उठी मेरी नज़र
> शव के ठहरे हुए पानी की सियाह चादर पर :
> जा-व-जा रक़्स में आने लगे चाँदी के भँवर;
> चाँद के हाथ से तारों के कँवल गिर-गिर कर
> डूबते, तैरते, मुरझाते रहे, खिलते रहे
> रात और सुव्ह वहुत देर तक गले मिलते रहे।

इसमें कोई शक नहीं कि हमारे त्यौहार अच्छी तरह वीतते रहे। लेकिन एक वार ऐसा लगा था कि हम इनको नहीं मना पायेंगे। हममें कुछ ज़्यादा तेज़ लोगों ने कहा कि स्वतंत्रता-दिवस के दिन उपवास कर इसे विरोध-दिवस के रूप में मनाया जाये। इसके लिए दलील यह दी गयी थी कि हम लोगों के लिए आज़ादी का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि हम अपनी आज़ादी को गँवा चुके हैं और विना मुक़दमा चलाये नज़रवन्द कर दिये गये हैं। इस दलील को विजय प्रताप[1] नामक एक नौजवान समाजवादी ने वड़ी ईमानदारी से रखा था। लेकिन वाक़ी लोगों का विचार था कि स्वतंत्रता-दिवस किसी एक पार्टी या एक व्यक्ति का नहीं है, यह ग़ुलामी के खिलाफ़ हमारी लड़ाई की पूर्णता का प्रतीक है। अन्त में यह तय हुआ कि हमारा विरोध श्रीमती गांधी और उनके शासन के प्रति होना चाहिए और ऐसा करते समय हमें इस दिवस के महत्व को कम या नष्ट नहीं करना चाहिए। हमने तय किया कि हम 25 अगस्त को उपवास रखेंगे, जिस दिन इमरजेंसी का दूसरा महीना पूरा होगा।

कुछ कारणों से हम आशा करते थे कि श्रीमती गांधी लालकिले वाले अपने भाषण में कुछ मेल-मिलाप की वात कहेंगी। लेकिन हमें वताया गया कि उन्होंने इमरजेंसी का समर्थन किया था और नज़रवन्दियों के वारे में एक भी शब्द नहीं कहा था। लगता था कि दुनिया में वह सवसे परे हो गयी हैं।

वाद में दिन में वार्डर यह ख़वर लाया कि शेख़ मुजीवुर्रहमान को क़त्ल कर दिया गया। वार्ड में शायद ही कोई ऐसा था जो यह न सोचता हो कि अगर श्रीमती गांधी तानाशाही के रास्ते पर चलीं तो उन्हें भी यही दिन देखना पड़ेगा।

मेरे एक क़ैदी साथी ने वताया कि उसने किस तरह ख़ुद ही यह सोचा था कि श्रीमती गांधी को "उड़ा दिया जाये"[2] और इसके लिए दूरवीन लगी राइफल

---

1. यह वही था जिसे अंविका सोनी ने इसलिए तमाचा मारा था कि इसने इलाहावाद निर्णय की घोषणा के वाद श्रीमती गांधी से त्याग-पत्र माँगने का साहस किया था।
2. लेखक की पुस्तक 'फैसला' देखें।

ख़रीदी थी। यह नज़रबन्द क़ैदी हरियाणा का था। इसने कहा कि उन्होंने इतना अत्याचार किया था कि अब देश के पास इन्हें उड़ा देने के सिवाय कोई चारा नहीं रह गया है। वह सोचता था कि उसकी ग़लती यह थी कि वह वीज़ा के लिए अमेरिकी दूतावास गया था। मुझे नहीं मालूम कि क्या वह सच बोल रहा था, लेकिन दिन-पर-दिन उससे घंटों पूछताछ की जाती थी।

उसने ही मुझे बताया था कि लालक़िले में एक ऐसा कमरा था, जिसमें आदमी के विचारों और स्वभाव का पता लगाने के लिए सभी तरह की मशीनें लगी हुई थीं। जिस व्यक्ति से अपना अपराध स्वीकार कराना होता था उस पर ढेर सारी रोशनी डाली जाती थी। वह न तो सोने दिया जाता था और न उसे अपनी आँखें ही बन्द करने दी जाती थीं। उसको एक ही तरह दिन-रात रखा जाता था, जब तक कि वह बात करने के लिए तैयार नहीं हो जाता था। हरियाणा का यह आदमी वहाँ दो बार ले जाया गया था, लेकिन उसने यह नहीं बताया कि उसने वहाँ क्या कहा था। एक बार उसने बस इतना ही बताया कि उन्होंने वहाँ पर उसे मारा-पीटा तो नहीं, लेकिन सोने नहीं दिया।

मैं उन दिनों के बारे में सोचने लगा, जब शुरू-शुरू में गणतंत्र-दिवस पर पदवियाँ दी जानी शुरू हुई थीं। जब पचास के दशक के उत्तरार्द्ध में ये पदवियाँ शुरू की गयी थीं तब मैं गृह-मंत्रालय में था। पहले यह सोचा गया था कि इन पदवियों को स्वतंत्रता-दिवस पर घोषित किया जाया करे, लेकिन बाद में यह तय किया गया कि गणतंत्र-दिवस ही इसके लिए उपयुक्त है। शुरू से ही इन पदवियों के वितरण के बारे में हमेशा विवाद रहा। जिन व्यक्तियों को पदवी दी जानी होती थी उनकी सूची कभी भी किसी व्यवस्थित तरीक़े से नहीं बनायी जाती थी। इन व्यक्तियों का चुनाव उलटा-सीधा और मनमाने ढंग से होता था। किसी भी व्यक्ति के गुणों से इसका कोई संबंध नहीं था, सिर्फ़ यही बात देखी जाती थी कि अमुक व्यक्ति को प्रधानमंत्री, गृह-मंत्री या राष्ट्रपति स्वीकार करगे या नहीं। यही कसौटी रहती थी। मुझे प्रशस्ति-पत्र बनाने का काम सौंपा गया था। नामों की घोषणा करने के बाद इनकी सूची मेरे पास भेज दी जाती थी। मेरा काम इन व्यक्तियों के गुणों का पता लगाना, पुस्तिका तैयार करना और प्रचार-कार्य को देखना था।

पदवी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के बारे में सूचना के अभाव की वजह से कभी-कभी मैं बड़ी परेशानी में पड़ जाता था। मैं हू'ज़ हू (कौन क्या है) पुस्तकें देखता या इधर-उधर से सामग्री इकट्ठा करता और बहुत-से विशेषण लगाकर गुणों का आख्यान तैयार करता था। मैं वेब्स्टर का शब्द-कोश या रोज़ेट का 'थेसारस' उचित शब्दों और उनके पर्याय इकट्ठा करने के लिए अपने पास रखा करता था। विशेषणों के दुबारा इस्तेमाल से बचना एक मुश्किल काम था। पदवी प्राप्त करने वाले हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग तरह से कहा जाना ज़रूरी था।

यह व्यवस्था कुछ वर्षों तक तो ठीक चली, लेकिन जब गोविन्दवल्लभ पन्त को 'भारत-रत्न' की उपाधि दी गयी तब यह नाकामयाब रही। वह उस समय गृह-मंत्री थे और उनके गुणों का आख्यान तैयार करने के लिए विशेष सावधानी रखने की ज़रूरत थी। तत्कालीन गृह-सचिव बी० एन० झा ने यह ज़िम्मेदारी ली कि वह खुद प्रशस्तिपत्र और पुस्तिका तयार करेंगे। जब इसका मसौदा पन्तजी के सामने रखा गया तब हमने सोचा कि वह इसे मामूली काम समझ इस पर सहमति दे देंगे, लेकिन उन्होंने इसे रद्द कर दिया। उस समय एक पण्डिताऊ एडीशनल-

सेक्रेटरी हरि शर्मा हुआ करते थे। उनको कहा गया कि वह प्रशस्ति-पत्र तैयार करें। उनका मसौदा भी रद्द कर दिया गया। इसी तरह मेरा मसौदा भी रद्द कर दिया गया। पन्तजी ने तब हम सबको एक साथ बुलाया और मिल-जुलकर एक मसौदा तैयार करने के लिए कहा। उन्होंने पहले तो इस मसौदे में काटने-छाँटने की कोशिश की, लेकिन जब उन्होंने उसे भी ठीक नहीं पाया तब छोड़ दिया।

उपाधि-वितरण समारोह के लिए बहुत ही थोड़ा समय रह गया था और हम लोग परेशान थे। देश की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिए क्या सचमुच किसी प्रशस्ति-पत्र की ज़रूरत है? 'भारत-रत्न' की उपाधि पाने वाले व्यक्ति की योग्यता का उल्लेख कर हम उसके गुणों को सीमित कर रहे थे। हमारी इस दलील को तुरन्त ही स्वीकार कर लिया गया। पन्तजी ने भी इस विचार को पसन्द किया। उस साल से 'भारत-रत्न' की उपाधि प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिए कोई प्रशस्ति-पत्र नहीं होता।

इन उपाधियों के लिए सूची किस तरह तैयार की जाती थी, इसकी भी एक कहानी है। सभी जानते थे कि इस सूची में हर स्तर पर नाम जोड़े जाते थे जिससे घपला हो जाता था। एक बार जब यह सूची राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद को भेजी गयी तो उन्होंने 'पद्मश्री' की उपाधि के लिए मिस लाज़रस का नाम जोड़ दिया। उन्होंने उसका नाम खुद अपने हाथ से लिखा था। जब यह सूची गृह-मंत्रालय को वापस भेजी गयी तब हर आदमी पूछने लगा कि यह मिस लाज़रस कौन हैं? जवाब कोई भी नहीं जानता था और किसी को यह साहस भी नहीं हुआ कि राष्ट्रपति से पूछे। जानकारी प्राप्त करने की बेतहाशा कोशिश की गयी, क्योंकि गज़ट में अधिसूचना प्रकाशित करने से पहले उपाधि पाने वाले व्यक्ति की सहमति प्राप्त करना एक नियम-सा बन गया था। गृह-मंत्रालय में किसी व्यक्ति ने बताया कि मिस लाज़रस मद्रास में एक शिक्षा-शास्त्री हैं। उनसे सम्पर्क स्थापित किया गया और उनकी विधिवत् स्वीकृति प्राप्त की गयी। जब यह सूची राष्ट्रपति के पास भेजी गयी तब उन्होंने कहा कि उनका तात्पर्य जिस महिला से था वह शिक्षा-शास्त्री नहीं बल्कि एक नर्स थी। अब तो बेहद उलझन पैदा हो गयी और फिर सभी जगह खोज शुरू हुई। पता लगा कि जब राष्ट्रपति कुरनूल से हैदराबाद मोटर से आ रहे थे तब उनको दमा का दौरा पड़ा था। उस समय मिस लाज़रस ने उनकी परिचर्या की थी। आखिर में वह खोज निकाली गयीं और उनकी सहमति प्राप्त की गयी। उस साल दो मिस लाज़रसों को उपाधि मिली।

हफ़्ते में डाक दो बार आती थी और हर आदमी उसके आने का इन्तज़ार करता था। जब वार्डर डाक लेकर आता तब वार्ड के सभी लोग उसे घेर लेते थे। वह हर चिट्ठी उठाता और पते पर लिखा नाम पुकारता था। तब वह आदमी चिट्ठी लेने उसके पास जाता था।

कुछ दिन से मुझे कोई चिट्ठी नहीं मिली थी। मुझे चिन्ता होने लगी थी। जब औरों को अपनी चिट्ठियाँ मिल जाती थीं तब मुझे अपनी चिट्ठी क्यों नहीं मिलती? मुझे यह नहीं मालूम था कि नज़रबन्दों को लिखी चिट्ठियाँ जाँच के लिए पहले डिप्टी-कमिश्नर के दफ़्तर जाती थीं और तब वे [आराम से जेल भेजी जाती थीं, जहाँ अधिकारी इनको बाँटने में समय लगाते थे। उर्दू में लिखी चिट्ठियाँ अँग्रेज़ी या हिन्दी में लिखी चिट्ठियों की तुलना में जल्दी पहुँचती थीं। जेल-अधिकारियों में से एक ने बताया कि जिस दफ़्तर में चिट्ठियों की जाँच होती थी वहाँ उर्दू जानने वाला सिर्फ़ एक ही आदमी था और जब बहुत-सी चिट्ठियाँ उर्दू में लिखी आ जातीं

तब वह उनको बिना पढ़े ही भेज देता था।

मुझे जो पहली चिट्ठी मिली वह मेरी भांजी का पोस्टकार्ड था। इस चिट्ठी पर सेंसर की मुहर और स्याही फैली हुई थी, इसलिए मैं यह नहीं पढ़ सका कि इसमें क्या लिखा था। लेकिन इससे मुझे एक खबर तो मिली कि घर पर सब ठीक था। लिफ़ाफ़ों में बन्द चिट्ठियाँ खोल ली जाती थीं और इन चिट्ठियों में जो कुछ 'आपत्तिजनक' लिखा होता वह संबंधित अधिकारियों द्वारा काट दिया जाता था। मेरी एक चिट्ठी पूरी ही कटी हुई थी और इस पर सिर्फ़ भेजने वाले का नाम पढ़ा जा सकता था।

यही हाल उन चिट्ठियों का होता जो हम भेजते थे। हम एक हफ़्ते में दो पोस्ट-कार्ड भेज सकते थे। ये पहले सेंसर के लिए डिप्टी-कमिश्नर के दफ़्तर ले जाये जाते थे और तब लिखे पते पर भेजे जाते थे। हमको यह साफ़-साफ़ बता दिया गया था कि अगर किसी चिट्ठी में कोई आपत्तिजनक बात लिखी होगी तब वह नहीं भेजी जायेगी।

अक्सर मेरे घर के लोग अपनी चिट्ठियों में यह शिकायत लिखते थे कि मैंने बहुत दिनों से कोई चिट्ठी नहीं भेजी है। वे यह नहीं जानते थे कि मैं उनको नियमित रूप से हफ़्ते में दो पोस्टकार्ड भेजा करता था। स्पष्ट ही इनमें से कुछ चिट्ठियाँ कभी डिलीवर नहीं की गयीं। एक बार जब मेरी पत्नी मुझसे मिली तो उसे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि मुझे कनजेक्टीवाइटिस हो गयी थी। मैंने पूछा, उसे वह चिट्ठी नहीं मिली जिसमें मैंने इस बारे में लिखा था। स्पष्ट था कि यह चिट्ठी डिलीवर नहीं की गयी थी। शायद अधिकारी सोचते हों कि मुझे अपनी पत्नी को अपनी बीमारी के बारे में बताने का भी अधिकार नहीं है। वे शायद बीमारी का समाचार भी 'आपत्तिजनक' समझते थे। सरकार की नज़रों में दूसरी आपत्ति-जनक बात थी एक नज़रबंद का अपनी बहन से मिलना। पहले कभी मैं रक्षा-बंधन का इतनी उत्कंठा से इन्तज़ार नहीं करता था और न इस बार की तरह मुझे पहले कभी निराश होना पड़ा। मैंने उस दिन जल्दी ही दाढ़ी बना ली और नहा-धो लिया। मैंने धुले कपड़े पहने थे। राज ने एक चिट्ठी में लिखा था कि उसे रक्षाबंधन वाले दिन मुझसे मिलने की इजाज़त मिलने की पूरी उम्मीद है। उस दिन मैं बराबर इन्तज़ार करता रहा। मैंने वार्डर से कई बार पूछा कि मेरा कोई मुलाक़ाती आया है? मैंने उसे सुपरिटेंडेंट के दफ़्तर भी यह पता लगाने के लिए भेजा कि मेरे लिए कोई खबर आयी है। शाम तक मैं आशा छोड़ बैठा। राज उन लोगों में नहीं थी जिन्हें लोग धार्मिक कहते हैं, लेकिन उसे त्योहार पसन्द थे। वह ऐसा कोई त्योहार मनाना नहीं भूलती थी जो परम्परा से चले आते थे। वह मुझे हर साल राखी के साथ एक केक देती थी। इस बार क्या हुआ? शायद उसे सरकार से इजाज़त नहीं मिल सकी थी। आख़िरकार सरकार मेरे साथ वैसा ही बर्ताव कर रही थी जैसा कि बाक़ी सब क़ैदियों के साथ किया जा रहा था। मेरे साथ कोई रियायत क्यों की जाये?

लेकिन दो दिन बाद मुझे राखी मिली। राज ने मुझे लिखा था कि वह खुद मजिस्ट्रेट के पास इजाज़त के लिए गयी थी। वह ओम मेहता से भी मिली थी। सबने उससे इजाज़त दिलाने का वायदा किया, लेकिन यह वायदा पूरा नहीं हुआ। असल में उसकी चिट्ठी जो मुझे सेंसर के द्वारा मिली, सरकार के बारे में बहुत ही आलोचनापूर्ण थी। क्या श्रीमती गांधी भाई-बहन का रिश्ता मिटा सकती थीं? यह चिट्ठी गुस्से से भरी हुई थी। मुझे ताज्जुब था कि यह चिट्ठी सेंसर से

कैसे बच गयी ?

शाम की एक बैठक में बड़ी अटकलें लगायी गयीं कि श्रीमती गांधी क्या तमिलनाडु में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के मंत्रिमंडल को वर्ख़ास्त करेंगी और कब ? हमको विश्वास हो गया था कि कुछ ही दिन में सब-कुछ हो जायेगा। हम लोग इससे बड़े निराश थे कि करुणानिधि अभी तक इमरजेंसी के ख़िलाफ़ कुछ नहीं कर रहे थे। गुलाम के रूप में काम करने के बजाय यह अच्छा था कि लड़ाई जारी रखी जाती। हम लोग तमिलनाडु के बारे में यही सोचते थे।

मैंने जेल के अपने साथियों को बताया किस तरह एक बार केरल सरकार को बर्ख़ास्त करने की स्थिति आ गयी थी। उन दिनों नम्बूदिरीपाद मुख्यमंत्री थे और बात थी, केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा एक दिन की सांकेतिक हड़ताल। नयी दिल्ली की सरकार इनके कर्मचारियों के नेताओं के ख़िलाफ़ कार्रवाई करना चाहती थी और उसने केरल की सरकार से भी कार्रवाई करने के लिए कहा था। केरल सरकार का विचार था कि कोई कार्रवाई करने की ज़रूरत नहीं थी।

सांकेतिक हड़ताल के पाँच दिन पहले गृह-मंत्रालय ने प्रदेश की सरकार को इस हड़ताल से निबटने के लिए केन्द्र द्वारा जारी किये गये अध्यादेश के अनुसार आवश्यक सावधानी बरतने के लिए तार द्वारा निर्देश भेजे थे। कुछ केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस (सी० आर० पी०) भी केरल में आ गयी थी। इसके कमानडेंट ने सी० आर० पी० के पहुँचने की सूचना मुख्य सचिव को दे दी थी लेकिन दोनों ने ही—दोनों ही अखिल भारतीय सेवा के थे—इस बात को गुप्त रखा था कि मुख्यमंत्री को इसकी सूचना देने से मामला कहीं उलझ न जाये। लेकिन मलयालम के एक दैनिक समाचारपत्र में केरल में केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस के आने का समाचार छप गया। जब नम्बूदिरीपाद से इस पर टिप्पणी करने के लिए कहा गया तब उन्होंने कहा कि उन्हें इसकी कोई सूचना नहीं है। उस समय संसद-सदस्यों का एक दल केरल आया हुआ था। इस दल के सम्मान में राज्यपाल द्वारा दिये गये दिन के भोज में नम्बूदिरीपाद ने इसकी जाँच गृह-मंत्रालय के विशेष सचिव आर० प्रसाद से की, जो उस दिन त्रिवेन्द्रम में ही थे। इस अधिकारी ने सी० आर० पी० के वहाँ आने की पुष्टि की।

प्रदेश सरकार की अनुमति बिना, उसे बताये बग़ैर ही, केन्द्रीय पुलिस को प्रदेश में तैनात करना तो बुरा था ही, उससे भी बुरी बात यह थी कि वायरलैस के ज़रिये प्रदेश सरकार को आदेश दिया गया कि उन लोगों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करे जिनके बारे में कर्मचारियों को हड़ताल करने के लिए भड़काने की ख़बरें थीं। जब यह वायरलैस द्वारा भेजा हुआ आदेश त्रिवेन्द्रम पहुँचा तो प्रदेश के मंत्रिमंडल की बैठक हो रही थी। मंत्रिमंडल केन्द्रीय पुलिस की तैनाती से यूँ ही चिढ़ा हुआ था। उसने सर्वसम्मति से केन्द्रीय आदेश की अवहेलना करना तय किया। केरल सरकार ने नयी दिल्ली को सूचित किया कि वह क़ानून और व्यवस्था बनाये रखेगी, केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा करेगी, लेकिन उन लोगों को गिरफ़्तार नहीं करेगी जिनके बारे में कहा गया था कि वे कर्मचारियों को हड़ताल करने के लिए उकसा रहे हैं। प्रदेश सरकार ने बिना उससे पूछे केन्द्रीय पुलिस तैनात किये जाने के बारे में गृह-मंत्रालय को विरोध-पत्र भी भेजा।

नयी दिल्ली का जवाब तुरंत आ गया। प्रदेश का ध्यान संविधान की उन धाराओं की ओर आकर्षित किया गया जिनके अनुसार प्रदेश केन्द्रीय क़ानूनों का पालन करने को बाध्य था, और प्रदेश के लिए इस विषय में कोई विकल्प ही नहीं

था। यह दलील दी गयी थी कि जब तक अवधि न पूरी न हो जाये तब तक अध्यादेश उतना ही बँध था जितना कि संसद का कोई अन्य अधिनियम। सी० आर० पी० का भेजा जाना इस आधार पर उचित ठहराया गया कि केन्द्र को इस बात का अधिकार था कि प्रदेश से परामर्श किये बिना वहाँ पुलिस भेज दी जाये। इस पर केरल का जवाब कड़ा और दो टूक था। प्रदेश सरकार ने कहा कि उसे अपने संवैधानिक दायित्व और केन्द्र के विशेषाधिकारों का पूरा ज्ञान था। उसे आपत्ति उस तरीक़े पर थी जो अपनाया गया था। प्रदेश सरकार को सूचना दिये बिना सी० आर० पी० का वहाँ तैनात किया जाना निरंकुश कार्य कहा गया। प्रदेश सरकार ने यह बात दुहरायी कि वह क़ानून और व्यवस्था को बनाये रखेगी, लेकिन वह उन लोगों को गिरफ़्तार नहीं करेगी जो कर्मचारियों को हड़ताल पर जाने के लिए कह रहे हैं। यह तय करना कि क्या कारवाई की जाये, प्रदेश के प्रशासन का काम था।

दिल्ली में घरेलू मामलों संबंधी मंत्रिमंडल की उप-समिति की आपात् बैठक रात में ही बुलायी गयी। इस बैठक में मोरारजी देसाई को छोड़कर, जिनके बारे में कहा गया कि सोने चले गये हैं, सभी मौजूद थे। बैठक में सुझाव रखा गया कि केरल में मंत्रिमंडल को बर्ख़ास्त कर दिया जाये। दलील यह दी गयी कि किसी भी प्रदेश की सरकार को केन्द्र के आदेशों का उल्लंघन नहीं करने दिया जाना चाहिए अन्यथा इसके परिणाम भयंकर होंगे। लेकिन कारवाई इस कारण से नहीं की गयी कि सांकेतिक हड़ताल के सवाल पर प्रदेश सरकार की बर्ख़ास्तगी से श्रीमती गांधी की प्रगतिशील तसवीर को आघात पहुँचेगा। केरल की सरकार अपनी बात पर अड़ी रही और उसने सांकेतिक हड़ताल वाले दिन किसी केन्द्रीय दफ़्तर को काम नहीं करने दिया।

वार्ड में आये एक नये नज़रबन्द से हमें पता चला कि केरल भूमिगत आंदोलनों का केन्द्र था। भारत की मार्क्सिस्ट कम्युनिस्ट पार्टी उन सभी तत्वों का साथ दे रही थी जो श्रीमती गांधी का विरोध कर रहे थे। जब हमने सुना कि नानाजी देशमुख, जिन्हें जे०पी० द्वारा संघर्ष-समिति का मंत्री नियुक्त किया गया था, पहले से ही हमारी जेल में बन्द हैं तब हम निरुत्साहित हो गये। वह सभी दृष्टियों से भूमिगत आंदोलन के एक प्रधान संगठनकर्ता थे। हम यह सुनकर हताश-से हो गये, क्योंकि हमारे विरोध के क़िले एक-एक कर ढह रहे थे। इनको किसने धोखा दिया ? हम ताज्जुब में थे। वह श्रीमती गांधी के लिए एक इनामी क़ैदी थे।

हमारे एक दोस्त ने बताया कि नानाजी की गिरफ़्तारी में एक कौतुक-सा हुआ था। जब पुलिस ने उन्हें गिरफ़्तार किया तब वह उन्हें पहचानती नहीं थी। उनकी गिरफ़्तारी इस तरह हुई : नानाजी ने अकाली नेता सुरजीतसिंह बरनाला को मिलने के लिए बुलाया हुआ था, क्योंकि वह चाहते थे कि अकाली अपना सत्याग्रह धीरे-धीरे चलायें। उनको डर था कि जिस तेज़ी से अकाली गिरफ़्तारी करा रहे थे वे ज़्यादा समय तक आंदोलन को नहीं चला सकेंगे।[1] नानाजी ने साउथ एक्सटेंशन की वह जगह भी बता रखी थी जहाँ वह बरनाला से मिलना चाहते थे। बरनाला ने जन संघ के दो नेताओं को—दोनों का नाम किशनलाल था—नानाजी से मिलने के लिए भेजा था और इसकी चर्चा दरबार साहेब (स्वर्ण मन्दिर) में

---

1. अकाली इमरजेंसी की पूरी अवधि-भर, लगभग 19 महीने तक, आंदोलन चलाते रहे और कोई 40,000 सिख जेल गये।

एक सभा में की थी, जहाँ सत्याग्रही अपनी गिरफ़्तारियाँ करवा रहे थे। खुफ़िया-विभाग के लोगों को पता लग गया। उन्होंने दोनों जन संघियों का दिल्ली तक पीछा किया। साथ ही दिल्ली की पुलिस को भी वायरलैस से सावधान कर दिया। चूँकि किसी का नाम नहीं बताया गया था इसलिए पुलिस को यह नहीं मालूम था कि वह किसका पीछा कर रही थी। जन संघ के दोनों नेता साउथ एक्सटेंशन गये और यह एक संयोग था कि उन्होंने सादे कपड़े पहने हुए पुलिस के आदमी से उसी ख़ास घर का पता पूछा। वह उन्हें वहाँ ले गया। नानाजी पश्चिमी कपड़े पहने हुए बड़ी-सी मूँछें रखे सिर के बालों को एकदम काला किये उस घर में घुसे (नानाजी के दाढ़ी-मूँछें साफ़ रखते हैं, उनके बाल सफ़ेद हैं और वह धोती-कुर्ता पहनते हैं)।

तभी पुलिस ने उस घर पर छापा मारा और उनको गिरफ़्तार कर लिया। वह पुलिस-स्टेशन ले जाये गये और वहाँ उन्होंने अपना नाम बताया, लेकिन कोई भी उन पर भरोसा नहीं कर रहा था। उन्होंने शिनाख़्त के लिए नानाजी की कुछ तसवीरें भी निकालीं, लेकिन यह विश्वास नहीं किया कि यह नानाजी ही हैं। उन्होंने नानाजी को कुछ समय के लिए अकेला छोड़ दिया। नानाजी ने अवसर का लाभ उठाया और शौचालय में गये। उन्होंने नाली में अपनी वह नोट-बुक बहा दी, जिसमें देश-भर के अपने सम्पर्क के लोगों के टेलीफ़ोन नम्बर लिख रखे थे। इसके बाद एक सरकारी कर्मचारी ने, जो संयुक्त विधायक दल की सरकार में जन संघ के एक मंत्री के यहाँ काम कर चुका था, नानाजी को पहचाना।

अब हमारी आँखें जॉर्ज फर्नान्डीज़ पर लगी थीं। हमें बताया गया कि वह पुलिस से कई बार बच निकले थे और श्रीमती गांधी के ख़िलाफ़ भूमिगत आंदोलन चला रहे थे।

मैं कभी-कभी सोचा करता था कि क्या कोई व्यक्ति इस जेल से बचकर निकला है? यहाँ बड़ी ऊँची-ऊँची ठोस एक-दूसरे के बाद दो दीवारें थीं। बाहर की दीवार पर बुर्जियों पर आदमी मशीनगन लिये हमेशा पहरा दिया करते थे। जेल-अधिकारियों को इस बात का गर्व था कि बीस साल से जब से यह जेल बनी थी कोई भी क़ैदी यहाँ से भाग कर नहीं निकला था।[1] अधिकारियों ने बताया कि एक बार एक क़ैदी मोरी में छिप गया था, लेकिन चार दिन के बाद वह उसमें से निकल आया क्योंकि मोरी के दूसरे सिरे पर लोहे की ठोस छड़ें लगी हुई थीं।

तब भी जेल-अधिकारी सतर्क रहते थे। क़ैदियों की एक दिन में दो बार गिनती होती थी। एक बार हमारे वार्ड में भगदड़ मच गयी, क्योंकि गिनती की गयी तो एक क़ैदी कम निकला। कोना-कोना छान डाला गया, लेकिन क़ैदी का पता नहीं लग रहा था। घंटों तलाशी के बाद वह छत पर सोता हुआ मिला। चूँकि सीढ़ियाँ नहीं थीं इसलिए किसी ने यह सोचा भी नहीं था कि वह छत पर सो रहा था। वह ऊँची दीवार पर चढ़कर छत पर किस तरह पहुँचा, इसके बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी गयीं। नानाजी के बाद गांधी शांति प्रतिष्ठान के राधाकृष्ण आये। उन्होंने भी इधर-उधर लोगों से सम्पर्क कर संगठित आंदोलन छेड़ा जा सकने की संभावना का अनुमान लगाया था। उनको बहुत ज्यादा आशा नहीं थी।

उन्हें मेरी बग़ल में जगह दी गयी। वह अपने थुलथुल शरीर के कारण मेरे

1. कुछ महीनों बाद इस जेल से चार अपराधी सुरंग से निकल कर भाग गये थे, जिसे खोदने में उन्हें हफ़्तों लगे होंगे।

बिस्तर पर भी जगह घेर लेते थे। मैं रात में बड़ी सावधानी से अपने को सिकोड़ता हुआ आधे विस्तर पर पड़ा रहता था जिससे उनको कोई परेशानी न हो। जब वह सोते तब वार्ड में सभी लोग उनके खर्राटों से जग जाते थे। मैं उनकी बग़ल में था, इसलिए मुझे सबसे ज़्यादा खर्राटे सुनने पड़ते थे। मैंने अपने कानों में रुई लगाकर सोने की कोशिश की, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। मैं सोचता था कि ऐसा मंत्र सीखा जाये जिससे शोर को दबाया जा सके। मैं रात विस्तर पर बैठे हुए काटता था। एक रात मैं उनके खर्राटों से जग गया और मैंने उन्हें जगाकर कहा, "अब आप सो चुके हैं, कुछ देर मुझे भी सो लेने दीजिये।" वह यह नहीं समझ सके कि मैंने उनसे क्या कहा और फिर सोने लगे।

उनके ख़र्राटों से तो चिढ़ होती थी, लेकिन उनके रहने से वह उचाटपन दूर हो जाता था जो हमें काटा करता था। और अब उन्होंने योग सीखना शुरू कर दिया था जिससे हमारा मन-बहलाव होता था। वह जल्दी जग जाते थे। वह जिस तरह से योग-अभ्यास करते थे उससे हमें इतनी हँसी आती कि कभी-कभी आँखों में से आँसू निकलने लगते। लेकिन वह इसका बुरा नहीं मानते थे। उनकी यही सबसे बड़ी विशेषता थी जो हमें बेहद अच्छी लगती थी। हालाँकि वह जानते थे कि हम लोग उन्हीं पर हँस रहे हैं तब भी उन्होंने इसकी कोई शिकायत नहीं की।

मेरा विस्तर कोने में था, जिससे खिड़की के पास रहने का लाभ था और काफ़ी रोशनी और हवा मिलती थी। लेकिन जब हवा बन्द हो जाती थी तब छत के पंखे से दूर होने के कारण हवा नहीं मिल पाती थी। इसका एक नुक़सान भी था, जब पानी बरसता तब मेरी चारपाई गीली हो जाती। उसको खिड़की से दूर नहीं ले जाया जा सकता था, क्योंकि खिसकाने के लिए जगह नहीं थी। लेकिन कई लोगों की अपेक्षा मैं काफ़ी अच्छी जगह पर था, क्योंकि मेरी तरफ़ की छत नहीं टपकती थी। बाक़ी छत इतनी टपकती थी कि कुछ लोगों को तो नीचे बाल्टी रखनी पड़ती थी।

हमने जेल के अधिकारियों को इसके बारे में बताया तो उन्होंने जवाब दिया कि उनके पास मरम्मत के लिए कोई फ़ंड नहीं है। उनके अनुसार, सारी छत फिर से पड़नी थी, लेकिन कई बार याद दिलाने पर भी सरकार ने इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं की थी। फिर भी मैंने बरसात का स्वागत किया।

एक बार सारी रात पानी बरसता रहा। मैं वह आवाज़ सुनता रहा जिसे मैं अपने बचपन से पसंद करता था। टपटप की आवाज़ मुझे बचपन से ऐसी लगती थी कि कोई जानदार चीज़ या कोई आदमी मेरे पास है जो डरावने भूत-प्रेतों से मुझे बचा लेगा। लेकिन जैसे-जैसे मैं बड़ा होता गया भूत-प्रेत का डर तो दूर होता गया, लेकिन अकेलेपन की भावना मेरे मन में गहरी होती गयी। इन अट्ठाईस आदमियों के बीच सोने पर, अकेला होने का कोई सवाल नहीं था। फिर भी मैं अकेला था, कहीं दूर रहता था बिना यह सोचे हुए कि मैं अपनी कल्पना में किस ओर जा रहा हूँ। बरसात से मेरे मन में यह भर जाता कि मेरे भी साथ कोई है। अपने साथियों से भी अकेलेपन की भावना दूर होने लगी। पहले दिन जब मैं यहाँ आया था, ये सब अजीब भीड़ जैसे लगते थे। मैंने अपने को एक ऐसे आदमी की तरह अनुभव किया जो अनजानी दुनिया में आ गया था, जहाँ लोगों की दाढ़ी बढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, सब-कुछ अस्त-व्यस्त था, जहाँ लोग गाली-गलौज करते थे और ऊपर से बहुत बड़े धार्मिक बनते थे। लेकिन अब यहाँ पर

ज्ञान, भाटिया या वालेस थे। अब मैं उनको जानता था।

राधाकृष्ण के आने से पहले ज्ञान की चारपाई मेरी बग़ल में थी। वह पेशे से तो हलवाई था, लेकिन उन लोगों में से था जो अपने व्यवसाय के बाहर की भी बात सोचते हैं। उसे राजनीति पसन्द थी, और राजनीति में फँस गया था। उसने पुरानी दिल्ली में जन संघ के टिकट पर स्थानीय निकायों का चुनाव भी लड़ा था। वह दयालु था, लेकिन उन लड़कों के प्रति नहीं जो हमारा काम करते थे। दो-चार सिगरेटों के बदले वह गन्दे कपड़ों की गठरी उनसे धुलवाता था। मुझे मिठाइयाँ पसन्द थीं, यह जानकर उसने दो बार कश्मीरी गेट की अपनी दूकान से मिठाइयों के डिब्बे मँगवाये थे।

वालेस साहब, जैसा कि हम उनको पुकारते थे, ज्ञान के पड़ोसी थे। हमारे वार्ड में उसे लोग सबसे ज़्यादा जानते थे, लेकिन सबसे कम इज़्ज़त देते थे। उसका किसी भी आंदोलन से, चाहे वह राजनीतिक हो या ग़ैर-राजनीतिक, कोई भी संबंध नहीं था। वह शायद व्यक्तिगत द्वेष का शिकार था। लेकिन कुछ नज़रबंदों ने जो उसे जानते थे, मुझे यह बताया कि वह पुलिस वालों को छोटी-छोटी बातों पर मुक़दमे कर तंग किया करता था। इसलिए जब पुलिसवालों को संविधान के बाहर कुछ शक्तियाँ मिल गयीं तब उन्होंने इसको फँसा लिया। जो भी कारण रहा हो, वह जेल में सभी लोगों के बीच फ़िट नहीं हो रहा था। उसने अपनी रिहाई के लिए कई बार टेलीग्राम और याचिकाएँ भेजी थीं। उसने लिखित रूप में माफ़ी भी माँगी, लेकिन हुआ कुछ नहीं।

जो थोड़ी-बहुत सहानुभूति उसे वार्ड में मिलती थी, उसने 25 अगस्त के बाद वह भी खो दी थी। उस दिन हम सब लोगों ने इमरजेंसी के खिलाफ़, जिसे लागू हुए दो महीने हो चुके थे, विरोध प्रकट करने के लिए उपवास किया था। सारा राशन, जिसमें दूध भी था,जेल-अधिकारियों को वापस लौटा दिया गया था। किसी ने चाय तक नहीं पी थी। वालेस ने उस दिन वार्डर के साथ खाना खाया, लेकिन वह यह सबको बताता फिरा कि वह भी उपवास कर रहा था। बहुतों ने उसका विश्वास कर लिया, लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि उसने झूठ बोला है तब वे उससे अलग हो गये। उसके और एक नज़रबंद के बीच इस पर झगड़ा भी हुआ। हमने किसी तरह स्थिति बचा ली और शान्ति बनाये रखी।

मेरी लाइन में तीसरा और आख़िरी आदमी भाटिया था। हर सुबह और शाम को वह आधे दर्जन नज़रबंदों को इकट्ठा कर लेता और उनसे ज़ोरों से 'ओम्' बुलवाता था। मुझे लोगों ने बताया कि आर० एस० एस० की शाखाओं में अधिकतर लोग इसी का अभ्यास करते थे। भाटिया जेल में अच्छी तरह रहता था। वह नियमित रूप से फल और अंडे खाता था। पुरानी दिल्ली में उसकी एक दूकान थी। वह अपना व्यवसाय वार्ड से चलाता था। उसे अपनी दूकान का हाल-चाल रोज़ाना मिल जाता था। वह आवश्यक निर्देश लिखकर भेज देता था। एक बार मैंने उससे पूछा कि वह यह सब किस तरह कर लेता है तो उसने जवाब दिया कि उसके लिए कुछ ख़र्च करना पड़ता था। वह जन संघ के आंदोलनों के सिलसिले में कई बार जेल काट चुका था, लेकिन उसने कभी पैरोल या रिहाई के लिए अर्ज़ी नहीं दी थी। जैसा कि वह कहता था, वह एक अनुशासनबद्ध कार्यकर्ता था।

भाटिया से मुझे पता चला कि जन संघ के कार्यकर्ता कितने अनुशासनबद्ध हैं—अगर ऊपर से एक शब्द भी कहा जाता है तो वह अन्तिम आदेश समझा जाता है। इसका उल्लंघन करने का तो कोई सवाल ही नहीं है। भाटिया ने इस

बात को कभी गुप्त नहीं रखा था कि आर० एस० एस० एक उत्तम संगठन है जिसने अपने 'सैनिक' विभिन्न क्षेत्रों में तैनात कर रखे हैं। वह हिन्दू-राष्ट्र में विश्वास करता था। वह इस बात को नहीं छिपाता था कि वह किसी भी मुसलमान का विश्वास नहीं करता। पाकिस्तान से आया हुआ शरणार्थी होने के नाते, जिसने नये सिरे से अपनी ज़िन्दगी शुरू की थी, वह यह नहीं भूला था कि मुसलमानों ने उसे बेघरबार कर दिया था। उसकी दलील बड़ी ही स्पष्ट थी—मुसलमानों ने हमको यहाँ भेजा, उनके भाई लोगों को वहीं जाना चाहिए, इन्हीं लोगों ने पाकिस्तान बनाया था।

हम लोग एक-दूसरे के जाने-पहचाने हो गये थे। यही हाल डॉक्टर साहब का था, जिन्हें हम इसी तरह पुकारते थे। डॉक्टर साहब एक क़ैदी के सिर पर दवाइयों का बक्स रखे उसको साथ लेकर एक वार्ड से दूसरे वार्ड धीरे-धीरे जाया करते थे।

इनके आ जाने से हमारी नित्य की ज़िन्दगी में रौनक़ आ जाती थी, इसलिए जिस दिन वह हमारे वार्ड में नहीं आते, हमें उलझन होती थी। जैसे ही वह आते थे, हम सब उनको घेर लेते थे। चाहे जिसे कोई भी बीमारी हो, वह या तो बी० कम्प्लेक्स का मिक्स्चर होता या ऐसी ही कोई बँधी-बँधाई दवा दे देते थे। हम लोगों को रोज़ाना आध घंटा उनके साथ बिताते बहुत अच्छा लगता था। वह सब लोगों के साथ हँसकर दोस्ती से बोलते थे और यही सबसे बढ़िया दवा थी। वह उन कुछ लोगों में से थे जिनके साथ काफ़ी दूर तक टहलने से सुख मिलता था। उनकी एक चिट से हम लोग वार्ड छोड़कर जेल के अस्पताल तक जा सकते थे, जो क़रीब आधा किलोमीटर दूर था। वार्ड में बहुत दिनों तक बंद रहने से, बाहर जाना मन और शरीर दोनों के लिए अच्छा था।

एक दिन मैंने उनसे चिट देने का आग्रह किया, जिससे मैं अस्पताल तक जा सकूँ। वहाँ एक बंगाली डॉक्टर चीफ़ मेडिकल आफ़िसर था। उसने मुझे बताया कि जब वह कलकत्ता में था तब उसने स्टेट्समैन में मेरे कुछ लेख पढ़े थे। वह जान गया कि मैं वार्ड से सिर्फ़ बाहर निकलने के लिए अस्पताल आया था। लेकिन मैंने उसे बताया कि मुझे नींद नहीं आती है। उसने बताया कि यह वातावरण की वजह से था। उसने मुझसे पूछा कि क्या मैं कुछ दिन अस्पताल में रहना चाहता था। मैंने चारों ओर देखा। यह जेल में बाक़ी जगहों की तरह गन्दा था—बल्कि शायद ज़्यादा गन्दा था। इस अस्पताल के साथ में लगा हुआ एक वार्ड था, जो दिमाग़ के रोगियों के लिए था। मैंने इस वार्ड से अजीब-सी आवाज़ें आती सुनीं और कुछ रोगियों को अजीब-सा व्यवहार करते देखा। लेकिन इससे ज़्यादा घिनावनी थी अस्पताल में फैली बदबू और चारों तरफ़ की गन्दगी। वहाँ पलँग कम रोगी ज़्यादा थे और इसलिए बहुत-से ज़मीन पर लेटे हुए थे। कुछ पलँगों की चादरें गंदी थीं और कुछ पर चादर ही नहीं थी। इस्तेमाल की हुई पट्टियाँ, फटे कागज़ और ख़ाली बोतलें फ़र्श पर बिखरी पड़ी थीं। दिमाग़ के रोगियों के वार्ड में न कोई नर्स और न कोई सहायक ही दिखायी पड़ रहा था।

मैंने डॉक्टर से कहा कि मैं अपने वार्ड में ही रहूँगा। उसने भी अस्पताल में आने के लिए कोई ज़ोर नहीं दिया। वह वहाँ की हालत के बारे में सतर्क था। उसने कहा कि जब आवश्यक दवाइयाँ ख़रीदने के लिए भी फ़ंड न हो तब वह कर ही क्या सकता था? उसने मुझे दूध और डबलरोटी और ज़्यादा दिये जाने के लिए एक चिट लिख दी। उसने कहा कि वह इतना ही कर सकता था।

वह लिहाज़ करता था, लेकिन नियम ऐसा नहीं करते थे। यह जानते हुए भी

कि वह जेल के अस्पताल में कुछ ज्यादा नहीं कर सकता है, कभी-कभी वह किसी क़ैदी को शहर के अस्पताल में भेज दिया करता था। नियमों के अनुसार, राजनीतिक क़ैदी को भी हथकड़ी पहन कर जाना होता था, उसके साथ पुलिस के छह आदमी जाते, उस पर सतत चौकसी रखी जाती थी, यहाँ तक कि वह अकेले में शौच भी नहीं जा सकता था। दिल के रोगी डॉक्टरी जाँच के समय ही नहीं, बल्कि ई०सी०जी० लिये जाने के समय भी हथकड़ी पहने रहते थे। एक बार एक क़ैदी ने शहर के अस्पताल में जाने से इनकार कर दिया। वह अपनी छाती में दर्द की शिकायत कर रहा था, डॉक्टर कह रहा था कि इसका ई० सी० जी० ज़रूर होना चाहिए, लेकिन पुलिस इस बात पर ज़ोर दे रही थी कि वह उसे हथकड़ी पहना कर ही ले जायेगी। वह इस बात पर अड़ा हुआ था कि वह यह बेइज्ज़ती नहीं बर्दाश्त करेगा।

अधिकारियों को कई बार प्रतिवेदन भेजे गये कि वह हथकड़ी वाले नियम से कम-से-कम रोगियों को छूट दे दें, लेकिन कोई भी जवाब नहीं आ रहा था। जेल के लोगों ने मुझे बताया कि जवाब आयेगा भी नहीं, क्योंकि सरकार की यह नीति थी कि हत्यारों की बनिस्बत राजनीतिक नज़रबंदों के साथ ज्यादा कड़ाई से व्यवहार किया जाये।

शायद यही कारण था कि निरोग रहने के लिए अक्सर विशेष प्रार्थनाएँ होती थीं। बहुत-से तो घंटों 'रामायण' और 'गीता' पढ़ा करते थे। भारती ने भी मुझे 'भगवद्गीता' की एक प्रति भेजी थी। यह अँग्रेज़ी में किया हुआ अनुवाद था। इसमें पाठ के गूढ़ अर्थ को समझने के लिए ढेर सारी टिप्पणियाँ थीं। मैंने 'गीता' को तो उतना नहीं पढ़ा जितना गीता के बारे में पढ़ा। अपने धर्म में भारती का गहरा और अटूट विश्वास था। मैं इसके लिए उससे अक्सर ईर्ष्या करता था। श्रद्धा एक खूँटी है जिस पर कोई भी आदमी अपनी चिन्ताओं और समस्याओं को टाँग सकता है। यह घावों पर मलहम का काम करती है. वह हममें आशा जगाती है जब हमारी आशा बुझ चुकी होती है। जो श्रद्धायुक्त हैं वे भाग्यशाली हैं।

महात्मा गांधी कहा करते थे कि जब निराशा उन्हें घेर लेती और उन्हें कहीं से भी कोई किरण नहीं दिखायी देती तब वह 'भगवद्गीता' की शरण में जाते थे।

भारती को राजस्थान के एक स्वामी की यह भविष्यवाणी याद आयी होगी कि मैं एक दिन 'धार्मिक बन' जाऊँगा। उसने कहा था कि यह बात उसने मेरी हथेली में देखी थी। लेकिन दूसरे किसी हाथ देखने वाले ने मेरे हाथ में यह ख़ास रेखा नहीं देखी थी। मेरे वार्ड में क़रीब आधे-दर्जन ऐसे लोग थे जो अपने को हस्तरेखा-शास्त्र का ज्ञाता कहते थे। वह हाथ देखा करते थे और साथ ही उपदेश भी देते थे। जेल की उदास ज़िन्दगी में समय बिताने का यह एक अच्छा साधन था। बुरी भविष्यवाणियाँ बहुत कम होती थीं और यह विश्वास दिलाया जाता था कि अच्छे दिन आने वाले हैं।

मैंने 'गीता' पढ़ने की कोशिश की, लेकिन मैं अपने को यही सोचता हुआ पाता कि इस पुस्तक को मेरे पास भेजने में कितना कष्ट उठाया गया था। क्या उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा होना पड़ा था और यह घोषणा करनी पड़ी थी कि इसमें क्रांतिकारिता की कोई बात नहीं थी? क्या उन्हें यह कथन तीन प्रतियों में या चार प्रतियों में प्रस्तुत करना पड़ा था? और जब यह पुस्तक आयी थी तब किसी को हर पृष्ठ उलट-पुलट कर यह निश्चय करने के लिए देखना पड़ा था कि इसमें कहीं कोई सूचना तो नहीं छिपी हुई थी? मैंने इसके पृष्ठों को स्वयं उलट-पुलट कर

देखा। मुझे अपने एक ईसाई दोस्त की याद हो आयी जो यही काम 'बाइबल' के साथ करता था। जब कभी उस पर कोई संकट आता या उसके सामने कोई समस्या होती थी तब वह कोई भी पृष्ठ खोल लेता और उसे पढ़ा करता था। मैंने इसे यूँ ही खोला और मुझे एक श्लोक दीख पड़ा, "जिस प्रकार कोई आदमी पुराने वस्त्रों को उतारकर दूसरे वस्त्र, नये वस्त्र, पहन लेता है, इसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर, नया शरीर, धारण कर लेती है।"

हर व्यक्ति को उसके सत्कार्यों का पुरस्कार अगले जीवन में मिलता है; बुरे कार्यों के लिए दण्ड इसी जीवन में मिल जाता है। इस जीवन में प्राप्त सुख-दुख की यही व्याख्या थी। इसी वाक्य में यह आशा निहित थी कि इस जीवन में जो कष्ट हम सहन कर रहे हैं उसका बदला अगले जीवन में मिल जायेगा। क्या यह ईसाई या इस्लाम के न्याय-दिवस के सिद्धान्त की अपेक्षा, जिसमें यह कहा गया है कि उस दिन जीवन का लेखा-जोखा कर यह निर्णय किया जायेगा कि किसको स्वर्ग में भेजा जाये और किसको नर्क में, ज्यादा विश्वसनीय था ?

मैंने देखा कि मेरी इस पुस्तक के कारण 'प्रार्थना वर्ग' के सदस्यों में कुछ जिज्ञासा जाग्रत हुई थी। उन्होंने शायद इस गर्व का अनुभव किया था कि पापी मुक्ति के रास्ते पर आ गया था। जब कभी वह मेरी बैरक में प्रार्थना के लिए इकट्ठे होते तो मैं बाहर निकल जाना न भूलता। इसका कारण अंशतः यह था कि मैं अपने को इनके बीच अकेला-सा अनुभव करता और अशंतः यह था कि मैं नहीं चाहता था कि उन्हें अपने बीच एक अविश्वासी की उपस्थिति से कोई परेशानी हो। अगर किसी कारण से मैं समय पर बाहर नहीं निकल पाता तो वह मेरे निकल जाने का इन्तजार करते थे। एकाध आदमी, जिन्होंने मुझे 'गीता' पढ़ते देखा था, प्रार्थना के समय आशापूर्ण नज़रों से मुझे देखा करते थे। लेकिन मैं हमेशा की तरह बाहर निकल जाता था।

मैं जन संघ के अपने प्रार्थना करने वाले दोस्तों को चिढ़ाता था कि वह वीरों की अपनी सूची में संजय गांधी का नाम भी शामिल कर ल, क्योंकि उसने वही कहा था जिसमें उनका विश्वास था। एक समाचारपत्र को इंटरव्यू देते समय उसने कहा था कि वह उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किये जाने व नियंत्रित अर्थव्यवस्था का विरोधी है। वह आर्थिक शक्ति बढ़ाने के लिए करों में कटौती और निजी क्षेत्र को अधिक स्वतंत्रता दिये जाने का हिमायती था।

यह पूछे जाने पर कि क्या बड़े-बड़े व्यापारिक संस्थानों में कटौती की जाये और क्या वह नियंत्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास रखता है ? संजय ने कहा था, "नियंत्रित अर्थव्यवस्था में, असल में बड़े-बड़े व्यापारिक संस्थान ही विकसित होते हैं, क्योंकि उनके पास नियंत्रणों से बचने के लिए साधन और क्षमता होती है। छोटे-छोटे लोग नियंत्रणों का उल्लंघन नहीं कर पाते, इसीलिए छोटा उद्योग करने वाला व्यक्ति ही नुक़सान उठाता है।

"अगर सभी नियंत्रणों को हटा लिया जाये तो बड़े-बड़े उद्योगपति ख़त्म हो जायेंगे। यही लोग नियंत्रण लगाने के लिए प्रचार करते फिरते हैं। इनमें कुछ तो बड़े-बड़े उद्योगपति हैं और कुछ नौकरशाह हैं। नियंत्रणों से नौकरशाही को संरक्षण देने तथा शक्ति और धन को प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त होती है।"

"आप किसी भी क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण नहीं चाहेंगे ?" इंटरव्यू करने वाले व्यक्ति ने पूछा। संजय ने कहा, "नहीं, कभी नहीं।" अपनी बात की पुष्टि में उसने कोयला-खानों के राष्ट्रीयकरण के परिणामों की चर्चा की थी। कोयला-खानों का

राष्ट्रीयकरण किये जाने के पहले कोयला पैंतीस रुपया प्रति टन बिक रहा था और खानों को मुनाफ़ा भी हो रहा था। श्री गांधी ने कहा, "कोयले का दाम नब्बे रुपये प्रति टन है और उन्हें सौ करोड़ रुपये का प्रतिवर्ष नुक़सान हो रहा है।" पर नौकरशाही को हर तरह का फ़ायदा हो रहा है, उन्होंने आगे कहा।

यह पूछे जाने पर कि क्या किया जाये जिसे आर्थिक सक्षमता आ जाये, संजय ने कहा, "एक तरीक़ा है कि काला वाज़ारी ख़त्म कर दी जाये। सवसे अच्छा उपाय यह है कि करों को कम कर दिया जाये।"

कुछ लोगों का विचार था कि माँ की अपेक्षा लड़का ज़्यादा बुद्धिमान था। अधिकांश लोगों को उसकी शैतानी पर रोना आता था, जिसके परिणाम हम लोगों तक आने शुरू हो गये थे।

कुछ ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि सड़कें चौड़ी करवा कर उसने चाँदनी चौक में कमाल का काम किया था।

पूरा चाँद निकल आया था। मैंने इसे धीरे-धीरे एक पतली रेखा से पूरा गोलाकार होते देखा था। सभी चीज़ें—लोहे की सलाखें, ऊवड़-खावड़ ज़मीन और धुआँ देता रसोईघर—रोशनी में नहायी हुई थीं, हर चीज़, यहाँ तक कि जेल में व्याप्त निराशा-भरी उदासी भी, सुन्दर लग रही थी। यह ताज्जुव था कि इससे डर या संत्रास के प्रति वदला लेने की नहीं वल्कि सहानुभूति की भावना पैदा हो रही थी। मैं एक ऐसे आदमी की तरह था जो दर्द के वावजूद ख़ुशी का अनुभव कर रहा था।

मैं सोच रहा था कि अगर मैं वच्चा होता तो मैं अपनी छत पर चढ़ जाता और देखता कि क्या चाँद पूर्ण उग आया है, मैं सवसे पहले अपनी माँ को वताता कि चाँद निकल आया है। वह हर पूर्णमासी को उपवास रखा करती थीं। वह पूरे चाँद को एक छलनी में देखकर उपवास तोड़ा करती थीं। मुझे वह वायदा भी याद आया जो मैंने किसी से लिया था जिसे मैं प्यार करता था कि मैं पूरे चाँद को निहारा करूँगा। उसने कहा था कि वह भी ऐसा ही करेगी। मुझे कभी नहीं मालूम हुआ कि वह देखती थी या नहीं, लेकिन यह वात सोचने में वेहद अच्छी लगती थी और मैं चाँद को देर तक अपलक देखता रहता था।

मुझे जॉनसन के शब्द याद आये: "हर कहानी का मूल्य उसके सच्चे होने में है। कहानी या तो सामान्य मानव के स्वभाव का चित्रण करती है; अगर यह कहानी झूठी हो तो किसी की भी तसवीर नहीं होती।"

मैंने दूर से आती संगीत की ध्वनि सुनी, लेकिन वह शोर-शरावे में डूब गयी। मैं उस लय को पकड़ने की भरसक कोशिश में था। मैं काली मोटी दीवार तक टहलता हुआ गया और उस पर कान रख सुनने लगा। यह कोई महान संगीत नहीं था, महज़ एक फ़िल्मी गीत था, लेकिन मुझमें एक अजीव उदात्त भावना भर रहा था। बहुत दिन से मैंने कोई संगीत नहीं सुना था, सुनना मुझे मयस्सर नहीं था। मैं वाहरी दुनिया से कितना अलग हो गया था! क्या वाहर कोई दुनिया थी भी? संगीत की लय, वाहर सड़कों पर गाड़ियों की घरघराहट या जेल के ऊपर हवाई जहाज़ों के उड़ने की गूँज—सभी यह वताती थीं कि इन ऊँची मोटी और ठोस दीवारों और लोहे के फाटकों के वाहर ज़िन्दगी सामान्य रूप से चल रही थी। उन्हें प्यार, खाना, कपड़ा, काम और पूजा की वैसी ही कामना थी, उन्हें जेल के भीतर वन्द लोगों के वारे में कोई जानकारी नहीं थी। कभी फ़ुरसत के

समय में कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो सोचते होंगे कि हमें असफलता मिली और कुछ सफलता चाहते होंगे। उनका जो भी निष्कर्ष रहा हो, जितने समय मैं क़ैद में रहा वह बेकार गया और वह वापस कभी नहीं आयेगा। उसका अच्छा इस्तेमाल किया जा सकता था।

मैंने एक अजीब-सा सपना देखा। मैं अपने बाप-दादों के शहर, सियालकोट लौट आया था जो अब पाकिस्तान में है और अपने घर के पीछे छोटे-से मक़बरे में एक अनजान पीर के सामने खड़ा था। यह मक़बरा उजड़ा हुआ दीख रहा था, सब जगह घास उग आयी थी, लेकिन मैं कुर्सी पर बैठा पीर को देख रहा था। उसकी सफ़ेद लंबी दाढ़ी थी, कंधे पर सफ़ेद चादर पड़ी हुई थी।

मैं अपने स्कूल के दिनों में हर बृहस्पतिवार (जुम्मेरात—शुक्रवार से पूर्व-संध्या को जो मुसलमानों के लिए पवित्र मानी जाती है) को मक़बरे जाता था और इम्तहान शुरू होने से पहले मिठाई चढ़ाता था। मैं इस विश्वास के साथ बड़ा हुआ कि पीर अपने सच्चे भक्त की प्रार्थना मंजूर करता है।

सपने में पीर ने मुझसे कहा कि मैं अगले बृहस्पतिवार को छूट जाऊँगा और मैं अचकचा कर उठ बैठा। मेरे कमरे में कोई प्रार्थना कर रहा था—यह लगभग तड़का था—और यह बृहस्पतिवार था।

पीर के प्रति श्रद्धा मेरे मन में बचपन से ही घर कर गयी थी। मेरी माँ उनके बारे में अक्सर बड़े आदर से चर्चा करती। मैंने उन्हें अपने पिता से अनबन होने पर कई बार मक़बरे जाते देखा था।

जब भारती और मेरा साला राजिन्दर मुझे देखने आये तब सपने की याद मेरे दिमाग़ में ताज़ा थी। नज़रबन्द हुए मुझे दूसरा महीना चल रहा था और नियमों के अधीन मैं अपने निकट के रिश्तेदारों से महीने में एक बार मिल सकता था। राजिन्दर ने मेरे केस के बारे में मुझसे विचार-विमर्श किया, उसे बिलकुल भी आशा नहीं थी। याचिका के गुण-दोष का सवाल नहीं था, लेकिन सारे देश में एक डर छाया हुआ था। मुझे पता चला कि कुछ ही जज सरकार की मर्ज़ी के खिलाफ़ जा सकते हैं। लेकिन जेल के मेरे एक साथी ने बताया कि रंगराजन और अग्रवाल से अच्छे जज किसी ग़लत नज़रबंद होने वाले क़ैदी को नहीं मिल सकते थे। दोनों अपनी स्वतंत्रता और निर्भीकता के लिए प्रसिद्ध थे।

राजिन्दर को सूचना मिली थी कि सरकार मुझे तभी छोड़ेगी जब नेता लोग छोड़े जायेंगे। इसका अर्थ यह था कि मुझे जेल में बहुत दिन के लिए रहना पड़ेगा। मैंने उनसे जाड़े के कपड़े और कुछ और ज्यादा किताबें भेजने के लिए कहा। राजिन्दर ने कहा कि इसके लिए भी मंजूरी लेनी पड़ेगी और यह संबंधित मजिस्ट्रेट की मर्ज़ी पर निर्भर करेगा। मैंने उसे बताया कि हमने सुना था कि मजिस्ट्रेटों पर इस बात का और अधिक दबाव डाला जा रहा था कि नज़रबंदों को कम-से-कम सुविधाएँ दें।

राजिन्दर का विचार था कि यह सच हो सकता है। अभी हाल में वह सच्चर साहब से मिलने अम्बाला गया था और उनसे बड़ी मुश्किल से मिल सका था। ऐसा लगता था कि सरकार तब तक यह निर्णय नहीं कर पायी थी कि क्या नज़र-बंदों को अपने संबंधियों से मिलने की इजाज़त दी जाये।

राजिन्दर ने बताया कि उसने गृह-मंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी को टेलीफ़ोन किया था। उन्होंने बताया कि वह 'ओम से पूछेंगे' और तब उसे बतायेंगे कि मिलने की मंजूरी मिल सकेगी या नहीं (ओम मेहता उन दिनों गृह-मंत्रालय में उनके नीचे

काम करते थे) । राजिन्दर ने कहा—कि यह तो वह खुद ही कर सकता है। और उसने ओम मेहता को टेलीफ़ोन किया। ओम मेहता ने कुछ देर किसी से पूछने के लिए रुककर—शायद श्रीमती गांधी से—उसे इजाज़त दी थी।

हमारी बातचीत मुश्किल से शुरू ही हुई थी कि पास में बैठे पुलिस के सिपाही ने कहा कि समय पूरा हो गया। मैं बेहद झुँझलाया, मैं अपने बच्चों के बारे में, अपने बूढ़े माँ-बाप और अपने दोस्तों के बारे में बहुत कुछ जानना चाहता था। लेकिन पुलिस का सिपाही बेबस था, नियम तो नियम ही थे और आधे घंटे का समय मंज़ूर हुआ था। मैं अपनी कोठरी की तरफ़ लौटने लगा तो मैंने इंटरव्यू के कमरे के पास ही अपनी बहन को खड़ा देखा। मैं उसकी ओर देखने लगा, लेकिन पुलिस वालों ने मुझे रोक दिया। मैंने देखा कि वह रो रही थी, उसने अचानक सिर ऊपर उठाया और चिल्लाकर कहा : "यह लोग हमारे रिश्ते को नहीं छीन सकते, हम भाई-बहन हैं।"

मेरे पीर ने मुझे जिस बृहस्पतिवार के बारे में कहा था, वह बड़ी इन्तज़ार के बाद आख़िरकार आ गया। वार्ड का जब भी दरवाज़ा खुलता मैं बाहर की तरफ़ बड़ी आशा से देखने लगता। मेरे एक-दो क़ैदी साथियों ने इसे भाँप लिया, लेकिन उन्होंने कोई टीका-टिप्पणी नहीं की। मैंने उन्हें अपने सपने की बात नहीं बतायी थी—वे मुझे निश्चय ही अन्धविश्वासी कहते, ख़ास तौर से इसलिए कि वहाँ लगभग सभी हिन्दू थे और मैंने अपने सपने में पीर को देखा था, राम या कृष्ण को नहीं।

एक बार मैं वार्डर से मिला तो मैंने बड़े ही सहज भाव से क़ैदियों के छोड़े जाने की प्रक्रिया की सभी बातों के बारे में ब्यौरेवार पूछा। उसने बताया कि रिहाई का आदेश कभी भी सेल में नहीं आता, क़ैदी से अपना सामान इकट्ठा करने और सुपरिंटेंडेंट के पास जाने के लिए कहा जाता है, लेकिन क़ैदी को छोड़े जाने के समय ही नहीं बल्कि उसको एक सेल से दूसरे सेल या जेल में ले जाने के समय भी यही होता है। यह सावधानी इसलिए बरती जाती थी कि छूटने वाले के साथी उसके साथ मिलकर जेल से निकल भागने के लिए कोई षड्यंत्र न कर सकें।

मैं अपना सामान बटोरने के लिए सारे दिन आदेश का इन्तज़ार करता रहा, लेकिन वह आया नहीं। रात के खाने के समय तक मुझे यह विश्वास हो गया कि जो सपना मैंने देखा था वह सिर्फ़ सपना था। यह नहीं हो सकता कि किसी आदमी को रात में रिहा किया जाता। मैं वार्डर से दुबारा पूछ भी नहीं सकता था, क्योंकि इससे निश्चय ही उसका कौतूहल बढ़ सकता था। वह मुझसे पूछताछ करने लग सकता था। और अगर मैं उससे अपने सपने की बात बता देता तो यह चारों तरफ़ फैल सकती थी, जिससे मैं सबकी हँसी का पात्र बन सकता था। एक बार मैं उदास होकर सोने चला गया, लेकिन मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैंने जेल की घड़ी में दस बजते सुना। और तभी अचानक वार्डर मेरी चारपाई के पास आया। मुझसे उसने अपने साथ बाहर चलने के लिए कहा। जेल-सुपरिंटेंडेंट मेरा इन्तज़ार कर रहा था।

यह असाधारण बात थी। मुझसे अपना सामान इकट्ठा करने के लिए नहीं कहा गया था। वार्ड में सब लोग उत्सुक हो गये। जो लोग चारपाइयों में लेटे थे वे उठकर बैठ गये, बाक़ी पहले ही मुझे घेरे खड़े थे। सभी मेरे साथ गेट तक आये लेकिन वार्डर ने उन सबको रोक दिया, सिर्फ़ मुझे ही बाहर आने दिया। इसका कुछ लोगों ने विरोध किया, क्योंकि कुछ को शक था कि कहीं कोई धोखा न हो।

हम लोग बहुत दिनों से एक साथ रह रहे थे और एक परिवार बन गये थे, एक आदमी की खुशी हर आदमी की खुशी थी, इसी तरह एक आदमी का दुख सब लोगों का दुख था। वार्डर ने उन सबको विश्वास दिलाया।

मैंने सुपरिंटेंडेंट को बाहर खड़े देखा। उसके साथ एक और आदमी था। मुझे बताया गया कि वह दिल्ली का डिप्टी-कमिश्नर था और सुपरिंटेंडेंट हमारा एक-दूसरे से परिचय करा कर चला गया। वह बातचीत में दोस्त जैसा लगा। उसने कहा कि उसने मेरी किताबें पढ़ी थीं और वह चाहता था कि वह मुझसे कहीं अन्यत्र मिलता। उसने मुझसे कहा कि प्रधानमंत्री ने मेरे स्वास्थ्य के बारे में दो-तीन बार पूछा भी था।[1] उसने मुझसे मेरे बारे में और जेल में रहन-सहन की हालत के बारे में पूछा। मैं थोड़ा नाराज़-सा था कि मुझे सोते से क्या सिर्फ़ इसी पूछताछ के लिए बुलाया गया था। लेकिन मैंने उससे कहा कि मुझे एक बात नहीं समझ में आती कि जेलें इतनी गन्दी क्यों रहती हैं, इनमें जगह से ज़्यादा आदमी क्यों भरे जाते हैं? कोई भी जेल में नहीं रहना चाहता, सरकार इन क़ैदियों को आवश्यक सुविधाएँ न देकर खुद उनको क्यों सताती है? उसने कहा कि वह इस बारे में कुछ नहीं कर सकता और उसने बताया कि जेल इतने सारे आदमियों को रख भी नहीं सकती, नज़रबंदों की भीड़ के कारण सुविधाएँ कम पड़ गयी थीं।

उसने मुझे बताया कि मेरे मामले में कुछ ग़लती हो गयी थी, क्योंकि फ़ाइलों में मेरे विरुद्ध कुछ भी नहीं था। मेरे खिलाफ़ यह शिकायत ग़लत निकली थी कि मैंने कुछ खबरें विदेशों को भेजी थीं और इसकी सूचना प्रधानमंत्री के सचिवालय को दे दी गयी थी। उसने मुझसे नज़रबंदों के हौसले के बारे में पूछा। मैंने उसे बताया कि उनका हौसला बुलन्द था। उसे यह सुनकर ताज्जुब हुआ, क्योंकि उसने बताया कि नज़रबंदों में अस्सी प्रतिशत ऐसे लोग थे जो किसी-न-किसी रूप में यह व्यक्त कर चुके थे कि वह जेल से बाहर जाना चाहते थे। हमारी बाक़ी चर्चा सामान्य बातों पर हुई।

आधे घंटे के बाद जब वह जाने लगा, तब वार्डर मुझे वापस ले जाने के लिए मेरे पास आया। जैसे ही मैं वार्ड के अन्दर घुसा, मुझे मेरे क़ैदी साथियों ने घेर लिया। सभी जानना चाहते थे कि क्या हुआ। मैंने उनको बताया कि यह मैं नहीं जान सका कि मुझसे डिप्टी-कमिश्नर क्या चाहता था, क्योंकि उसने ज़्यादा

---

1. शाह कमीशन के सामने गवाही देते हुए, डिप्टी-कमिश्नर ने कहा कि आर० के० धवन ने उसे मुझसे यह कहने के लिए फ़ोन किया था कि प्रधानमंत्री ने मेरे बारे में दो-तीन बार पूछा था।

उसने कमीशन को बताया था कि उसे मेरी गिरफ़्तारी के आदेश प्रधानमंत्री-निवास से उप-राज्यपाल के सचिव नवीन चावला की मार्फ़त मिले थे। मुझे गिरफ़्तार करने वाले पुलिस-सुपरिंटेंडेंट, के० डी० नैयर ने अपने बयान में कहा कि मेरी गिरफ़्तारी से दो या तीन दिन बाद ही अभियोग-पत्र तैयार किया गया था। यह अभियोग सी० आई० डी० के सुपरिंटेंडेंट, के० एस० बाजवा द्वारा दी गयी सूचना के आधार पर बनाये गये थे। पी०सी० भिंडर ने गवाही देते हुए कहा कि उन्हें मेरी गिरफ़्तारी की "जानकारी" सुपरिंटेंडेंट से मिली थी, इस गिरफ़्तारी में उसका कोई हाथ नहीं था; उन्होंने केवल अपने कर्मचारियों से सिर्फ़ यही कहा कि कुलदीप नैयर के साथ "समुचित शिष्टता" का बर्ताव किया जाये, क्योंकि वह एक प्रमुख पत्रकार हैं।

कृष्णचंद ने कमीशन को बताया कि उन्होंने सुपर-प्रधानमंत्री के आदेशों का "सिर्फ़ पालन" किया। कृष्णचंद ने कहा कि उन्हें मेरी गिरफ़्तारी पर अफ़सोस था, क्योंकि वह मुझे जानते थे, लेकिन ओम मेहता ने उन्हें बताया था कि श्रीमती गांधी मेरी गिरफ़्तारी के लिए ज़ोर दे रही थीं।

समय मुझसे जेल में रहन-सहन की स्थिति के बारे में ही बातचीत की थी। इस असामान्य घटना के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही थीं, कुछ को शक था कि मैं कुछ छिपा रहा था। रात बहुत हो गयी थी, हम सब सोने के लिए चले गये। हम इस असामान्य घटना को लेकर उलझन में पड़ गये थे; पता नहीं कब हमारी आँख लग गयी।

अभी छह नहीं बजे थे, फिर भी वार्डर ने मुझे जगा दिया। जेल-सुपरिंटेंडेंट फिर बाहर मेरा इन्तज़ार कर रहा था। जब मैं उससे मिला तब उसने बताया कि डिप्टी-कमिश्नर ने जाने से पहले पिछली रात—बृहस्पति की रात—को ही मेरी रिहाई के लिए आवश्यक कागज़ों पर दस्तख़त कर दिये थे।

मुझे अपना सपना याद आ गया।

मैं वार्ड में वापस लौट आया। सभी लोग यह सुन कर कि मैं रिहा किया जा रहा था, मुझे बधाई देने लगे। सुपरिंटेंडेंट चाहता था कि मैं जल्दी चला जाऊँ, मेरे क़ैदी साथियों ने मुझे अपना सामान बाँधने में मदद की। उन्होंने कहा कि वह मेरी याद करेंगे। कुछ ने यह आशा व्यक्त की कि मेरी रिहाई के बाद अब लोग ज़्यादा संख्या में रिहा किये जायेंगे। कुछ ने मुझे अपने-अपने टेलीफ़ोन नम्बर दिये और अपने परिवार के लोगों को यह बताने के लिए कहा कि वे सब ठीक हैं।

विदा होने से पहले राजस्थान का एक ब्राह्मण, जिसके माथे पर तिलक की ढेर सारी रेखाएँ बनी हुई थीं, मुझे अलग ले गया। वह मुझसे एक पेड़ लगवाना चाहता था।

वह सारा दिन या तो पूजा-पाठ करता या माला जपा करता था। उसकी बातों से लगता था कि वह एक विलक्षण व्यक्ति है। वह अपनी बातचीत में धर्म और प्रेम जैसे शब्दों का खुल कर प्रयोग करता था। मैं अकसर ताज्जुब करता था कि यह धार्मिक व्यक्ति क्यों नज़रबन्द किया गया। मैं अकसर उसे चिढ़ाता भी था कि ईश्वर ने उसे धोखा दिया है। वह हमेशा शान्त रहता। वह 'गीता' में भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को बताये गये कर्मवाद में विश्वास करता था। उसका तर्क था कि जो कुछ कोई इस समय है, वह उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।

उसने मुझे पेड़ लगाने के महत्व को बताया। उसने इस बात पर ज़ोर देने के लिए कि पेड़ का लगाना तीर्थयात्रा करने के समान है, संस्कृत के कुछ श्लोक भी सुनाये। उसके लम्बे-चौड़े भाषण का सार यह था कि मैं वार्ड के अन्दर एक पेड़ लगाऊँ। वार्ड में ज़मीन इतनी ऊसर और पथरीली थी कि मैंने अपने वार्ड के साथियों को उसे बराबर कर वहाँ चना या सब्ज़ी बोने का सुझाव दिया था। जेल के अधिकारियों ने इस सुझाव को नामंजूर कर दिया था, क्योंकि उनका कहना था कि ऐसी हालत में क़ैदियों को खेती-बाड़ी करने के सामान देने पड़ेंगे, लेकिन किसी अव्यक्त नियम के अनुसार कोई भी तेज़ धार का औज़ार पुरुषों को नहीं दिया जा सकता था, इस डर से कि ये लोग इन औज़ारों का इस्तेमाल आपस में लड़ाई करने में या निकल भागने के लिए सुरंग खोदने में करेंगे। यह दलील कि ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए वहाँ दिन-रात वार्डर रहता था, मानी नहीं गयी।

चाहे नियम हो चाहे नहीं, पंडितजी पेड़ लगवाने के अपने मिशन पर दृढ़ थे। उन्होंने एक गड्ढा अपने हाथों से खोदा था। मैंने उनसे कहा कि पेड़ लगाने से मुझे यह याद आ रहा है कि वी० आई० पी०-लोग इन समारोहों को किस प्रकार प्रचार का साधन बना लेते थे और पहले से व्यवस्था की जाती थी कि वहाँ फ़ोटोग्राफ़र और संवाददाता उपस्थित रहें।

मैंने पंडितजी से मज़ाक में पूछा, "फ़ोटोग्राफ़र लोग कहाँ हैं ?" जल्दी ही वहाँ और लोग भी इकट्ठे हो गये, उस काम के प्रति आदर की भावना से नहीं, जो मैं सम्पन्न कर रहा था बल्कि इसलिए कि हर किसी को जेल में समय काटना मुश्किल हो जाता था और इससे थोड़े समय के लिए मन बहल गया। वह पौधा अमरूद का था जो जल्दी ही बड़ा हो जाता है। मैंने वह पौधा धीरे-से गड्ढे में रखा, मिट्टी डाली और उसे सींच दिया। मैंने कोई भाषण नहीं दिया, हालाँकि लोग आग्रह करते रहे। मुझे टेनीसन की पंक्ति याद आ गयी : "दरार पड़ी दीवारों में फूल।" मैंने उस दिन के बारे में भी सोचा कि जब वह पौधा बढ़ कर पूरा एक पेड़ बन जायेगा। मैं तब कहाँ होऊँगा ?

हालाँकि मैं रिहा होने से खुश था, मुझे विश्वास था कि मुझे उन लोगों की याद आयेगी जिनके साथ मैं दो महीने रहा। उन लोगों ने इस अवधि में कितनी बार अपनी समस्याएँ, शंकाएँ, आशाएँ बतायीं और कितनी बार मैंने उनसे अपनी समस्याओं, शंकाओं आदि की चर्चा की। हम लोगों ने साथ-साथ तकलीफ़ें झेलीं, हम साथ-साथ हँसे, हम आपस में झगड़े भी और हमने साथ-साथ आशाएँ भी सँजोयीं। मैं जानता था कि वे मुझसे यह आशा करते थे कि मैं उनके लिए तानाशाही के ख़िलाफ़ लड़ाई बाहर से लड़ूँगा। मैं सोचता था कि इस सबके लिए क्या मुझमें शक्ति या उत्साह था ! मुझे विदा करने के लिए दरवाज़े पर सबकी भीड़ लग गयी। मैं उनसे विदा लेकर सुपरिंटेंडेंट के पास गया। मैंने उनसे पूछा कि क्या कोई मेरे घर कार भेजने के लिए टेलीफ़ोन कर देगा ? सुपरिंटेंडेंट ने कहा कि यह नियम-विरुद्ध है, वह मुझे एक टैक्सी मँगवा सकता है।

जब तक मैं टैक्सी में नहीं बैठ गया सुपरिंटेंडेंट और वार्डर मेरे पास खड़े रहे। वह मुझे आज़ाद होते देख रहे थे। वार्ड के किसी आदमी ने मुझे चेतावनी दी थी कि अधिकारी एक आदमी को एक ओर रिहा करते हैं और दूसरी ओर उसी समय गिरफ़्तार भी कर लेते हैं। मेरे चारों ओर पुलिस का कोई आदमी नहीं था।

मुझे उन भयानक दीवारों के बाहर आकर, बिना सींखचे लगी खिड़कियों से बाहर देखते हुए अच्छा लग रहा था। मैंने देखा कि सड़कें बेहद चौड़ी हो गयी थीं और महीनों जेल में रहने के बाद, जहाँ हर चीज़ अरुचिकर थी, कैंटोनमेंट का भीड़-भरा बाज़ार साफ़-सुथरा था।

...और बाद में

भारती किसी मन्दिर में गयी हुई थी और घर पर सिर्फ़ राजू था। जब उसने मुझे देखा तब उसने चिल्लाना शुरू कर दिया, कुछ देर बाद मैंने उससे टैक्सी-ड्राइवर को किराया देने को कहा। उसके बाद मैंने अपने माँ-बाप को टेलीफ़ोन किया। मैंने पहले तो उनको अचम्भे में चिल्लाते सुना, लेकिन बाद में जब उन्होंने मेरी आवाज़ सुनी तब वह खुशी के मारे चिल्लाने लगे। मुझे पता चला कि मेरे ससुर को पहले ही छोड़ा जा चुका था। तत्कालीन विधिमंत्री गोखले ने सरकार को बताया था कि उनके ख़िलाफ़ कोई भी मामला नहीं था और न मेरे। श्रीमती गांधी ने उनकी रिहाई के आदेश दे दिये थे, लेकिन मेरी फ़ाइल अपनी मेज़ पर रख छोड़ी थी। स्पष्ट ही वह यह जानना चाहती थीं कि मेरी अपील पर कोर्ट में क्या कार्रवाई होगी। जब उन्हें यह बताया गया कि कोर्ट निश्चय ही मुझे रिहा कर देगी तब वह मेरी रिहाई पर सहमत हो गयी थीं।

मन्दिर से लौटने के बाद भारती को मुझे राजू के पास बैठा देख कर अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। सभी लोग खुश थे। बहुत-से टेलीफ़ोन किये गये और बहुत-से टेलीफ़ोन आये। राजू ने पूड़ों के लिए आर्डर दिया (पूड़ा एक तरह का मालपुए होता है जिसको पंजाबी लोग बरसात के दिनों में खाते हैं)। यह उसकी मनपसन्द मिठाई थी। उसने क़सम खा रखी थी कि जब तक मैं जेल में रहूँगा तब तक वह उसे नहीं छुयेगा। उसने दो महीने से इसे नहीं खाया था।

हालांकि मेरे परिवार के लोगों को मेरे जेल से छूटने पर ताज्जुब था, पत्रकारों को कोई भी ताज्जुब नहीं हुआ। जिस मुख्य सेंसर कार्यालय ने मेरी रिहाई की खबर न छापने के लिए उन्हें निर्देश दिया था, मैं उनका कृतज्ञ था। मेरे घर पहुँचने के एक घंटे के अन्दर कुछ विदेशी पत्रकार मेरी रिहाई का ब्यौरा जानने के लिए आ गये। मैंने उन्हें डिप्टी-कमिश्नर के आने के बारे में बताया और कहा कि मैं इससे ज़्यादा कुछ नहीं जानता।

बहुत-से विदेशी समाचारपत्रों ने मेरी रिहाई की ख़बर छापी और मुझे ऐसे लोगों के टेलीफ़ोन आये जिन्होंने इसकी ख़बर बी० बी० सी० के रेडियो पर सुनी थी।

जब कोर्ट में मेरे रिट-पिटीशन पर फ़ैसला सुनाया गया था तब मैं वहाँ हाज़िर था। इस मामले की सुनवाई 1 सितंबर 1975 को शुरू हुई थी। इस पर फ़ैसला सुनाने के लिए 10 सितंबर तारीख़ निश्चित की गयी थी। मेरे बचाव-पक्ष की ओर

से वी० एम० तारकुंडे, सोली सोरावजी और सॉलिसिटर अग्रवाल थे। इनमें से किसी ने भी फ़ीस नहीं ली थी।

सरकार ने दलील दी कि चूंकि मुझे रिहा कर दिया गया है[1], इसलिए फ़ैसला सुनाने की कोई ज़रूरत नहीं। लेकिन जजों ने कहा कि वे फ़ैसला सुनायेंगे। सीनियर जज रंगराजन ने कहा कि जिस तरीक़े से सरकार ने यह मुक़दमा चलाया उससे लगता था कि वह फ़ैसला चाहती है, लेकिन जब मुलज़िम के ख़िलाफ़ कोई भी मुक़दमा नहीं बना और सरकार ने समझा कि वह छोड़ दिया जायेगा तब उसने फ़ैसले से बचने के लिए नज़रबंद को रिहा कर दिया। रंगराजन ने फ़ैसला[2] पढ़ा और एक ऐसे आदमी को क़ैद करने के लिए सरकार की आलोचना की जिसका राजनीति से कोई संबंध नहीं था, जिसने किसी भी क़ानून को नहीं तोड़ा था और जिसने सिर्फ़ पत्रकार की तरह काम किया।

जजों ने यह अनुभव किया कि प्रश्न महत्वपूर्ण है और इस मामले में फ़ैसला सुनाना ज़रूरी है : "हमने क़ानूनी विचार किये जाने की संभावना को स्पष्ट करने की कोशिश की है, साथ ही यह स्पष्ट करने की कोशिश की है, मोटे तौर पर ही सही, कि प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है और किस हद तक क़ानूनी विचार संभव है। हमने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि क़ानून के तहत कोई भी नियम प्रशासक को मनमानी कार्रवाई करने की इजाज़त नहीं देता।"

कोर्ट का कमरा भीड़ से भरा था। फ़ैसले के बाद कुछ विदेशी पत्रकारों ने मुझे घेर लिया जो वहाँ मौजूद थे और उन्होंने मेरी प्रतिक्रिया जाननी चाही। मैंने उनसे कहा, "मेरी दलील उचित ठहरायी गयी और समाचारपत्रों की स्वतंत्रता की विजय हुई।"

विदेशी समाचारपत्रों ने फ़ैसले की सराहना की। लन्दन से प्रकाशित गार्जियन की टिप्पणी अनोखी थी—

केवल कुछ कुत्ते ही भौंक रहे थे

भारत में इमरजेंसी लागू हुए लगभग तीन महीने बीत रहे हैं और विरोधियों का ग़ायब होना एक रहस्य बनता जा रहा है। जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई और इसी तरह के अन्य वरिष्ठजन के भाग्य के बारे में निश्चय ही अब कोई रहस्य नहीं रह गया है। वे दस हज़ार से भी ज्यादा लोगों के साथ जेल में हैं। लेकिन देश के विशाल भू-भाग में कहीं भी विरोध का एक भी स्वर इस निस्तब्धता को नहीं भंग कर रहा है। जो विरोधी थे उन्होंने अपने सारे सिद्धान्तों को ताक़ पर रख दिया है और श्रीमती गांधी का आश्चर्यजनक ढंग से समर्थन कर रहे हैं। समाचारपत्रों को पालतू बना दिया है या उनका गला घोंट दिया गया है।

केवल न्यायपालिका ही सफलतापूर्वक स्वतंत्र है। कुलदीप नय्यर के मामले में सरकार के ख़िलाफ़ दिल्ली के हाई कोर्ट के फ़ैसले से इस बात का फिर से संकेत संकेत मिलता है कि भारत के न्यायाधीशों में कम-से-कम कुछ साहसी और

---

1. शाह कमीशन के सामने इस रहस्य का पता लगा कि एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट पी० घोष द्वारा, जिन्होंने मेरी गिरफ़्तारी का आदेश दिया था, जो हलफ़नामा दिल्ली हाई-कोर्ट में पेश किया गया था उसे गृह-मन्त्रालय ने तैयार किया था और वह उन्हें "कचहरी शुरू होने के पाँच मिनट पहले दिया गया था और उनसे उस पर दस्तख़त करने को कहा गया था।"
2. परिशिष्ट III में सारांश।

आज़ाद हैं। एक्सप्रेस न्यूज़ सर्विस के सम्पादक, श्री नय्यर उन हज़ारों लोगों में से थे जिन्हें क़ैदी बनाया गया था। लेकिन उनकी पत्नी ने इसके ख़िलाफ़ निर्भीक हो संघर्ष किया, श्री नय्यर की प्रतिष्ठा पर कोई भी आँच नहीं आयी और उच्च-न्यायालय में दर्ज याचिका के कारण फ़ैसले के पहले ही उनको रिहा करना पड़ा।

लेकिन इससे हमें ज़्यादा ख़ुश नहीं होना चाहिए। इसके कई कारण हैं। पहला, न्यायपालिका अपने तंत्र के कारण आज़ादी का दुर्गम स्रोत है। जैसा कि कुलदीप नय्यर के मामले में हुआ, वह व्यक्ति को आज़ाद कर सकती है लेकिन जेलों में अभी इतने लोग हैं कि अदालतों को उनके मामलों की सुनवाई के लिए इक्कीसवीं शताब्दी आने तक बैठे रहना पड़ेगा। और दूसरा यह कि, जब आज़ादी को चोरी-छुपे ख़त्म करना आसान हो तो उसे बचा सकना मुश्किल होता है। निरंकुशता की ओर श्रीमती गांधी की समुद्र-यात्रा में न्यायाधीश थोड़े समय के लिए लंगर डालकर रोक सकते हैं, लेकिन अगर भारत के लोग विरोध की आवाज़ ख़ुद नहीं बुलन्द करेंगे तब अन्त में ये न्यायाधीश भी चुप होकर बैठ जायेंगे।

विरोध के इस स्वर को ढूंढना कठिन है। श्रीमती गांधी ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को विलुप्त आकांक्षाओं की कूड़े की टोकरी में तो फेंक ही दिया है, अन्य मामलों में भी उनका पंजा और ज़्यादा मज़बूत होता जा रहा है। इमरजेंसी शासन कुशलता व दक्षता का शासन है। अब कहीं कोई उपद्रव नहीं हो पाता, क्योंकि जो लोग उपद्रव करते थे उन्हें जेलों में बन्द किया जा चुका है। मुद्रा-स्फीति पर धीरे-धीरे नियंत्रण प्राप्त हो रहा है। काला बाज़ार करने वाले लोग संकट में हैं। नौकरशाही और ज़्यादा मेहनत से काम कर रही है। सफलता साधनों का औचित्य सिद्ध कर रही है और अब चुनाव भी कराया जा सकता है, ताकि उन्होंने जो कुछ किया है उसे सनातन रूप से नैतिकता प्राप्त हो जाये और तब शायद, उनके विदेशी आलोचक उन पर उँगली उठाना भी बन्द कर देंगे। तब हम सब-कुछ भूल जायेंगे (और यही सबसे बड़ा ख़तरा है) कि शान्ति सरकार द्वारा अत्याचार, बिना मुक़दमा चलाये जेल भेजने और सर्वत्र सभी समाचारपत्रों पर रोक लगाने से क़ायम हुई है। इस पृष्ठभूमि में चुनाव स्वाँग-भर होंगे। चुनाव-मंच से आर्थिक सफलताओं का दावा करते समय एक बहुत ही सीधा सवाल भुला दिया जायेगा कि क्या भ्रष्टाचार को रोकने के लिए पुलिस का शासन ज़रूरी था? चूंकि विरोध की कोई बात नहीं सुनी जायेगी, इसलिए चुनाव में जीत-ही-जीत नज़र आयेगी। और तब तक और कुछ नहीं तो न्यायाधीश भारतवासियों को सत्य की याद दिलाते रहेंगे। कुलदीप नय्यर ने कोई ग़लत काम नहीं किया, उन्होंने कोई प्रदर्शन नहीं किया, उन्होंने कोई ग़ैर-क़ानूनी पार्टी की सदस्यता को नहीं स्वीकार किया। वह बस निष्ठा के साथ अपना काम करते रहे जो निश्चय ही अपूर्व है। श्रीमती गांधी के दरबार का रोष उन पर फूट पड़ा। जहाँ पर बड़े-बड़े संघर्ष नहीं होते वहाँ छोटे-छोटे संघर्ष ही पर्दे को एक ओर हटा देते हैं।

इसके दूसरे ही दिन श्री शुक्ल के लिए प्रेस-क्लब में जल-पान का आयोजन था। यह संयोग था कि मैं और वह एक ही साथ वहाँ पहुँचे। मैंने उनसे हाथ मिलाया और मैं पत्रकारों की भीड़ में जा मिला। वहाँ मेरे दुबले हो जाने पर हँसी-मज़ाक हुआ—मेरा वज़न लगभग पाँच किलोग्राम घट गया था—लेकिन मैंने कहा कि मुझे इसके लिए कोई दुख नहीं था। श्री शुक्ल ने मुझे बुलाया और विश्वास दिलाते हुए कहा कि मेरी गिरफ़्तारी से उनका कोई संबंध नहीं था।

उन्होंने आगे कहा, "उन्होंने तुम्हारा दस लाख डालर का प्रचार किया है"। इससे निश्चय ही उनका आशय मेरी गिरफ़्तारी के बारे में विदेशों में प्रकाशित समाचारों से था।

कुछ घंटों के बाद हम एक-दूसरे से उलझ गये। किसी समाचारपत्र वाले ने उनसे पूछा कि नागरिक स्वतंत्रता के मामले क्यों दबाये जा रहे थे और सरकार ने क्यों समाचारपत्रों को ऐसे आदेश दिये कि वे इस बारे में कुछ भी न छापें? श्री शुक्ल प्रसंग समझ गये। उन्होंने कहा—"कुलदीप नय्यर का मामला राजनैतिक था।" मैं उठ खड़ा हुआ और मैंने इसका विरोध करते हुए कहा कि जब न्यायालय कह चुका है कि ऐसी कोई बात नहीं थी और यह कि सरकार ने मुझे अवैध तरीक़े से गिरफ़्तार किया था तब मंत्री महोदय को ऐसा नहीं कहना चाहिए। जब उन्होंने अपना आरोप दुहराया तो मैंने कहा—"या तो सिद्ध कीजिये या फिर मत कहिये। मैं आपकी या किसी और की बात सुनने को तैयार नहीं हूँ।"

प्रेस-क्लब की बैठक में श्री शुक्ल के खिलाफ़ काफ़ी गर्मागर्मी रही। मैं इससे उत्साहित होकर पत्रकारों से अलग-अलग इसलिए मिला, जिससे यह पता लगा सकूँ कि क्या ये लोग समाचारपत्रों पर से रोक उठा लेने के लिए एक बार फिर प्रस्ताव पास करने के लिए सहमत होंगे। मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि दो महीने पहले जो पत्रकार ऐसा करने के लिए इच्छुक थे उनमें से अब आधे दर्जन भी इसके लिए तैयार नहीं थे। वे डरे हुए थे।

वहाँ भय था। सभी पत्रकार भयभीत थे। कुछ थोड़े-से पत्रकार ही मेरे पास आये और मुझसे मिले। यहाँ तक कि मेरे कुछ घनिष्ठ मित्र और संबंधी भी मुझसे आँख चुराते थे। उन्हें मालूम था कि मेरे मकान पर चौबीसों घंटे निगरानी रखी जाती थी और जो भी आता उसका नाम और हुलिया, यहाँ तक कि कार का नम्बर भी, नोट किया जाता था। मुझे चिन्ता इस बात की थी कि इस विरोध के ढोंग को भी कैसे बनाये रखा जाये। मैं जेल के अपने साथियों की याद करने लगा। तभी मैंने शेख़ अब्दुल्ला से मिलने के लिए श्रीनगर जाने का इरादा बनाया।

श्रीनगर में मेरे आने की ख़बर सुनकर शेख मेरे होटल आये। उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और कहा, "तुम भी अब हाजी हो गये हो," अर्थात मैं भी जेल हो आया था। वह मुझे अपने घर ले गये। उन्होंने मुझसे हालात के बारे में ब्योरे-वार बातचीत की। वह विरोध पक्ष वालों, विशेषकर जयप्रकाश नारायण, से इस बात के लिए बहुत असन्तुष्ट थे कि उन्होंने बिना तैयारी किये आन्दोलन का आह्वान कर दिया था। अगर उनका बस चलता तो वह नज़रबंदों की सहायता के लिए सब-कुछ कर सकते थे, लेकिन उन्हें यह विश्वास नहीं था कि श्रीमती गांधी इस संबंध में उनकी किसी बात को सुनेंगी। शेख ने बताया कि कुछ दिनों पहले उन्होंने श्रीमती गांधी को सुझाव दिया था कि समझौते का कोई रास्ता ढूंढ़ निकाला जाना चाहिए, लेकिन वह सुनकर आग-बबूला हो गयी थीं। मैंने उनसे कहा कि इस समय जो लोग जेलों में बन्द हैं और जो बाहर हैं, सभी उनसे मदद चाहते हैं और चूँकि जब वह नज़रबंद थे तब जे० पी०-जैसे लोगों ने उनकी रिहाई की माँग की थी, इसलिए उन्हें भी नज़रबंदों को जेल से छोड़े जाने के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए। उन्होंने वचन दिया कि उनसे जो कुछ हो सकेगा, ज़रूर करेंगे, लेकिन उन्हें कोई ज़्यादा उम्मीद नहीं थी। शेख़ ने कहा, "अगर मैंने कुछ भी किया तो वह ऐसी व्यक्ति हैं जो मुझे भी तुरन्त जेल भेज देंगी।"

इमरजेंसी के बारे में शेख़ से किसी ऐसी बात को कहलवाना जिसे रिकार्ड में

लाया जा सके, बहुत ही मुश्किल काम था। उर्दू के दिलेर सम्पादक अहमद शमीम, जो उन दिनों शेख़ के विश्वासपात्र हुआ करते थे, और मैंने साथ बैठकर इन्टरव्यू की रिपोर्ट तैयार की, जिसे शेख़ ने प्रकाशित होने पर पढ़ा। इसका कुछ अंश उस विचार-विमर्श पर आश्रित था जो मैंने उनके साथ किया था। इस रिपोर्ट का आवश्यक अंश जैसा प्रकाशित हुआ, इस प्रकार था :

> शेख़ अब्दुल्ला ने मेरे साथ हुई एक भेंट-वार्ता में मुझसे कहा कि उन्होंने राज्य में 'समझौते और दोस्ती' का रास्ता चुना है और वह देश के सभी मामलों में इसी तरह के दृष्टिकोण को अपनाने का सुझाव देते हैं। उन्होंने कहा, "मेरे पास कोई बना-बनाया हल या फ़ार्मूला देने को नहीं है, लेकिन मुझे यक़ीन है कि हम ऐसा रास्ता ढूंढ़ सकते हैं जिससे लोकतंत्र को सही रास्ते पर वापस लाया जा सके।"
>
> श्री अब्दुल्ला बहुत धीरे-धीरे बोल रहे थे जैसे वह हर शब्द को तौलते जा रहे थे। उनसे मिलकर मुझे ऐसा लगा कि मैं ऐसे आदमी से मिला जो इस विषय पर कुछ न बोलना ही उचित समझता था।
>
> "मैं आपको एक बात बता सकता हूँ। प्रधानमंत्री ने मुझसे कभी नहीं कहा कि मैं इस मामले में कुछ करूँ। फिर भी, जो लोग समझौते को अच्छा समझते हैं उनके लिए मेरी सेवाएँ हमेशा हाज़िर हैं।"
>
> उन्होंने बहुत-से सवालों को यूँ ही टाल दिया और यह कहकर विषय बन्द कर दिया, "जो कुछ होना था, हो गया। कभी कोई दिन ऐसा आयेगा, जब इतिहासकार उसके कारणों की छानबीन करेंगे और किसी को दोषी बतायेंगे। इस समय हम लोगों को चाहिए कि हम अपनी संस्थाओं को मज़बूत करने में जुट जायें ताकि फिर से हम न गड़बड़ायें।"

मैं श्रीनगर से खुश होकर नहीं लौटा, लेकिन शमीम और मुझे, दोनों को इस बात का पूरा यक़ीन था कि अगर शेख़ ने इमरजेंसी के ख़िलाफ़ कुछ भी खुलकर किया तो श्रीमती गांधी उनको फिर जेल भेजने का साहस नहीं करेंगी। शेख़ के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का मतलब होगा कि विरोध की बुझी हुई आग को फिर से सुलगाना। लेकिन शेख़ सोचते थे कि वह कुछ बोले तो बिला वजह बात बढ़ जायेगी और जेल में रहने के बजाय बाहर रहकर ज़्यादा अच्छी तरह से देश की सेवा कर रहे थे।

श्रीनगर से मैं मद्रास गया और तत्कालीन मुख्यमंत्री करुणानिधि से मिला। उन्होंने इमरजेंसी और श्रीमती गांधी की बड़ी आलोचना की। उन्होंने श्रीमती गांधी को भरा-पूरा तानाशाह बताया। लेकिन उन्होंने यह नहीं सोचा कि वह तमिलनाडु के शासन को अपने हाथ में ले लेंगी। मैंने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने पार्टी को हर तरह की स्थिति का सामना करने के लिए तैयार कर लिया है और अगर श्रीमती गांधी ने तमिलनाडु पर राष्ट्रपति शासन लागू किया तब सत्याग्रह छेड़ने के लिए क्या उन्होंने सदस्य बना लिये हैं? उन्होंने बताया कि वह आवश्यक तैयारियाँ कर रहे हैं।[1]

1. जब तमिलनाडु का शासन केन्द्र द्वारा अपने हाथ में लिया गया तब कोई भी आंदोलन नहीं हुआ। नयी दिल्ली से तीन अफ़सर हवाई जहाज़ से गये और उन्होंने बिना किसी हुज्जत के अपना काम पूरा कर दिया।

मैंने करुणानिधि से पूछा कि क्या वह गुप्त रूप से समाचारपत्र निकालने के लिए तैयार हैं। उस समय गुप्त रूप से विभिन्न क्षेत्रों से जो भी समाचारपत्र प्रकाशित और प्रसारित होते थे वह मुख्यत: भावना-प्रधान होते थे, उनमें तथ्यों और पुष्ट तर्कों का अभाव रहता था। उन्होंने कहा कि गुप्त साहित्य का प्रकाशन तमिलनाडु में तो हो सकता है, लेकिन जहाँ तक उसे डाक द्वारा बाहर भेजने का प्रश्न है, वह प्रदेश से बाहर किया जाना चाहिए। वह इस काम की ज़िम्मेदारी को स्वयं लेने या तमिलनाडु में किसी और को देने के लिए राज़ी नहीं हुए—वह स्वयं भी कोई झंझट नहीं मोल लेना चाहते थे।

इसके बाद मैं लोगों से मिलने कोचीन गया। मुझे वहाँ कुछ सी० पी० एम० के लोग मिले। उस समय नम्बूदिरीपाद जेल से बाहर थे। वे लोग भारत में और विदेशों में चल रहे 'आंदोलन' के बारे में कुछ प्रामाणिक सूचना चाहते थे। मैंने उन्हें सबसे ज्यादा आशापूर्ण पाया। उन्होंने बताया कि वे कार्यकर्ता तैयार कर रहे हैं लेकिन चूँकि इमरजेंसी अचानक लग गयी, उन्हें कुछ करने में देर लगेगी। उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे कुछ दिनों बाद आंदोलन छेड़ेंगे।

जब मैं दिल्ली वापस आया तब बरार मुझे हवाई अड्डे पर मिला, जिसने मुझे गिरफ़्तार किया था। मैंने समझा कि खुफ़िया विभाग को मेरी कार्रवाइयों का पूरा ज्ञान हो गया है और एक बार फिर मुझे गिरफ़्तार करने का आदेश दिया गया होगा। लेकिन बरार ने मुझे मेरे मामले में हाई कोर्ट द्वारा की गयी आलोचना के खिलाफ़ अफ़सरों का एक पिटीशन दिया। इन्होंने सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की थी और पिटीशन की एक प्रति पर मुझसे दस्तखत करवाना चाहते थे। मैंने इस मामले में आगे कार्रवाई नहीं की।

दिल्ली में संवैधानिक संशोधनों का भूत सवार था। संविधान में पूरी तरह से संशोधन करने के लिए, जिससे वह देश की सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति और अधिक उत्तरदायी बन सके, स्वर्णसिंह की अध्यक्षता में एक उच्च-स्तरीय समिति थी। श्रीमती गांधी ने कहा था कि संसदीय प्रणाली बनी रहेगी और संविधान में केवल 'कुछ ही संशोधन' किये जायेंगे, लेकिन लोगों की शंकाएँ नहीं दूर हुई थीं। लोगों की, ख़ास तौर से बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों की, माँग थी कि जब तक नये चुनाव नहीं हो जाते हैं संविधान में कोई भी संशोधन न किया जाये। सुप्रीम कोर्ट बार एसोसियेशन ने कहा था कि इमरजेंसी के दौरान कोई भी संवैधानिक संशोधन नहीं किया जाना चाहिए। ग़ैर-कम्युनिस्ट विरोधी पक्ष के लोगों और सी० पी० एम० ने संवैधानिक संशोधन विषयक कांग्रेस पार्टी की समिति के साथ विचार-विमर्श करने से इनकार कर दिया था और आवश्यक संशोधनों को पारित करने के लिए विशेष संसदीय अधिवेशन का बहिष्कार किया था।

इस बात के लिए गंभीर प्रयास किये जा रहे थे कि 42वें संशोधन विधेयक को, जिसका उद्देश्य संविधान के लगभग साठ अनुच्छेदों में संशोधन करना था, दो-तिहाई का बहुमत न मिलने दिया जाये। शायद जगजीवनराम का विवेक उन्हें कचोट रहा था, क्योंकि उन्होंने बहुगुणा को दिल्ली आने का सन्देश भेजा था। बहुगुणा तुरंत दिल्ली आये। उन्होंने कांग्रेस के उन सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करना शुरू कर दिया जो संशोधन विधेयक के खिलाफ़ अपना मत देने को तैयार हो सकते थे। उन्होंने अधिकांश को इस विधेयक से असन्तुष्ट देखा, लेकिन लोग खुल कर विरोध करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने विरोधी दलों से सम्पर्क किया और उनसे संसद के सत्र में उपस्थित रहने के लिए कहा, जिससे कांग्रेस के कुछ

सदस्यों की सहायता से इस विधेयक को रोका जा सके। विरोधी पक्ष के कुछ सदस्य दिल्ली से बाहर थे। ऐसे लोगों को हवाई जहाज़ से दिल्ली लाने का इन्तज़ाम किया गया। यह दो दिन तक चला। सरकार को इन कार्रवाइयों की कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन श्रीमती गांधी को इसका पता चल गया। जिन कांग्रेसी सदस्यों ने इस विधेयक के ख़िलाफ़ मत देने का वचन दिया था जब उनको पता चला कि श्रीमती गांधी को यह मालूम हो गया है तब इनमें से अधिकांश पीछे हट गये। बहुगुणा चालीस मत भी इकट्ठे नहीं कर पाये। जब संशोधन विधेयक पर मतदान का दिन आया तो यह प्रयास छोड़ दिया गया कि उसे दो-तिहाई मत न मिलें। संसद ने उसे 4 मतों के मुक़ाबिले 366 मतों से पारित कर दिया।

मैंने अपना 'बिट्वीन द लाइन्स' कॉलम लिखना शुरू कर दिया। और उसमें सचमुच ही पर्दे के पीछे की बात थी। सबसे पहला लेख मैंने मदर टेरेसा के मिशन पर लिखा। उसका एक अंश प्रासंगिक है—"उनकी अपील दिल के प्रति है। बिन चाहे लोग भूखे हैं—भूख भोजन की नहीं बल्कि शान्ति के लिए है, वह प्यासे हैं—यह प्यास पानी के लिए नहीं बल्कि शान्ति के लिए है। वे नंगे हैं—उन्हें कपड़ों की नहीं बल्कि प्रतिष्ठा की चाह है; वे गृह-विहीन हैं—उन्हें घर नहीं बल्कि सद्-भाव की ज़रूरत है।"

कुछ हफ़्ते बाद मैंने श्रीमती गांधी के इस कथन के बारे में लिखा कि वह विरोधी पार्टियों से बातचीत करने के लिए तैयार हैं। मैंने लिखा कि उन लोगों से बातचीत करने की ज़रूरत है जो जेलों में बंद हैं। मैंने आग्रह किया कि उनसे बातचीत करनी हो तो नज़रबंदों को रिहा करना ज़रूरी है। रिहाई से अनुकूल वातावरण बन जायेगा। इस दिशा में कुछ भी किया जाये तो जे०पी० का सहयोग ज़रूरी होगा, क्योंकि उनका विरोधी दल पर बहुत असर है।

बाद में पवनार आश्रम में आचार्य विनोबा भावे की विद्व-मंडली की बैठक के बारे में लिखते हुए मैंने यह दलील पेश की कि किसी भी राष्ट्र की खुशहाली के लिए और उसकी सुरक्षा के लिए लोकतंत्रीय पद्धतियों व संस्थाओं की ज़रूरत है। नौ अगस्त को 'भारत छोड़ो' आंदोलन की जयंती के अवसर पर मैंने लिखा कि "उस संघर्ष का इतिहास जानना तो ज़रूरी है ही, नौजवानों के लिए यह भी जानना चाहिए कि उसके पीछे क्या भावना काम कर रही थी। वह शासकों व शासितों के बीच टकराव-मात्र नहीं था। वह तो तानाशाही पद्धतियों व स्वतंत्र इच्छा के बीच संघर्ष था, तानाशाही व लोकतंत्र का टकराव था। आज भी नौजवानों को इस बारे में सचेत रहना चाहिए। लोगों को अपनी बात कहने का अधिकार रहना चाहिए। राजतंत्र या एकतंत्र की अपेक्षा जनतंत्र में स्वतंत्रता के लिए ज़्यादा ख़तरा रहता है।"

मेरे बहुत-से ऐसे लेख शुक्ल, संजय और श्रीमती गांधी को मिल चुके थे, जो उन्हें रुचिकर नहीं थे और मुझे गिरफ़्तार करने का एक बार फिर विचार किया जा रहा था। जन-संचार साधनों के अध्यक्षों की एक बैठक में शुक्ल ने मेरा नाम भी लिया था और कहा था कि मैं "एक साँप था जिसे कुचल देना चाहिए था।"

मेरी नज़रबंदी के लिए कारणों की रूप-रेखा तैयार करने के लिए एक फ़ाइल खोली गयी। लेकिन जब यह महसूस हुआ कि मेरी फिर से गिरफ़्तारी से ख़राब प्रचार होना शुरू हो जायेगा तब इस विचार को यों ही छोड़ दिया गया।

इसी बीच इंडियन एक्सप्रेस पर यह दबाव डाला गया कि वह मुझे बर्ख़ास्त कर दें। एक्सप्रेस ग्रुप ऑफ़ न्यूज़पेपर्स के प्रोप्राइटर, रामनाथ गोयनका से कह

दिया गया था कि "आगे बातचीत इस शर्त पर शुरू की जायेगी कि आर० एन० गोयनका को चाहिए कि वह इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप के एडीटर-इन-चीफ़ की और एक्सप्रेस न्यूज़ सर्विस के एडीटर श्री कुलदीप नय्यर की सेवाएँ तुरन्त ख़त्म कर दें।"[1]

सरकार एक्सप्रेस ग्रुप के सारे अख़बारों को अपने "पूरे नियंत्रण" में ले लेना चाहती थी—उन्हें ख़रीदना नहीं चाहती थी। गोयनका को यह भी बता दिया गया था कि "अगर उन लोगों ने अपने अख़बारों का नियंत्रण सरकार को नहीं दिया तब मीसा क़ानून के तहत उनको, उनके लड़के भगवानदास और बहू सरोज को नज़रबन्द करने का निश्चय कर लिया गया है।"

गोयनका राज़ी नहीं हुए। उन्होंने न तो मुझे ही निकाला और न अपने अख़बारों पर से नियंत्रण ही हटाया। जब उन्हें हार्ट अटैक हुआ और वह कलकत्ता में पड़े हुए थे तब सरकार ने उनके लड़के भगवानदास को धमका कर मुलगावकर को रिटायर करवा दिया। उन दिनों हिन्दुस्तान टाइम्स पब्लिकेशंस के चेयरमैन के० के० बिड़ला, इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप ऑफ़ पेपर्स के भी चेयरमैन थे। गोयनका ने बिड़ला को चेयरमैन बनाना तब स्वीकार किया जब उन्हें बताया गया कि अगर वह बिड़ला की नियुक्ति से सहमत नहीं होते तो "प्रधानमंत्री उनकी असहमति को सद्भावना-विहीन कार्य समझेंगी।"

एक्सप्रेस के बोर्ड में ग्यारह डाइरेक्टर थे। सरकार चाहती थी कि इनमें से छह उसके नामज़द व्यक्ति हों। नामों पर कई दिनों तक बातचीत चलती रही। गोयनका को यह बताया गया कि "वह कम-से-कम कुलदीप नय्यर को नौकरी से बर्ख़ास्त कर दें, जिससे यह सिद्ध हो सके कि वह इस बातचीत में निष्ठावान हैं।" उन्होंने इसका यह जवाब दिया कि चूँकि नय्यर पर वर्किंग जर्नलिस्ट एक्ट लागू होता है जिससे सेवा काल की अवधि निश्चित होती है, इसलिए उन्हें ऐसा करना असंभव है।

गोयनका ने यह भी कहा कि वह अख़बारों पर से अपना नियंत्रण नहीं हटायेंगे और वह इस मामले को कोर्ट में ले जायेंगे। जब शुक्ल ने देखा कि गोयनका नहीं दब रहे हैं तब उन्होंने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि सरकार जिन छह डाइरेक्टरों को नामज़द करेगी वह "निष्पक्ष व्यक्ति" होंगे।

सरकार ने नामों की जो सूची पेश की उनमें ये लोग शामिल थे: के० के० बिड़ला (चेयरमैन); पी० आर० रामकृष्णन; विनय के० शाह; ए० के० एंथॅनी, केरल कांग्रेस के अध्यक्ष या स्टीफ़ेन एम० पी०; शमसुद्दीन; सत्यनारायण, एम० पी०; टी० पंचानन, एम० एल० सी०; किपिला वेंकटेश्वर; राव और रामन, पहले इलस्ट्रेटेड वीकली से संबद्ध।

गोयनका ने बीस आदमियों की सूची पेश की: जगमोहन रेड्डी, रिटायर्ड जज सुप्रीम कोर्ट, वाइस-चेयरमैन, उस्मानिया यूनिवर्सिटी; अलगिरि स्वामी, रिटायर्ड जज, सुप्रीम कोर्ट; एस० रंगनाथन एम० पी०, रिटायर्ड ऑडिटर-जनरल; टी० एस० श्रीनिवासन, डाइरेक्टर, टी० वी० एस०, मद्रास; श्रेयांसप्रसाद जैन, उद्योगपति, बम्बई; भरतराम, उद्योगपति, दिल्ली; आर०के० पोद्दार, एम० पी०, उद्योगपति, कलकत्ता; अरविन्द नरोत्तमलाल, लालभाई ग्रुप, अहमदाबाद;

---

1. यह उस हलफ़नामे का एक अंश है जो सरकार द्वारा मालिकों को परेशान करने व अख़बार बन्द कराने की कोशिशों के ख़िलाफ़ बंबई व दिल्ली हाई कोर्ट में दायर किया गया था।

रामकृष्ण वजाज, उद्योगपति, वम्बई; जे० वी० दादाचनजी, एडवोकेट, दिल्ली; मोट्टू सत्यनारायण, भूतपूर्व एम०पी०, अवकाश-प्राप्त मंत्री, हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास; थानु भाई, सॉलिसिटर, वम्बई; द्वारकानाथ रेड्डी, उद्योगपति, चित्तूर; वी० एल० दत्त, के० सी० पी० के उद्योगपति, मद्रास; इंडिया सीमेंट्स मद्रास के के० एस० नारायणन; इंडिया सीमेंट्स, मद्रास के एल० एल० नारायणन; एस० एम० रामकृष्ण राव, उद्योगपति, बेंगलूर; जी० के० सुन्दरवाडिवेलु, रिटायर्ड, वाइस-चांसलर, मद्रास यूनिवर्सिटी, मद्रास; और रामनाथ पोद्दार, उद्योगपति, वम्बई।

वहुत विचार-विमर्श के वाद जो नाम तय हुए थे, वह थे : के० के० बिड़ला (चेयरमैन), पी० ए० रामकृष्णन, विनय के० शाह, ए० के० एंथॅनी, कमलनाथ और जी० डी० कोठारी।

इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप वोर्ड द्वारा जो पहला संकल्प पारित किया गया वह यह था : "संकल्प किया गया कि चेयरमैन यह सुनिश्चित करेगा कि कम्पनी की सम्पादकीय नीति का, जैसी कि इस बैठक में वोर्ड ऑफ़ डाइरेक्टर्स द्वारा निश्चित की गयी है, कठोरता से समर्थन और पालन किया जाये और इसका कोई उल्लंघन नहीं हो। इस उद्देश्य के लिए, सम्पादक और अन्य सम्पादकीय कर्मचारियों को आदेश दिया जाता है कि वे समय-समय पर चेयरमैन को रिपोर्ट पेश किया करें और इस मामले में उनका मार्ग-दर्शन और सलाह प्राप्त करें।"

यह संकल्प हम सभी लोगों को वताया गया। मुलगावकर के न रहने पर अजित भट्टाचार्य कार्यवाहक-सम्पादक थे। नये वोर्ड के वनने के वाद सरकार को वह तरीक़ा नहीं पसंद था जिस तरह से एक्सप्रेस का काम हो रहा था, क्योंकि सेंसरशिप के दायरे में रहकर भी हम इसे प्रशासन-विरोधी और इमरजेंसी-विरोधी समाचारपत्र के रूप में निकाल रहे थे। सरकार का रोष अव अजित भट्टाचार्य के ऊपर आ पड़ा और यह कहा गया कि इनको गंगटोक स्थानान्तरित कर दिया जाये जो काफ़ी दूर एक एकान्त जगह थी। गोयनका ने कहा कि जो समझौता हुआ है उसमें सम्पादकीय स्टाफ़ के किसी भी कर्मचारी की नियुक्ति, वर्ख़ास्तगी या तवादले का प्रश्न निहित नहीं है। शुक्ल ने कहा कि चेयरमैन होने के नाते बिड़ला को इस संबंध में आवश्यक अधिकार प्राप्त हैं।

जव शुक्ल ने देखा कि गोयनका नहीं मान रहे हैं तव उन्होंने इंडियन एक्सप्रेस के सभी आठ संस्करणों पर पूर्ण सेंसरशिप लागू कर दी। इसके लिए पहले से कोई चेतावनी नहीं दी गयी थी। यह आदेश एक दिन अचानक दिया गया (16 अगस्त 1976 को)। सेंसर के अधिकारी अख़वार के पृष्ठों की रिलीज़ को सवेरे 7.30 तक रोका करते, जिससे यह सुनिश्चित हो जाये कि एक्सप्रेस अन्य अखवारों के साथ न तो छप सके और न ही इसका वितरण हो सके।

गोयनका ने अपनी शिकायत को दूर करने के लिए वम्बई हाईकोर्ट में एक याचिका दी। कोर्ट ने आदेश दिया कि उसके पृष्ठों को रिलीज़ करने में देरी नहीं की जानी चाहिए और यथासंभव जल्दी-से-जल्दी रिलीज़ कर दिया जाना चाहिए। आठ सितम्बर से सभी संस्करण लगभग समय पर निकलने लगे। अव तक हम अपनी लड़ाई को काफ़ी अच्छी तरह जीतते जा रहे थे।

जव यह मामला इस प्रकार चलता जा रहा था, एक्सप्रेस ग्रुप को केन्द्र और राज्य सरकारों के सभी विज्ञापनों का दिया जाना वन्द कर दिया गया। श्रव्य-दृश्य प्रचार के डाइरेक्टर ने सभी सरकारी विभागों, निगमों, औद्योगिक यूनिटों

तथा अन्य ऐसी ही संस्थाओं को परामर्श देते हुए एक गुप्त नोट (डी० आर०/1050/76) भेजा कि "इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप द्वारा प्रकाशित या उससे संबद्ध किसी भी समाचारपत्र को कोई भी विज्ञापन नहीं दिया जाये।" इस नोट के साथ समाचारपत्रों की सूची[1] भी संलग्न की गयी और इस संबंध में की गयी कार्रवाई को 'शीघ्र सूचित' करने को कहा गया था। प्राइवेट संस्थाओं को कहा गया और धमकी दी गयी कि किसी भी एक्सप्रेस प्रकाशन में कोई भी विज्ञापन न दें। इससे आमदनी बड़ी तेज़ी से गिरने लगी।

दिल्ली में हम लोगों को तंग करने के लिए प्रशासन द्वारा कुछ और कार्रवाई की गयी। तीस सितम्बर को हमारे प्रेस की बिजली बिना पूर्व-सूचना दिये काट दी गयी। हमने दिल्ली हाईकोर्ट में एक याचिका दी, जिसने बिजली को पुन: चालू करने के लिए आदेश दिये। कुछ दिनों बाद, एक दूसरी मुसीबत आयी। दिल्ली नगर निगम के अफ़सर पुलिस को लेकर हमारे प्रेस आये और उसे ज़बरदस्ती सील कर दिया। दिल्ली हाईकोर्ट में फिर एक याचिका दायर कर दी गयी। दिल्ली नगर निगम के अफ़सरों ने प्रेस पर से सील तो हटा दी, लेकिन वह 1,82,000 रुपये की क़ीमत की एयरकंडीशनिंग मशीन और बूस्टर पम्पों को कुर्क करने का एक आदेश ले आये। निगम ने आरोप लगाया था कि उसका 8,00,000 रुपया बाक़ी है; इस राशि पर विवाद चल रहा था और हमारे समाचारपत्र को स्थगन का आदेश पहले ही मिल चुका था।

ऊपर से बैंकों ने कसना शुरू कर दिया। पंजाब नेशनल बैंक एक्सप्रेस का मुख्य बैंकर था, लेकिन पहले तो उसने क़र्ज़ देना कम किया और फिर बिलकुल बंद कर दिया।

यह एक बेजोड़ लड़ाई थी। सरकार कठोर थी, उसकी शक्तियाँ असीम थीं जब कि एक समाचारपत्र को यह अधिकार नहीं प्राप्त था कि वह अपनी बात भी कह सकता। सेंसर के अफ़सर यह निर्णय करते थे कि कौन-सी चीज़ प्रकाशित की जा सकती है।

लेकिन विदेशी समाचारपत्रों में इन अत्याचारों की छोटी-से-छोटी खबर भी छप जाती थी, जो इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप के अखबारों पर किये जा रहे थे। सरकार इस प्रचार से चिंतित हो उठी और कुछ दिनों के लिए हमें छोड़ दिया गया। उसने तब भी कोई कार्रवाई नहीं की जब गोयनका ने बोर्ड का पुनर्गठन किया और उन सभी लोगों के नाम निकाल दिये जो सरकार द्वारा नामज़द किये गये थे। शुक्ल और उनके मालिकों को यह आशा थी कि एक ओर बैंक से धन का मिलना बन्द करने और दूसरी ओर विज्ञापनों के मिलने पर रोक लगाने से अखबार का निकलना बन्द हो जायेगा।

यह एक खुला रहस्य था कि सरकार के कठोर रवैये के पीछे श्रीमती गांधी का लड़का संजय गांधी था। सरकार की ओर से जो लोग समझौते की बात कर रहे थे वे उसको "सुपर प्रधानमंत्री" कहा करते थे, जो एक्सप्रेस के मामले में बड़े-बड़े निर्णय लिया करता था। हमको मालूम था कि उसने पहले मुलगावकर को हटा उसकी जगह बंबई के एक अखबार के सहायक-संपादक को लाने की कोशिश

1. इंडियन एक्सप्रेस, संडे स्टैंडर्ड, स्क्रीन, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, लोकसत्ता, रविवारीय लोकसत्ता (मराठी), रविवारीय लोकसत्ता (गुजराती), दिनमणि, आंध्र प्रभा (दैनिक), आंध्र प्रभा (साप्ताहिक), कन्नड़ प्रभा, नूतन गुजरात, रंग-तरंग, दिनमणि कादिर, जनसत्ता, चाँदनी।

की थी और फिर इंडियन एक्सप्रेस के एडीटर-इन-चीफ़ को हटा दिल्ली के एक रिपोर्टर को उसकी जगह नियुक्त करने की कोशिश की थी। आखिर में संजय एक दूसरे एक्सप्रेस-प्रकाशन फ़ाइनेंशियल एक्सप्रेस के सम्पादक वी० के० नरसिंहन की नियुक्ति पर सहमत हो गया था। लेकिन नरसिंहन को मिला लेना कोई सहज काम नहीं था।

नरसिंहन ने मुझे लिखने की पूरी आज़ादी दे रखी थी, लेकिन वह मेरे ऊपर पितृवत दृष्टि रखते थे कि कहीं मैं या अख़बार किसी मुसीबत में न फँस जाये। उनको चीफ़ सेंसर ऑफ़िस से दो या तीन बार चेतावनी भी मिली, लेकिन वह कोई गंभीर बात नहीं थी।

मैंने नज़रबंदों की रिहाई के लिए कोशिश शुरू की और कुछ बातचीत भी की। मेरा मन बार-बार उनकी तरफ़ चला जाता था जो तिहाड़ जेल में बन्द थे। मैं सरकार के मामूली से कथन को चुन लेता और बातचीत के लिए ठोस सुझाव देता। ऐसा करते समय मैं लोकतंत्र पर बल देता था, जिससे मैं यह बता सकूँ कि जो कुछ व्यवहार में हो रहा था वह तानाशाही था।

नेहरू की बरसी पर मैंने लिखा था : "उन्होंने भारत के और विश्व के सामने जो समस्या रखी वह यह थी कि लोकतंत्र को समाजवाद के साथ किस प्रकार जोड़ा जाये, किस प्रकार संघर्ष के बजाय परस्पर सहमति प्राप्त करने की प्रक्रिया के द्वारा समानता उपलब्ध की जाये। वह समाज को छोटे-छोटे खण्डों में नहीं बाँटना चाहते थे और न यही चाहते थे कि लोग छोटी-छोटी बातों में अपने को भूल जायें।"

जब ब्रह्मानंद रेड्डी ने यह कहा कि इमरजेंसी की घोषणा के पीछे जो उद्देश्य थे वे लगभग पूरे हो गये हैं, तो मैंने लिखा कि फिर नरमी लाने की प्रक्रिया क्यों नहीं शुरू की जाती ? मैंने दलील दी थी : "इमरजेंसी की परिस्थितियों में रहने से समाज को जो ख़तरा है वह यह कि नौकरशाही ज़्यादा-से-ज़्यादा शक्ति ग्रहण करती जाती है और वह मानकों, विनियमों और संस्थाओं का कम-से-कम ख़याल रखने लगती है।"

बातचीत शुरू होने के कोई लक्षण नज़र नहीं आ रहे थे। श्रीमती गांधी ने दो शर्तें रखी थीं : पहली, विरोधी दल के लोग हिंसा का रास्ता छोड़ दें और दूसरी, वह रुकावट डालने वाली चालें छोड़ दें। लेकिन इसका कोई अर्थ नहीं था, क्योंकि सरकार का कट्टर-से-कट्टर विरोधी भी इन शर्तों का विरोध नहीं कर रहा था। विरोधी दल के जो एकाध नेता जेलों के बाहर थे वे यह बात रिकार्ड के तौर पर कहने को तैयार थे कि वे न तो हिंसा में विश्वास करते थे और न रुकावट पैदा करने में ही। श्रीमती गांधी के समर्थक कहते थे कि यह कहना मात्र काफ़ी नहीं है। वे यह भी नहीं बताते थे कि विरोधी दल के लोग ऐसा कौन-सा काम करें जिससे प्रधानमंत्री की शर्त पूरी हो सके।

जे० पी० स्वयं श्रीमती गांधी को यह विश्वास दिलाने को तैयार थे कि वह न तो हिंसा में विश्वास करते हैं और न तोड़-फ़ोड़ में ही। लेकिन श्रीमती गांधी की कोशिश यही रही कि हर चीज़ को अस्पष्ट रखा जाये जिससे वह इमरजेंसी जारी रख सकें और साथ ही लोगों के मन पर यह प्रभाव डालती रहें कि वह इमरजेंसी को उठा लेने के पक्ष में हैं, बशर्ते विरोधी दल सही तरीक़े से अपनी भूमिका निभाने के लिए राज़ी हों।

हर आदमी देख रहा था कि इमरजेंसी जारी रखने के लिए या कम-से-कम

हज़ारों लोगों को बिना मुक़दमा चलाये जेलों में बन्द रखने के लिए श्रीमती गांधी की दलीलों का कोई असर नहीं पड़ रहा था। यहाँ तक कि कांग्रेसी भी खुश नहीं थे और बहुत-से लोग निजी तौर पर आलोचक बन गये थे। उनका गुस्सा मुख्यतः संजय गांधी और बंसीलाल के प्रति था और लोगों की आम तौर पर यह धारणा बन गयी थी कि यही दोनों खलनायक हैं। कुछ यह भी कहा करते थे कि बंसीलाल एक-न-एक दिन प्रधानमंत्री बनना चाहता है।

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को भी अब इमरजेंसी जारी रहने को उचित ठहराना मुश्किल हो रहा था। जिस दिन से इमरजेंसी लागू हुई थी, कम्युनिस्ट पार्टी श्रीमती गांधी का समर्थन करती आ रही थी। 1969 में कांग्रेस के दो टुकड़े होने के बाद, पहली बार श्रीमती गांधी ने इस पार्टी का नाम लेकर आलोचना की। उन्होंने इस पर यह आरोप भी लगाया कि यह पार्टी कांग्रेस के और उन लोगों के ख़िलाफ़, जिन्होंने 'भारत छोड़ो' की लड़ाई लड़ी थी, अँग्रेजों से जा मिली थी।

उन्होंने यह भी कहा कि संजय की जो भी आलोचना की जाती थी वह उनकी आलोचना थी, क्योंकि वह तो "एक मामूली व्यक्ति" है।

सी० पी० आई० ने संजय, बंसीलाल या दूसरे ऐसे लोगों की जो आलोचना की थी, यह उसका जवाब था। पार्टी के महासचिव राजेश्वर राव ने कहा था कि कांग्रेस-पार्टी का दोष यह है कि उसके अन्दर ही "प्रतिक्रियावादी कॉकस" घर कर गया है। लगभग आधे दर्जन कांग्रेसी संसद-सदस्यों ने तुरंत इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि सी० पी० आई० खुद एक सर्वसत्तात्मक और प्रतिक्रियावादी कॉकस के सिवा कुछ नहीं है।

इन मतभेदों को दूर करने की कुछ कोशिश की गयी और राजेश्वर राव ने समझौतापूर्ण एक वक्तव्य भी दिया। लेकिन स्पष्ट ही यह कारगर नहीं हुआ।

लेकिन कांग्रेस के विभाजन के बाद की स्थिति अब नहीं रही थी। तब तो कम्युनिस्ट कांग्रेस पार्टी को "निहित स्वार्थों" से निबटने के लिए उसे सहारा दे रहे थे। उनके अनुसार वाम-मार्ग और दक्षिण-मार्ग के बीच ध्रुवीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी और कांग्रेस को पूर्ण समर्थन देने में उन्हें कोई संकोच नहीं था।

उन दिनों मैं आल-इंडिया उर्दू एडीटर्स कांफ्रेंस के संबंध में कलकत्ता में था। मैं इसका संस्थापक-अध्यक्ष था। चूंकि मैंने पत्रकारिता का अपना व्यवसाय एक उर्दू रिसाले से शुरू किया था, इसलिए मैं जानता था कि उर्दू के पत्रों को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

मुझे यह नहीं मालूम था कि पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर राय, जो दिन-रात इमरजेंसी लागू करने के लिए श्रीमती गांधी का गुणगान करते रहते थे, मुझे पसंद नहीं करते। लेकिन वह कुछ कर नहीं सकते थे, क्योंकि कांफ्रेंस का संस्थापक-अध्यक्ष होने के नाते मैं उसकी केन्द्रीय-समिति का सदस्य था।

सम्मेलन का उद्घाटन शेख़ अब्दुल्ला को करना था। वह अभी तक नहीं आये थे और न राय आये थे। राय आये तो उन्होंने मुझे अगली पंक्ति में न बैठने के लिए कहा। मैंने जवाब दिया कि मैं संस्थापक-अध्यक्ष हूँ। वह चुप रहे, लेकिन नाराज़ होकर मेरी बग़ल वाली कुर्सी से उठकर दूर चले गये।

खुफ़िया का एक आदमी मेरे पीछे बराबर लगा रहा और सरकार ने मुझ पर नज़र रखी कि मैं क्या कर रहा था और किससे मिल रहा था। मैं उद्घाटन होने के बाद वहाँ से तुरन्त चला गया।

मैं जे० पी० से मिलने गया, जो तब तक रिहा कर दिये गये थे। उन्हें श्रीमती

गांधी की तानाशाही जल्दी खत्म होती या कोई बातचीत शुरू होती नज़र नहीं आ रही थी। वह एक ऐसे आदमी की तरह देख रहे थे जिसे यह नहीं मालूम था कि घटनाएँ क्या रूप ले लेंगी। लेकिन उन्हें यह पूरा यक़ीन था कि तानाशाही किसी-न-किसी दिन खत्म ज़रूर होगी। और वह जनता की प्रतिक्रिया के प्रति भी ज़्यादा निराश नहीं थे। उन्होंने कहा कि आखिरकार एक लाख से ज़्यादा लोग जेल गये थे। 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन सहित किसी भी कांग्रेसी आंदोलन में जितने लोग जेल गये थे, उनसे यह संख्या कहीं ज़्यादा थी।

उन्होंने वकीलों और न्यायपालिका को प्रथम स्थान दिया और पत्रकारों और समाचारपत्रों को सबसे निचला स्थान दिया। उन्हें आश्चर्य था कि जो लेखक हमेशा सिद्धान्त बघारते थे वह किसतरह दब गये या बिलकुल ही चुप हो गये थे।

जे० पी० ने मुझे बताया कि चरणसिंह ने उस आंदोलन को, जो श्रीमती गांधी के खिलाफ़ शुरू होना था, बिना शर्त वापस ले लेने के लिए कहा था। सच बात तो यह थी कि आंदोलन शुरू ही नहीं हुआ, क्योंकि सभी नेता योजना बनाने के पहले ही नज़रबंद कर लिये गये थे।

जे० पी० ने कहा कि सवाल यह नहीं है कि आंदोलन शुरू हुआ या नहीं। सवाल यह है कि उसके वापस लिये जाने का असर क्या होगा। लोग इसका वापस लिया जाना कमज़ोरी की निशानी समझेंगे। भले ही टिमटिमाती लौ हो, उसे बुझा देने के लिए आने वाली पीढ़ियाँ उनको दोषी ठहरायेंगी—और यह वह नहीं चाहते थे।

बहुत ज़्यादा लोग जे० पी० से मिलने नहीं जाते थे, क्योंकि उनके नाम नोट कर लिये जाते और नयी दिल्ली को सूचित कर दिये जाते थे। कुछ लोगों को तो भेंट करने के बाद तंग भी किया जाता था।

लेकिन चरणसिंह ही अकेले नहीं थे, जिन्होंने आंदोलन को वापस लेने को कहा था। उड़ीसा से हरेकृष्ण मेहताब ने जे० पी० को "बिना शर्त घोषणा" करने के लिए कहा था कि आंदोलन वापस ले लिया गया है। मैंने लिखा था, "मुख्य बात यह है कि देश में सामान्य स्थिति आ जाये, जिसका निश्चय ही अर्थ है कि इमरजेंसी वापस ली जाये, नज़रबंदों की रिहाई की जाये और समाचारपत्रों पर लगी रोक हटा दी जाये। अगर यह उद्देश्य पूरे हो सकते हैं तब जे० पी० को इसमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि वह विधिवत आंदोलन को वापस ले लें।"

सरकार चरणसिंह और मेहताब-जैसे लोगों की माँग को उनकी कमज़ोरी के लक्षण समझ बैठी। उसे विश्वास हो गया कि विरोधी नेताओं में आपस में फूट पड़ गयी है। अधिक-से-अधिक संख्या में लोग जेलों से रिहा किये जाने लगे।

श्रीमती गांधी ने भी गौहाटी में कांग्रेस के अधिवेशन (नवम्बर 1976) में यह कहा कि सरकार विरोधी दल के लोगों से बातचीत के सवाल पर नये सिरे से विचार करने के लिए तैयार है, अगर ये लोग "देश के हित में" "उत्तरदायी तरीक़े से" आचरण करने के लिए तैयार हों।

डी० एम० के० द्वारा पहल करने पर ग़ैर-कम्युनिस्ट विरोधी दलों के नेताओं की बैठक दिल्ली में (15 दिसंबर 1976) हुई। इस बैठक में इन नेताओं ने "देश में स्थिति को सामान्य बनाने के उद्देश्य से" सरकार के साथ किसी भी बातचीत में भाग लेने की अपनी इच्छा व्यक्त की। जे० पी० ने करुणानिधि को यह बताने के लिए लिखा : "मैं आपकी कोशिश का पूरा समर्थन करता हूँ और इस प्रयास में सफलता की कामना करता हूँ।" विरोधी दल अब राजनैतिक गतिरोध

को ख़त्म करने के लिए तैयार था।

लेकिन कुछ नहीं हुआ। सरकार विरोधी दल वालों से तब तक कोई भी बातचीत करने के लिए तैयार नहीं थी जब तक कि वे यह घोषणा नहीं कर देते कि वे "आंदोलनकारी राजनीति में नहीं पड़ेंगे और हिंसा तथा तोड़-फोड़ की कार्रवाइयाँ नहीं करेंगे।" यह बात तो उसी तरह थी जैसे कोई पूछे कि "तुमने अपनी बीवी को कब से मारना बंद किया था ?"

लेकिन बातचीत के लिए टोह लेने के लिए कुछ लोगों को विरोधी दल के कुछ नेताओं के पास भेजा गया। बीजू पटनायक के घर पर चरणसिंह, ओम मेहता और मोहम्मद यूनुस मिले। इस बात पर चर्चा की गयी कि गतिरोध को किस प्रकार भंग किया जाये। चरणसिंह और बीजू पटनायक नज़रबंदों की रिहाई चाहते थे, जो हज़ारों की संख्या में अभी तक जेलों में थे। इस बैठक में कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकल पाया। लेकिन यह तय हुआ कि नज़रबंदों को जल्दी-जल्दी रिहा किया जाना चाहिए।

उन्हीं दिनों श्रीमती गांधी ने संगठन-कांग्रेस के अध्यक्ष अशोक मेहता के 21 अक्तूबर और 23 नवम्बर के पत्रों का उत्तर देना ठीक समझा।

श्रीमती गांधी ने फिर दुहराया कि वह और उनकी पार्टी संसदीय लोकतंत्र के लिए प्रतिबद्ध है और भारत जैसा देश लोकतंत्रीय प्रणाली द्वारा ही संगठित और समृद्ध रह सकता है। उन्होंने कहा कि जब एक बार संवैधानिक, आर्थिक और जनांनिकी क्षेत्र में परिवर्तनों को सच्चे मन से स्वीकार कर लिया जायेगा और सांप्रदायिक, अलगाव की नीतियों का स्पष्ट रूप से परित्याग कर दिया जायेगा और हिंसा की राजनीति को छोड़ दिया जायेगा तब विरोधियों और सरकार के बीच समस्याओं का हल ढूँढ़ना कठिन नहीं होगा।

उन्होंने कहा, "आपने अपने मत की पुष्टि में महात्मा गांधी की इस वाणी का उल्लेख किया है कि सत्याग्रह लोकतंत्र का अभिन्न अंग है। सिद्धांतों पर विवाद करने से हमें कुछ भी सफलता नहीं मिलेगी। निर्णय और आत्म-परीक्षा के बारे में महात्मा गांधी के अपने मानदण्ड इतने युक्तियुक्त थे कि जब उन्होंने देखा कि लोग अहिंसा के रास्ते से भटक रहे हैं तब उन्हें सत्याग्रह को वापस लेने में देर नहीं लगी थी। हमको चाहिए कि महात्माजी के वचनों के अर्थ का अनर्थ न करें और उनके नाम को इस मामले में न घसीटें।"

विरोधी नेताओं से सलाह-मशविरा करने के बाद मेहता ने अपने संक्षिप्त उत्तर में यह कहा था कि विरोधी दल सामान्य स्थिति को फिर से वापस लाने और लोगों को उनके अधिकार और आज़ादी वापस दिलाने के इच्छुक हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सबसे अच्छा रास्ता यह है कि प्रधानमंत्री और विरोधी दल के लोगों में सीधी बातचीत हो।

मैंने उस समय लिखा था : "संभवतः, यह पहला क़दम है कि उपयुक्त वातावरण तैयार किया जाये। स्पष्ट ही इमरजेंसी का लागू रहना इसके लिए शुभ नहीं है। सामान्य स्थिति का वातावरण और परस्पर विश्वास की भावना पैदा करने के लिए कई क़दम उठाने होंगे—जैसे इमरजेंसी का हटाया जाना, समाचारपत्रों को आज़ाद करना और नागरिक आज़ादी को वापस लौटाया जाना। इसके बाद ही बातचीत के सफ़ल होने की गुंजाइश होगी।

"वह किस प्रकार का वातावरण होगा जब विरोधी दल के कुछ लोग तो जे़लों में बंद हों या उन्हें अपनी बात कहने की आज़ादी न हो। सम्पूर्ण राष्ट्र को

यह बताना होगा कि हम क्या हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं और इसके लिए हमने कौन-सा रास्ता अपनाया है। यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसका संबंध केवल कुछ नेताओं या कुछ पार्टियों से है; इसका संबंध सभी लोगों से है, इन सभी लोगों को इसकी जानकारी होनी चाहिए। कम-से-कम ये लोग तो जान जायेंगे कि कौन ग़लती पर है।

"असल में, सामान्य स्थिति लाना बातचीत के परिणाम पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। मान लीजिये, बातचीत निष्फल हो जाती है। क्या इसका अर्थ यह होगा कि इमरजेंसी और उसके नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सब अनन्त-काल तक चलने दिया जायेगा? सरकार के ज़िम्मेदार नेताओं ने बार-बार कहा है कि इमरजेंसी थोड़े समय के लिए है, वह लक्ष्य तक पहुँचने का साधन है, अपने में लक्ष्य नहीं है।

"एक और संभावना पर विचार कीजिये। विरोधी दल के वर्तमान नेता एक ऐसा निर्णय करते हैं जो देश की जनता में बड़े-छोटे सभी लोगों को स्वीकार नहीं है। तब इस समझौते को कौन लागू करेगा? क्या सरकार फिर से बातचीत करेगी? यह आज भी अजीब-सा लगता है कि मोरारजी जैसे व्यक्ति इससे संबद्ध नहीं हैं? जयप्रकाश नारायण का क्या होगा? क्या ऐसी बातचीत या समझौते का कोई अर्थ होगा जिसमें उनको शामिल न किया गया हो?"

अगर बातचीत नहीं होती तो फिर क्या होगा? क्या जो लोग सत्ता में हैं वे इस तथ्य का सामना करेंगे कि तानाशाही में बीच का कोई रास्ता नहीं है? काल-चक्र को पूरा घेरा लगाना है, यही इसका तर्क था। जैसा बीजू ने मुझसे कहा था, श्रीमती गांधी और उनके समर्थक उस मिट्टी के नहीं बने जिससे तानाशाह बनते हैं। लोगों के मारे जाने पर जो सफ़ाई दें, व्याख्या और पुनर्व्याख्या करें, वे तानाशाह नहीं बन सकते। तानाशाह में तो हज़ारों-लाखों लोगों को मारने का दम चाहिए।

इस अपेक्षाकृत सुलह के वातावरण में मैं पटियाला-स्थित पंजाबी विश्व-विद्यालय गया। मैं इसके सिनेट का सदस्य और विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग का अवैतनिक सलाहकार था। नज़रबंद होने के पहले मैं महीने में दो या तीन क्लास पढ़ाया करता था जो अक्सर इतवार को हुआ करती थीं। यह सोचे बिना कि परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं, मैंने वाइस-चांसलर को टेलीफ़ोन किया कि मैं यूनीवर्सिटी आ रहा हूँ और हमेशा की तरह इतवार को क्लास लूँगा। उन्होंने मुझसे कहा कि वह विद्यार्थियों को सूचना भिजवा देंगी और विभाग खुलवा देंगी।

जब मैं पाँच बजे सवेरे मोटर से चलकर पटियाला दस बजे दिन में पहुँचा तब विभाग के दरवाज़े बन्द मिले। मैंने वाइस-चांसलर से मिलने की कोशिश की, लेकिन वह 'नहीं थीं'। मुझे एक-दो आदमी इधर-उधर घूमते नज़र आये जो मुझे बराबर देख रहे थे। गेस्ट-हाउस के कर्मचारियों के पास कोई जगह नहीं थी, जहाँ मैं ठहर सकता। पूरे चार घंटे इंतज़ार करने के बाद और वाइस-चांसलर को कई बार टेलीफ़ोन करने पर मैं उनसे बात कर सका। वह काफ़ी अन्यमनस्क थीं। उन्होंने कहा कि जब भी यूनीवर्सिटी को मेरी सेवाओं की ज़रूरत होगी वह बता देंगी।[1] यह एक अजीब-सी बात थी, क्योंकि मैं पढ़ाने की कोई फ़ीस नहीं ले रहा

1. मुझे बाद में पता चला कि उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्ञानी जैलसिंह से पूछा था और उन्होंने मेरी सेवाएँ ख़त्म करने का आदेश दिया था। सिनेट की मेरी सदस्यता भी नहीं बढ़ायी गयी।

था। उन दिनों एक किताव जो वहुत ही लोकप्रिय थी वह थी इरविन वालेस की आर डॉक्यूमेंट। सरकार ने ग़ैर-सरकारी तौर पर इसके प्रचलन पर रोक लगा दी थी। इस किताव में एक नवयुवक वकील की कहानी दी गयी थी जो संयुक्त राज्य अमेरिका के अटॉर्नी-जनरल का असिस्टेंट था। एक क़ैदी को मारने की कोशिश की गयी तो वह वकील अमेरिकी संविधान में किये जा रहे एक विवादग्रस्त संशोधन का खुलकर विरोध करने लग गया। इस संशोधन का उद्देश्य इमरजेंसी के दौरान एफ़० वी० आई० के डाइरेक्टर को वेलाग शक्तियाँ प्रदान करना था (उस समय अमेरिका में हत्या की घटनाओं का दौर-सा आया हुआ था। वाद में पता चला कि हत्याओं के आँकड़े एफ़० वी० आई० ने वढ़ा-चढ़ाकर तैयार किये थे, जिससे लोगों के मन में यह वैठ जाये कि देश में एक गंभीर संकट आ गया है। असल में कोई संकट नहीं था)। अटॉर्नी-जनरल के असिस्टेंट ने संयुक्त राज्य अमेरिका के चीफ़ जस्टिस की सहायता माँगी, क्योंकि वही एक व्यक्ति था जो निर्णय करने के लिए लोगों का वहुमत इधर-उधर झुका सकता था। इस संशोधन को अभिपुष्ट करने के लिए समस्त राज्यों के दो-तिहाई मत की ज़रूरत थी। उस समय केवल दो राज्य, कैलीफ़ोर्निया और ओहियो रह गये थे। अगर वे इस संशोधन का अनुमोदन कर देते तव वह संविधान का अंग वन जाता।

संयुक्त राज्य अमेरिका के चीफ़ जस्टिस और अटॉर्नी-जनरल का असिस्टेंट—दोनों यात्रा करते-करते एक छोटे-से शहर में जा निकले, जहाँ संशोधन के लिए एक प्रयोग किया जा रहा था। इस छोटे-से शहर में इमरजेंसी लगी हुई थी, वहाँ नागरिकों को कोई अधिकार नहीं मिले हुए थे और उत्पादन के सभी साधनों आदि पर सरकार का नियंत्रण था। स्कूलों में वैसे ही इतिहास की पढ़ाई होती जैसा सरकार ने निश्चित कर रखा था। यह देखकर चीफ़ जस्टिस आग-ववूला हो गया, लेकिन उसके कुछ करने से पहले ही उसका क़त्ल कर दिया गया।

असिस्टेंट इस पर तनिक भी नहीं घवराया और वह अपने काम पर डटा रहा। एक वच्चे के टेप-रिकॉर्डर पर रिकॉर्ड हुई आवाज़ से सारा रहस्य आख़िर में खुल गया। यह पता चला कि संशोधन पारित हो जाने के वाद अमेरिका के राष्ट्रपति की हत्या करने की योजना थी और तव एफ़० वी० आई० का डाइरेक्टर राष्ट्रीय संकट की घोषणा करके अपने हाथ में असाधारण शक्तियाँ ले लेता और यह प्रयोग वाक़ी अमेरिका में करता।

पाठक इस पुस्तक में वर्णित परिस्थितियों की तुलना भारत की परिस्थितियों के साथ करते थे। भारतीय संविधान में 42वें संशोधन को आर डॉक्यूमेंट में उल्लिखित संशोधन कहा जाता था।

इमरजेंसी की आलोचना वरावर वढ़ती जा रही थी। जो लोग शुरू में उसका समर्थन करते थे वे भी यह अनुभव करने लग गये थे कि उसकी उपयोगिता ख़त्म हो चुकी है। श्रीमती गांधी के समर्थक भी अव यह प्रश्न करने लग गये थे कि वह जिस शेर पर सवार थी उससे कैसे उतरें? हालाँकि एक उद्घोषणा द्वारा लोक सभा की अवधि एक साल के लिए अर्थात् 1978 तक वढ़ा दी गयी थी, फिर भी चुनाव की वातचीत शुरू हो गयी थी।

चुनाव की वहुत ज़्यादा चर्चा होने पर सरकार को वक्तव्य जारी करना पड़ा कि वह चुनाव कराने की जल्दी में नहीं हैं। उसने यह सोचा भी नहीं था कि चुनाव इनाम नहीं होते, इनसे जनता की इच्छा का, जो असली मालिक होती है, पता चलता है। चुनाव में मतों के द्वारा पार्टियाँ और उम्मीदवार अपनी लोक-

प्रियता और अपने कार्यक्रमों के प्रति जनता की रुचि की मात्रा का निर्धारण करते हैं। निश्चित काल के लिए चुने गये विधायक अपनी नीतियों के लिए अनिश्चित काल के लिए समर्थन प्राप्त होने का दावा नहीं कर सकते।

लगता था कि कांग्रेस-सरकार इस तथ्य को भूल गयी थी कि पाकिस्तान भी, जहाँ इसकी कोई परम्परा नहीं थी, तभी चुनाव करा रहा था, जब कि भारतवासी लोकतंत्र की दीर्घ परम्परा के बावजूद चुनाव दो-बार टाल चुके थे। चाहे चुनाव जल्दी न भी होते तो भी इसके लिए एक निश्चित तारीख़ की घोषणा तो होनी ही चाहिए थी, जिससे लोगों के मन में इस बारे में जो सन्देह था वह दूर हो जाता। इसकी माँग बढ़ती जा रही थी। कुछ गढ़ी-गढ़ायी कहानियाँ भी समाचारपत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं।

ओम मेहता को संसद में यह कहना पड़ा कि मार्च 1977 में चुनाव कराने की तैयारी किये जाने की ख़बर कोरी अटकलबाज़ी और बेबुनियाद है। उन्होंने कहा कि चूंकि प्रधानमंत्री ने सामान्य स्थिति को वापस लाने की प्रक्रिया शुरू कर दी है, इसलिए लोग अटकलें लगाने लगे हैं। विरोधी दल के बहुत-से नेता रिहा कर दिये गये थे, हालाँकि इमरजेंसी से पहले छेड़ा गया आंदोलन न तो ही वापस लिया गया था और न लोक संघर्ष समिति ही भंग की गयी थी।

मैं जानता था कि चुनाव की तैयारियाँ शुरू कर दी गयी थीं। इसकी पुष्टि में कई तथ्य थे। श्रीमती गांधी ने धन इकट्ठा करने के लिए कह दिया था; उनका लड़का अमेठी से आया था, जहाँ से वह लोक-सभा के लिए चुनाव लड़ना चाहता था। उम्मीदवारों की सूचियाँ प्रधानमंत्री के निवास-स्थान पर तैयार की जाने लगी थीं, ख़ुफ़िया ब्यूरो, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सी० बी० आई०) और रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (रा) को यह कह दिया गया था कि वे यह पता लगायें कि अगर चुनाव हुए तो नतीजा क्या रहेगा।

श्रीमती गांधी अपने तानाशाही शासन को, जिसकी विदेशों में भी उदार विचार वाले लोग भी कटु आलोचना करने लगे थे, वैध बताना चाहती थीं। उन्हें जिन स्रोतों से सूचना मिलती थी उनसे उन्हें पता चला कि जीतेंगी वही। कुछ ऐसे भी स्रोत थे जिन्होंने उनको यह बताया था कि संजय भारत में सबसे अधिक लोकप्रिय व्यक्ति है और इमरजेंसी ने लोगों के दिलों को मोह लिया है।

उन पर उनके सचिव पी० एन० धर-जैसे लोगों का भी, जिन्होंने यह हिसाब लगाया था कि वही जीतेंगी क्योंकि देश आर्थिक दृष्टि से इससे ज़्यादा ख़ुशहाल कभी नहीं रहा था, दबाव पड़ रहा था। और कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष डी० के० बरुआ अनेक कारणों से, जो वह ही ज़्यादा जानते थे, चुनाव जल्दी कराने के पक्ष में थे।

श्रीमती गांधी ने अभी तक किसी काम के लिए समय निश्चित करने में कभी ग़लती नहीं की थी। उनका कहना था कि जीतेंगी वही तो फिर इंतज़ार क्यों करें?

सरकारी घोषणा के चार दिन पहले, पंजाब के एक पुलिस-अधिकारी ने मुझे बताया था कि उन लोगों से अगले चुनावों के लिए आवश्यक बन्दोबस्त करने के लिए कह दिया गया है। एक दिन बाद मैंने यह ख़बर इस तरह लिखी:

> ऐन मौक़े पर कुछ और तय कर लिया जाये तो दूसरी बात है, वर्ना अभी तक निर्णय यही है कि लोक-सभा के लिए चुनाव मार्च के आख़िरी दिनों या अप्रैल के आरंभ में होंगे।
>
> इमरजेंसी उठायी नहीं जायेगी बल्कि उसमें ढील दे दी जायेगी। इसके

लिए तर्क यह है कि इमरजेंसी से, जो 1975 में लागू की गयी, न तो 1971 और न 1972 के चुनावों के निष्पक्ष सम्पन्न होने में कोई बाधा पड़ी।

चुनाव कराने की सरकारी घोषणा औपचारिक रूप से संसद का सत्र शुरू होने के दिन की जायेगी। यह सत्र 9 फ़रवरी को शुरू हो रहा है।

तब तक प्रधानमंत्री मुख्यमंत्रियों के साथ इस विषय पर ब्यौरेवार बातचीत कर चुकी होंगी। वे यहाँ 18 जनवरी को 25-सूत्री कार्यक्रम की—20 श्रीमती गांधी के और 5 संजय के—प्रगति पर विचार करने के लिए एकत्र हो रहे हैं।

चीफ़ सेंसर ऑफ़िसर ने मुझे बुलाया और मुझे मौखिक चेतावनी दी। मुझे बताया गया कि चुनाव की ख़बर 'बेबुनियाद' है।

तीन दिन बाद चुनाव की सरकारी घोषणा हुई। प्रधानमंत्री ने अपने ब्राडकॉस्ट में बताया कि भारत के लोग नयी लोक-सभा का चुनाव मार्च के तीसरे सप्ताह में करेंगे। उन्होंने कहा कि इमरजेंसी में ढील दे दी गयी है, लेकिन वह ख़त्म नहीं की गयी है। मेरा अनुमान सही था और जब मैंने चीफ़ सेंसर ऑफ़िसर से यह शिकायत की कि मुझे ग़लत चेतावनी दी गयी तो उसका जवाब था, "हम क्या कर सकते हैं? हमारे मंत्री ने हमें ऐसा करने के लिए कहा था।"

रिहा होने पर मोरारजी देसाई ने कहा कि अभी कुछ दिनों पहले आधिकारिक रूप से खंडन करने के बाद इस अचानक निर्णय से चुनाव में प्रचार-कार्य के लिए बहुत थोड़ा समय बचा है, इससे विरोधियों के लिए समान अवसर नहीं दिया गया और उनके सामने एक बड़ी बाधा डाल दी गयी है।

मार्क्सवादी नेता, ई० एम० एस० नम्बूदिरीपाद ने, जो नज़रबंद नहीं किये गये थे, कहा कि इमरजेंसी के लागू रहते स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव नहीं हो सकते। कुछ दिनों तक विरोधी दल के लोग इसी बात पर गंभीरतापूर्वक बहस करते रहे कि चुनाव में भाग लें या नहीं। जन संघ ने कुछ शर्तें रखीं और कहा कि अगर ये माँगें अगले कुछ दिनों में स्वीकार नहीं की गयीं तो वे चुनाव का बायकॉट किये जाने का सुझाव लायेंगे। इन माँगों में इमरजेंसी का ख़त्म किया जाना, नज़रबन्दों की रिहाई, प्रेस सेंसरशिप का ख़त्म किया जाना आदि माँगें शामिल थीं।

सोशलिस्ट लोग अनिश्चय की स्थिति में पड़े हुए थे, क्योंकि जॉर्ज फ़र्नांडीज, जो कलकत्ता में एक चर्च में गिरफ़्तार कर लिये गये थे, अभी तक जेल में थे और सरकार उन पर जिस मुक़दमे को चलाने के लिए ज़ोर दे रही थी उसे बड़ौदा डायनामाइट केस का नाम दिया गया था।[1]

भारतीय लोक दल (भालोद) और कांग्रेस (संगठन) के लोग बिलकुल स्पष्ट मत के थे कि चाहे जो भी कठिनाई आये वे चुनाव ज़रूर लड़ेंगे। वे उस भय के कारण असंतुष्ट थे जो सारे देश में अट्ठारह महीने तक इमरजेंसी लागू रहने के कारण छाया हुआ था। लेकिन उनको आशा थी कि जनता निर्भय होकर मत देगी।

तब तक ग़ैर-कम्युनिस्ट पार्टियाँ अपनी बैठकें कर चुकी थीं। पहले तो अलग-अलग आपस में मिल चुकी थीं; फिर जन संघ, भालोद, कांग्रेस (सं०) और सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी बैठकें की व भविष्य की नीति के बारे में विचार-विमर्श

---

1. और अधिक जानकारी के लिए लेखक की पुस्तक 'फ़ैसला' देखिये।

किया और बाद में चुनाव के लिए मिलकर एक पार्टी—जनता पार्टी—बन गयी। कांग्रेस (सं०) ने अपना विलय करने के पहले अपनी सम्पत्ति का अलग एक ट्रस्ट बनाया, जिसके अध्यक्ष मोरारजी देसाई हुए जिससे यह सम्पत्ति 'जनता' के अधिकार से अलग रहे।

हर हालत में यह विलय औपचारिकता मात्र था, इन दलों के अधिकांश नेताओं ने, जब वह रोहतक जेल में बन्द थे, मिलकर अकेली एक पार्टी बनाने का निर्णय कर लिया था। पहले छह महीनों तक उनमें आपस में कोई समझौता नहीं हो सका, लेकिन बाद में जब वे एक-दूसरे को अच्छी तरह जान गये और उन्होंने समझौते का आधार ढूंढ़ लिया तब अपने अन्तर और पृथक अस्तित्व को समाप्त करने का फ़ैसला कर लिया। सभी को एक साथ नज़रबन्द करने के अलावा उनका एक ही जगह पर बन्द रखना श्रीमती गांधी की सबसे बड़ी ग़लती थी। नज़रबंदी से ये लोग शहीद बन गये और नेता हो गये। जे० पी० ने इस विलय को अपना आशीर्वाद दिया और इस चुनाव को लोकतंत्र और तानाशाही में चुनाव का रूप दे दिया। उन्होंने कहा कि श्रीमती गांधी की जीत का मतलब होगा "तानाशाही की जीत।" उन्होंने जनता पार्टी के नेताओं से ज़ोर देकर कहा वे लोगों को अपना दल छोड़ने के लिए न उकसायें और चुनाव के लिए नये और नौजवान लोगों को व ऐसे लोगों को खड़ा करें जो ईमानदार हों।

लेकिन, जब उम्मीदवारों को चुना जाने लगा तब 'जनता' के नेतागण को न तो 'ईमानदारी' और न 'नौजवान लोगों' का ही ध्यान रहा। उनका ध्यान चुनाव के बाद की 'परिस्थिति' पर लगा रहा। कसौटी यह रही कि लोक-सभा में और विधान-सभाओं में जनता पार्टी के किस घटक की कितनी संख्या हो। हर घटक ने अपने आदमियों को ज़्यादा-से-ज़्यादा संख्या में भरा, जिससे उनके अपने ही आदमी आयें जिन पर वह निर्भर रह सकें। यह शोचनीय स्थिति थी कि जब बड़े-बड़े सिद्धांत घोषित किये जा रहे थे, उम्मीदवारों का चुनाव जल्दी-जल्दी किया गया। उनको ऐसे आदमी खड़े करने चाहिए थे जिनको लोकतंत्र, समाजवाद और सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना जैसी बुनियादी बातों में अटूट विश्वास हो और जो अपनी ईमानदारी और सार्वजनिक हित में निष्ठा के लिए जाने-माने हुए हों। बहुत-से नौजवानों को उम्मीदवार बनाने का सभी स्वागत करते।

'जनता' जगजीवनराम और बहुगुणा के आ जाने के बाद और अधिक शक्तिशाली बन गयी। इन दोनों भूतपूर्व-कांग्रेसी नेताओं के आ जाने से वह डर निकल गया जो बहुत-से मतदाताओं के दिलों को घेरे हुए था। यह डर था कि अगर उन्होंने कांग्रेस को हरा दिया तो सरकार उनसे नाराज़ हो जायेगी। अब इनको स्वतंत्रता के बाद पहली बार कांग्रेस का एक विकल्प संभव दीख रहा था।

मैं बहुगुणा से अक्सर मिला करता था। वह बहुत दिनों से श्रीमती गांधी से ऊबे हुए थे (वह उनसे मिलना भी नहीं पसन्द करती थीं), लेकिन वह ऐसी घड़ी का इंतज़ार कर रहे थे जो 'कारगर' होती। वह घड़ी तब आयी जब वह जगजीवनराम को कांग्रेस छोड़ने के लिए मनाने में सफल हो गये।

इंडियन एक्सप्रेस में हम लोगों ने जनता के उम्मीदवारों का समर्थन करने के लिए, चाहे वह अच्छे हों या बुरे, पूरी बाज़ी लगा दी थी। यह हमारे अस्तित्व का सवाल था, क्योंकि अगर श्रीमती गांधी आतीं तो हमें मालूम था कि हमारा अखबार और हममें से कुछ लोग तो खत्म ही थे। शुक्ल ने एक वक्तव्य में कहा था कि सरकार सेंसरशिप के आदेश को लागू नहीं करेगी; दूसरे शब्दों में, यह

आदेश स्थगित कर दिया गया था, ख़त्म नहीं किया गया था। जो पत्रकार अत्यधिक उत्सुक और सावधान थे वे अधिक साहसपूर्ण क़दम उठाना चाहते थे, लेकिन उनको चेतावनी दे दी गयी थी कि ठीक ढंग से आचरण करें अन्यथा चुनाव के बाद उनको मुसीबत झेलनी पड़ सकती है। लेकिन अधिकांश अख़बारों ने एक्सप्रेस के रास्ते को अपनाया। इन अख़बारों का सर्कुलेशन पहले ही गिरना शुरू हो गया था।

शुक्ल ने एक वक्तव्य में यह भी कहा कि पत्रकारों को "नीति-संहिता" का पालन करना चाहिए। आल-इंडिया न्यूज़पेपर्स एडीटर्स कांफ्रेंस भी, जिसने यह संहिता बनायी थी, इमरजेंसी के समर्थन में एक संकल्प पारित कर चुकी थी। कुछ संपादक यह आरोप लगा चुके थे कि यह संहिता वह नहीं थी[1] जिसे उन लोगों ने पटना कांफ्रेंस में स्वीकार किया था। यह कैसी संहिता थी, जिसमें "समाचारपत्रों की स्वाधीनता" वाक्यांश का कहीं पर प्रयोग नहीं किया गया था, हालांकि इसमें 2000 शब्द भरे थे।

यह एक विडम्बना थी कि चीफ़ सेंसर ऑफ़िस प्रेस-संपर्क का काम करने वाला कार्यालय बन गया था। उसके तथा सूचना व प्रसारण मंत्रालय के उच्च अधिकारी विभिन्न प्रदेशों में इस उद्देश्य से भेजे गये कि समाचारपत्रों को यह बात बता सकें कि कांग्रेस को समर्थन देना "उनके अपने हित में है।" और समाचारपत्रों के कार्यालयों में जब वे जाते तो साफ़ बता देते थे कि आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर रोक लगाने वाला अधिनियम[2] यथावत लागू है। इस अधिनियम के तहत एक मजिस्ट्रेट को यह अधिकार था कि वह निर्णय करे कि क्या आपत्तिजनक है और वह चाहे तो प्रेस को बंद करा सकता था। इस अधिनियम के तहत कोई मुक़दमा नहीं दायर कर सकता था।

एक्सप्रेस में हम लोगों को किसी ने नहीं छेड़ा लेकिन अधिकारियों ने, जिनमें शुक्ल भी थे, यह ख़बरें भिजवायीं कि वह हमारी गतिविधियों पर नज़र रखे हुए हैं और चुनाव के बाद हमारी ख़बर लेंगे। मुझे मिल के "आन लिबर्टी" नामक प्रसिद्ध निबंध की वह पंक्तियाँ याद आयीं जो उन्होंने अंत में लिखी थीं : "उस राज्य को, जो लोगों को बौना बना देता है ताकि वे दबकर उसके उद्देश्यों के साधन बन जायें—भले ही उसके उद्देश्य जनकल्याणकारी हों—अंत में पता चलता है कि छोटे लोगों को लेकर बड़े काम नहीं किये जा सकते।"

मुझ पर सरकार का रोष कम नहीं हुआ था। उसे मेरी टिप्पणियाँ पसंद नहीं थीं, ख़ास तौर से वह टिप्पणी जिसे मैंने चुनाव के मौक़े पर लिखा था : "अंदरूनी इमरजेंसी लागू होने के बाद सत्तावादी शासन के ख़िलाफ़ व्याप्त नाराज़ी से एक सबक़ सभी को सीखना चाहिए कि भारत में ऐसी कोई भी व्यवस्था काम नहीं कर सकती जिसके अंतर्गत सारी शक्तियाँ राज्य के हाथों में सिमट जायें और नागरिक इतने असहाय बन जायें कि प्रशासकीय अधिकार के मनमाने प्रयोग के खिलाफ़ कुछ भी न कर सकें। 26 जून 1975 को यही हुआ। और यही वह चीज़ है जिसे जनता दुवारा कभी नहीं होने देना चाहती।"

चुनाव के नतीजे आना शुरू होने और मतदान समाप्त होने के एक दिन पहले 16 मार्च को मुझे चेतावनी भेजी गयी। मुझसे कहा गया कि मैं नज़रबंद होने के

---

1. इसको सूचना और प्रसार मंत्रालय ने नये सिरे से तैयार किया था और ए० आई० एन० ई० सी० के दफ़्तर को दे दिया था।
2. जनता सरकार ने जैसे ही कार्यभार संभाला इसमें संशोधन कर दिया।

लिए तैयार रहूँ और "इस बार कम-से-कम पाँच साल के लिए"। वोटों की गिनती शुरू होने के एक दिन पहले मैं अपने बूढ़े माँ-बाप से मिलने पानीपत गया हुआ था, जहाँ वह मेरे बड़े भाई राजिन्दर नय्यर के साथ, जो वहाँ मेडिकल प्रैक्टीशनर थे, रह रहे थे। मैंने उनसे इस धमकी का कोई ज़िक्र नहीं किया, क्योंकि वह अकारण ही परेशान हो जाते। और कौन जानता था कि इन धमकियों को पूरा करने के लिए कोई शुक्ल रहेगा भी !

घर आने पर मैंने अपना थैला संभाला और विस्तर बंद किया, जिसे मैं पिछली बार जेल जाते समय छोड़ गया था। मैंने भारती को इसके बारे में कुछ भी नहीं बताया। लेकिन मेरे मन में कुछ ऐसी चीज़ थी जो मुझसे कह रही थी कि श्रीमती गांधी और उनके लोग अब वापस नहीं आयेंगे।

और वह नहीं आये। लेकिन संजय के लिए यह मन-बहलावा था, उसने हम लोगों को यह ख़बर भिजवायी : "एक्सप्रेस को बधाई", "वयोवृद्ध रामनाथ गोयनका को बधाई"।

कांग्रेस ने भले ही स्वीकार नहीं किया, लेकिन अच्छी तरह से समझ लिया कि सारे उत्तर भारत में उसका सफ़ाया हो जाने का एक मात्र कारण था—पिछले अट्ठारह महीने में इमरजेंसी के नाम पर किये गये कामों से पैदा हुआ जन-असंतोष। इन अट्ठारह महीनों में ही सरकार की प्रतिष्ठा पर बट्टा लगा और श्रीमती गांधी के कट्टर समर्थक भी उनका विरोध करने लगे।

अगर प्रधानमंत्री ने 26 जून 1975 को इमरजेंसी लागू करने के बजाय चुनाव कराने का आदेश दे दिया होता तब विरोधी इतनी सफलता नहीं प्राप्त करते, जितनी उन्हें मिली।

यह बदलाव मुख्यत: सरकार के निरंकुश शासन के कारण हुआ। इसके प्रति लोगों की प्रतिक्रिया ख़राब रही, इमरजेंसी में ढील मिलने के अवसर का उन्होंने उपयोग किया और मंत्रियों, अफ़सरों और अन्य लोगों द्वारा, जिनका आदेश क़ानून था, शक्ति के दुरुपयोग के खिलाफ़ अपनी नाराज़ी व्यक्त की। किसी को क्या मालूम कि कितनी घटनाएँ श्रीमती गांधी की जानकारी में लायी गयीं—हो सकता है, अधिकांश उनकी जानकारी में हों—लेकिन ऐसी असंख्य घटनाएँ थीं जो अब सभी को मालूम हुईं और जिनका आधार व्यक्तिगत और राजनीति द्वेष था।

निश्चय ही यह एक बुरा सपना था। आलोचकों को रोका जा रहा था, विरोधियों की धर-पकड़ हो रही थी, बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों पर छापे मारे जा रहे थे, दूकानदारों को सताया जा रहा था, सरकारी कर्मचारियों को रिटायर किया जा रहा था और लोगों के व्यक्तिगत आयकर के मामलों को फिर से उलटा-पुलटा जा रहा था—यह सब यह सिद्ध करने के लिए किया जा रहा था कि जो लोग सरकार का समर्थन नहीं करते थे उनको मुसीबत उठानी पड़ेगी। जो कुछ हो गया उसका अब कोई निदान नहीं था। लोगों को बात करते समय भी डर लगता था, विरोध करने की कौन कहे !

यहाँ तक कि सरकार को उसके सबसे ज़्यादा सुविचारित कार्यक्रम का भी कोई यश नहीं मिला—कारण यह कि वह कार्यक्रम लागू ऐसे ढंग से किया गया कि लोग बिगड़ गये। जिस देश की जनसंख्या 61 करोड़ से भी ऊपर पहुँच चुकी हो, उसके लिए परिवार नियोजन ज़रूरी कार्यक्रम था और हर राजनीतिक पार्टी ने इसे अपने चुनाव घोषणा-पत्र में स्वीकार किया था। लेकिन अनिवार्य नसबंदी से सरकार को बदनामी मिली। ऐसे अनेक मामले थे जिनमें पुलिस लोगों को

ज़बरदस्ती पकड़ कर नसबंदी कैंपों में ले गयी थी।

अगर समाचारपत्रों को आज़ादी मिली होती तो वह ज़बरदस्ती की इन कार्यवाहियों और ऐसी ही अन्य घटनाओं की ख़बरें छापते। लेकिन उन पर तो इतनी रोक लगी हुई थी कि कांग्रेस में आपसी मतभेद के बारे में या लंदन में किसी एक्ट्रेस द्वारा दूकान से सामान चोरी करने की ख़बर भी नहीं छाप सकते थे। सेंसरशिप के एक आदेश में लिखा हुआ था : "परिवार नियोजन कार्यक्रम की कोई आलोचना नहीं होनी चाहिए, इसमें 'संपादक को पत्र' भी शामिल है।" ऐसी हालत में ज़बरदस्ती नसबंदी की घटनाओं के बारे में क्या कहा जा सकता था! जब कभी संसद-सदस्य परिवार नियोजन और अन्य क्षेत्रों में हुई ज़्यादतियों की घटनाएँ सरकार की जानकारी में लाते तब समाचारपत्र उनका उपयोग नहीं कर सकते थे, क्योंकि दोनों सदनों की कार्यवाहियों को निर्दिष्ट मार्गदर्शी संकेतों के अनुसार ही छापा जा सकता था। जहाँ तक संसद-सदस्यों का संबंध था, वे यह देखकर चुप रहना पसंद करते थे कि आलोचकों को द्वेष और संदेह से देखा जाने लगा था। जब कभी वे इसकी बात भी करते तब दरवाज़े बंद कर या गुपचुप तरीक़े से। इस तरह जनता की तकलीफ़ों को कोई कहने वाला नहीं रह गया था।

अगर पीड़ित लोगों के पास कोई रास्ता होता तब वे उचित व्यक्तियों के पास अपनी शिकायतें लेकर जाते। अधिकारी ज़्यादतियों की शिकायतों को सुनने को तैयार नहीं थे, पुलिस रिपोर्ट नहीं लिखती थी और अधिकांश मामलों में न्यायालय भी कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि इमरजेंसी के तहत नागरिकों के सभी अधिकार ख़त्म हो गये थे। जिन एकाध जजों ने ऐसे निर्णय देने का साहस किया, जो सरकार को रुचिकर नहीं हुए, उनका तबादला कर दिया गया, या उनको अधिलंघित कर दिया गया, या उनकी पदावनति कर दी गयी।

जनता पूरी तरह से असहाय और निराश हो चुकी थी। दुख-दर्द का मारा कर भी क्या सकता था? समाचारपत्र उसकी तकलीफ़ों को नहीं छाप सकते थे, अधिकारी उसकी कोई परवाह नहीं करते थे और कचहरियाँ उसकी तरफ़ से कोई पाबंदी नहीं लगा सकती थीं। वोटर ने ऐसे ही वातावरण में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

उपसंहार

मैं आज़ाद हूँ। मुझे इस वात का भरोसा है कि पुलिस सिर्फ़ इतनी-सी वात के लिए मुझे पकड़ने के लिए मेरा दरवाज़ा नहीं खटखटायेगी कि मैंने सरकार के ख़िलाफ़ कुछ वात लिख दी थी।

मैं डावाँडोल रहने की उस स्थिति से पीड़ित नहीं हूँ जो मुझे जेल में सताती रहती थी, क्योंकि विना किसी मुक़दमे या अनिश्चित अवधि के जेल में नज़रवन्द पड़े रहने से मन जिस भावना से सवसे ज़्यादा दुखी रहता था वह यह कि मैं वाहर अपने दोस्तों और परिवार के लोगों से शायद न मिल पाऊँगा। नज़रवंदी एक अँधेरी सुरंग थी, जिसका छोर नज़र नहीं आता था।

निश्चय ही, आज़ादी के अनुभव ने मुझे मुग्ध कर दिया है। मैं नहीं जानता कि मैं कव तक इस स्थिति में रहूँगा। मैं देखता हूँ कि दिन-पर-दिन लोगों का भ्रम मौजूदा सरकारों—केंद्र और प्रदेशों दोनों की सरकारों—के काम करने के तरीक़े से टूटता जा रहा है। वे सोचते हैं कि उनकी आशाएँ झूठी निकल गयी हैं और ये नये हुक्मरान पिछलों से भिन्न नहीं हैं।

यह वात तो समझ में आती है कि आर्थिक कार्यक्रमों को कार्यान्वित होने और उनके नतीजे सामने आने में देर लगती है। लेकिन वे आशा करते थे कि अँग्रेज़ों के शासन-काल से उनमें और प्रशासकों में जो अन्तर वना हुआ था वह दूर हो जायेगा, प्रशासन ज़्यादा उत्तरदायी और दक्ष वन जायेगा और उन्हें हर स्तर पर सरकार के काम करने में शामिल किया जायेगा।

लेकिन जब वे देखते हैं कि एक ज़िले में—जहाँ प्रशासन उनके निकट है—डिप्टी-कमिश्नर को वही वेलाग अधिकार मिले हुए हैं और सत्ताधारी पार्टी के इशारों पर, चाहे वह भीड़ इकट्ठा करने के लिए हो या विरोधियों को तंग करने के लिए, उन अधिकारों का प्रयोग या पुलिस द्वारा इन आदेशों को तामील किया जा रहा है तव वे पूछने लगते हैं कि पहले में और आज में क्या फ़र्क़ है? वे यह नहीं जानते कि कौन सबसे वड़ा होना चाहता है और इसके लिए क्या तरीक़े अपना रहा है। वे निराश हैं। वे पुरानी परम्परा से अलग एक नयी चीज़ चाहते हैं और उन्हें वह मिलती नहीं है। सरकारी दफ़्तरों या कचहरियों में उनके साथ वही व्यवहार होता है जो पहले होता था, वे जानना चाहते हैं कि जनता राज के नारे कहाँ चले गये!

उन्हें आशा थी कि जनता के मंत्रियों का रहन-सहन भिन्न होगा और वे

सादगी और संयम से रहेंगे, लेकिन वे देखते हैं कि ये मंत्री भी उन्हीं चमक-दमक वाले बँगलों में रह रहे हैं, चपरासियों, सिक्युरिटी के आदमियों और पी० ए० लोगों की वही भीड़ है। वे देखते हैं कि जनता के नेतागण अफ़सरों को टेलीफ़ोन पर निर्देश देने या क़ानून से बाहर जाने का वही पुराना तरीक़ा अपनाये हुए हैं।

जिस जनता ने श्रीमती गांधी व उनके गुर्गों के शासन को ख़त्म किया, यदि वह समझने लगे कि सभी एक-से होते हैं, सत्ता में आने पर अपने वायदे भूल जाते हैं, और वर्तमान व्यवस्था में उसी तरह के लोग फल-फूल सकते हैं जो पिछले तीस वर्ष से फल-फूल रहे थे, तो मुझे अंदेशा होता है कि मेरी आज़ादी ख़तरे में है।

जब लोग देखते हैं कि मौजूदा नेता उन्हीं चालों, वैसी ही दलबंदी और अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए वही पुरानी राजनीति के दावपेंचों में उलझ गये हैं तब वे अकसर सोचते हैं कि क्या लोकतंत्र एक विलास है, क्या देश को 'दुरुस्त' रखने के लिए 'अनुशासन' की ज़रूरत है? यह सोचने की एक भयानक प्रवृत्ति है, लेकिन मौजूदा वातावरण और सरकार की निष्क्रियता इसको और ज़्यादा बल दे सकती है।

यह सच है कि भारत ने तानाशाही को उखाड़ फेंका है, लेकिन ऐसा भी कुछ देशों में हुआ है कि तानाशाही के अँधेरे के बाद लोकतंत्र की ज्योति कुछ देर के लिए टिमटिमायी और फिर हमेशा के लिए बुझ गयी। मुझे शंका है कि जनता सरकार के असफल हो जाने के बाद कहीं ऐसी ही स्थिति न आ जाये और पार्टी में अन्दर और बाहर ऐसे संकट आने न शुरू हो जायें जिनसे एक विशेष प्रकार का शासन आ जाये जो जैसे-जैसे दिन बीतते जायें लोकतंत्रीय कम और ज़्यादा-से-ज़्यादा सत्तावादी होता जाये।

कुछ लोग, खास तौर से श्रीमती गांधी के समर्थक, अब भी यह दलील देते हैं कि श्रीमती गांधी ने इमरजेंसी तब लागू की जब उन्होंने यह देखा कि भारत के लिए लोकतंत्रीय व्यवस्था अनुकूल नहीं थी, क्योंकि यहाँ की हालत भूख और बेतहाशा बढ़ती आबादी से दिन-पर-दिन गिरती जा रही थी।

इस दलील पर थोड़ा-बहुत विश्वास किया जा सकता था, अगर श्रीमती गांधी व्यक्तिगत शासन के मोह में न पड़तीं। उन्होंने इमरजेंसी के अट्ठारह महीनों में एक भी आर्थिक समस्या को कारगर तरीक़े से हल नहीं किया। असल में हालत ख़राब होती गयी और जो पुलिस-राज उन्होंने लागू किया था उसके बावजूद भी 1976 के मध्य में क़ीमतें बढ़नी शुरू हुई थीं।

कुछ भी हो, इन्सान की ज़रूरतों का जवाब सत्तावाद नहीं है। जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक पक्ष के प्रति सत्तावाद की उपेक्षा से उस चीज़ की उपेक्षा हो जाती है जो मनुष्य के लिए बुनियादी है। सत्तावाद मनुष्य से उसके आदर्शों और मूल्यों को छीन लेता है। जवाहरलाल नेहरू समाजवाद के नैतिक पक्ष को ही अपने विचारों में मुख्य स्थान देते थे। महात्मा गांधी ने कहा था कि अगर साधन ग़लत है तो उसका परिणाम भी विकार-युक्त हो जायेगा।

मैं विश्वास करता हूँ कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लोकतंत्रीय तरीक़े से संभव है और ऐसा परिवर्तन उससे ज़्यादा कल्याणकारी और स्थायी होता है जो बल के द्वारा किया जाये। भारतीय जनता का भी यही विश्वास है और उसने सम्पूर्ण तानाशाही शासन को निकाल कर यह सिद्ध कर दिया है।

मेरे विचार में जनता पार्टी आज भी एक ऐसे मंच की तरह है, जिस पर युवा लोगों के अलावा उसके पाँच घटक अपना-अपना आसन लिये हुए हैं—

जन संघ, भालोद, कांग्रेस (सं०), सी० एफ़० डी० और सोशलिस्ट। हर एक का अपना क्षेत्र है और हर कोई एक-दूसरे को ईर्ष्या से देख रहा है। सरकारऔर पार्टी में पद के लिए कोटा निश्चित है। किसी भी आदमी को उसकी योग्यता या उसकी त्याग-तपस्या से नहीं, उस पर लगे लेबल से परखा जाता है। कोई किस घटक या किस नेता से संबंधित है, यही महत्वपूर्ण है। और लोक-सभा में हर घटक की सदस्य-संख्या का हर बार उल्लेख किया जाता है।

नेतागण इस बात का स्वयं भी अनुभव नहीं करते कि उनकी विजय श्रीमती गांधी और उनके दल के लोगों के कुप्रशासन के कारण हुई है। उत्तर भारत में कोई भी जीत सकता था, उम्मीदवार की असली पार्टी का इससे कोई संबंध नहीं था। उदाहरण के लिए अगर उत्तर प्रदेश की सभी चौरासी सीटें सोशलिस्टों को दे दी जातीं, जिनकी संख्या सबसे कम है, तब उनकी संख्या बढ़ जाती। यह एक ज्वार था जो अपने साथ सबको बहा ले आया। यही बात जनता-नेताओं को सोचनी चाहिए। इसके बजाय वह चुनाव के नतीजे के आधार पर अपनी या अपनी पुरानी पार्टी की लोकप्रियता को वास्तविक मान बैठे हैं। किसी को तो अपनी पुरानी वफ़ादारी और राग-द्वेष से ऊपर उठना चाहिए था। लेकिन किसी ने भी ऐसा नहीं किया—न देसाई, न चरणसिंह, न जगजीवनराम और न ही चन्द्रशेखर या अन्य किसी ने, जिन पर आशाएँ लगायी गयी थीं। कोई भी महान नेता पार्टी को संकुचित और संकीर्ण भावनाओं के दलदल से निकाल सकता था और उसकी शक्ति को देश के पुर्ननिर्माण में लगा सकता था, लेकिन जो लोग इस बार आये हैं वे व्यक्तिगत स्वार्थ और द्वेष में खोये हुए हैं।

असल में नेताओं की अधिकांश शक्ति और समय पार्टी को संगठित बनाये रखने में ही लग जाता है। लेकिन पार्टी सिर्फ़ एक वाहन है, कुछ काम करने का एक साधन है, स्वयं में लक्ष्य नहीं है। इन लोगों में काम करने की शक्ति के अभाव के कारण ही श्रीमती गांधी को विश्वसनीयता मिल रही है। लोग उनके पास वापस नहीं जाना चाहते हैं और न तानाशाही के अँधेरे, भयानक और डरावने दिन वापस लाना चाहते हैं। लेकिन 'जनता' के नेता इस बात की जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं कि लोग श्रीमती गांधी की ओर ही चले जायें।

प्रश्न यह है कि इस स्थिति के बाद अब हम कहाँ जायें? हम भयंकर विगत और संभावित भविष्य के बीच फँस गये हैं। हम गेंद की तरह नहीं रह सकते कि कांग्रेस धक्का दे तो जनता वालों के हाथों में चले जायें या उधर से धक्का दिया जाये फिर इधर चले आयें। इसके लिए कोई विकल्प होना चाहिए। वह क्या है? मेरा विचार ऐसा है कि भारत ही ऐसा देश है जो पूँजीवादियों और साम्यवादियों दोनों को यह दिखा सकता है कि आज़ादी और रोटी दोनों साथ-साथ अर्जित की जा सकती हैं। काश सिर्फ़ सही नेतृत्व मिलता!

दुखद स्थिति यह है कि जनता-नेताओं ने उस क्रांति के अर्थ को अभी तक नहीं समझा है जो लोगों द्वारा मार्च 1977 के माध्यम से लायी गयी। वही पुराने लोग लौट आये हैं जो उसी पुराने घिसे-पिटे ढंग से पुराने जर्जर ढाँचे को फिर से खड़ा करना चाहते हैं, क्योंकि वह ढाँचा सड़ा-गला होने पर भी सुरक्षा प्रदान करता है। सिद्धांतों के आधार पर पार्टियों के आपसी समझौते को सभी पसन्द करते। दक्षिणपंथी और वामपंथी में से किसी एक का स्पष्ट चुनाव करने से राष्ट्र को भावी कार्यक्रम समझने में आसानी रहती और तब लोग प्रमुख आर्थिक और राजनीतिक विकल्पों की ज़्यादा गहराई से छानबीन करते। लेकिन एक ऐसेदे श में

जहाँ वामपंथी तो सरकार के अंग हों और जहाँ दक्षिणपंथी समाजवाद का नारा लगाते हों, ध्रुवीकरण संभव नहीं है। हो सकता है कि हमें तब तक इन्तज़ार करना पड़े जब तक नेतृत्व की मौजूदा पीढ़ी न टल जाये।

मैं निराशावादी नहीं हूँ। मैं चिन्तित हूँ। मुझे शंका है कि समाज का जैसा ढाँचा आज है क्या वह फलदायक हो सकता है या इसके कर्णधार—चाहे वे नेता, मंत्री, बुद्धिजीवी, नौकरशाह या पत्रकार हों—देश में सुख समृद्धि लाने में पर्याप्त रूप से समर्थ हैं या ऐसा करने के प्रति निष्ठावान हैं ?

लेकिन मुझे अपनी जनता—साधारण जनता, 'अशिक्षित', गृहविहीन, ग़रीब, मज़दूर, भूमिहीन, दयापूर्ण, तिरस्कृत जनता—पर पूरा विश्वास है। मैं अपनी आँखें बंद करता हूँ और देखता हूँ कि तानाशाही के शासन को उखाड़ फेंकने पर उन्होंने कितनी खुशियाँ मनायी थीं, किस तरह उन्होंने यह साबित कर दिखाया था कि देश, उसके वैभव, उसके मूल्यों को जीता नहीं जा सकता।

और मैं उनकी आवाज़ को और तेज़ होती और मुझे बिना मुक़दमा चलाये नज़रबन्द करने आयी पुलिस के आदमियों के पैरों की आहट को और धीमी और दूर होती सुन रहा हूँ...।

परिशिष्ट I

जेलों के सुपरिंटेंडेंट और प्रबन्ध के मैनुअल से उद्धरण

अनुच्छेद II—मुक़दमा चल रहे क़ैदी

567-बी. मुक़दमा चल रहे क़ैदी दो श्रेणियों के होंगे अर्थात् (1) वह जो सामाजिक पद, शिक्षा या जीवन की आदत के अनुसार ऊँचे रहन-सहन के आदी रहे हैं, और (2) दूसरे क़ैदी, अर्थात् एक श्रेणी सज़ा पाये क़ैदियों की श्रेणी 'ए' और 'बी' के अनुरूप होगी और दूसरी श्रेणी 'सी' के अनुरूप होगी। मुक़दमा चल रहे क़ैदी को किसी भी सक्षम कोर्ट में लाये जाने से पहले श्रेणी का निर्धारण पुलिस-स्टेशन के ऑफ़िसर-इंचार्ज की मर्ज़ी पर निर्भर होगा। जब वह कोर्ट में पेश कर दिया जाये तब उसकी श्रेणी का निर्धारण उसी संबंधित कोर्ट द्वारा किया जायेगा जो डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के संशोधित आदेशों के अधीन होगा।

अनुच्छेद III—श्रेणी 'ए' में प्रविष्ट क़ैदियों के लिए नियम

567-सी. 1. निवास-स्थान—जहाँ भी ऐसा निवास-स्थान उपलब्ध है, 'ए' श्रेणी के क़ैदी अन्य क़ैदियों से अलग रखे जायेंगे और उन्हें सेलों में या संबंधित बैरकों में रखा जायेगा जो उनके लिए विशेष रूप से बनी होंगी, बशर्ते उन्हें अलग न रखा जाये सिवा उन मामलों के जहाँ ऐसी व्यवस्था जेल-दंड के रूप में दी गयी हो।

2. फ़र्नीचर—इन्हें वैसा ही फ़र्नीचर दिया जायेगा जैसा 'बी' श्रेणी के क़ैदियों को दिया जाता है, लेकिन वे इस फ़र्नीचर के अतिरिक्त अन्य चीज़ें उचित सीमा के अंदर अपने ख़र्च पर रख सकेंगे। जहाँ इसकी सुविधा है उन्हें बिजली का अपना टेबुल फ़ैन इस्तेमाल करने की भी इजाज़त दी जायेगी।

3. बिस्तर—वह अपना बिस्तर इस्तेमाल कर सकेंगे, बशर्ते वह जेल में लाने से पहले विसंक्रमित किया हुआ हो।

4. रोशनी—उन्हें 10 बजे रात तक पढ़ने के लिए एक लैम्प को इस्तेमाल करने की इजाज़त दी जायेगी।

5. व्यायाम—वह खुली हवा में रोज़ाना ऐसा व्यायाम किया करेंगे जैसा कि चिकित्सा-अधिकारी उनके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उचित समझेगा।

6. सफ़ाई और नहाने का इंतज़ाम—उनके लिए पर्दे में नहाने, शौच आदि की समुचित सुविधा दी जायेगी। समय-समय पर स्थानीय प्रशासन जैसा नियत करेगा उसके अनुसार उनको अपना शरीर साफ़ करने और कपड़े धोने के लिए साबुन का इस्तेमाल करने दिया जायेगा। फिर भी जेल का सुपरिंटेंडेंट उचित सीमा तक दाँतों का ब्रश और दाँतों का पाउडर और सफ़ाई के अन्य सामान जैसे सिर का तेल, हाथ का शीशा, कंघा आदि के इस्तेमाल की इजाज़त दे सकेगा, बशर्ते इस सामान का इंतज़ाम क़ैदी खुद करे या उसके दोस्त करें।

7. सिर के बाल कटवाना और दाढ़ी बनवाना—उनको सिर पर बाल रखने व दाढ़ी रखने की इजाज़त दी जायेगी। जेल-सुपरिंटेंडेंट उनको दिन में एक बार दाढ़ी बनाने और अपना सेफ़्टी रेज़र इस्तेमाल करने की इजाज़त दे सकता है, बशर्ते यह स्टोर में रखा जाये और क़ैदी के पास न रखा जाये।

8. खाना पकाने का इंतज़ाम—जहाँ 'ए' श्रेणी के बहुत-से क़ैदी एक जगह पर क़ैद हों वहाँ उनको एक अलग रसोई-घर देने की कोशिश की जानी चाहिए। जहाँ ऐसे क़ैदी अलग-अलग रखे गये हों वहाँ उनको अपना खाना खुद पकाने की इजाज़त दी जा सकती है, बशर्ते इसके लिए उचित सावधानी और पूरे काम का उचित ध्यान रखा गया हो।

इनको वैसे ही बरतन दिये जायेंगे जैसे कि 'बी' श्रेणी के क़ैदियों को दिये जाते हैं और अगर वह चाहें तो उनको खाने के अपने बरतनों का इस्तेमाल करने दिया जायेगा।

9. खुराक—इनको वही खुराक दी जायेगी जो 'बी' श्रेणी के क़ैदियों को दी जाती है। जिन लोगों को अपना खाना खुद पकाने की इजाज़त मिली होगी उनको निर्धारित मात्रा के अनुसार जिंस दी जा सकती है।

इस खुराक के अलावा उन्हें सादा क़िस्म की दूसरी चीज़ें भी दी जा सकती हैं, बशर्ते इनकी ख़रीद के लिए धन जेल-सुपरिंटेंडेंट के पास जमा कर दिया गया हो।

अलकोहल, नशे की दवाइयाँ और विलास की चीज़ों की मंज़ूरी नहीं दी जायेगी। उन्हें अपने खर्च पर दो सिगरेट या चार बीड़ी सवेरे और शाम के खाने के बाद पीने की इजाज़त दी जा सकती है। सिगरेट या बीड़ी, जो भी हो, उसी समय पी ली जानी चाहिए और उसे बाद में पीने के लिए नहीं रखा जाना चाहिए।

10. पहनने के कपड़े—अगर वे चाहें तो उनको अपने कपड़े पहनने की इजाज़त दी जा सकती है। अन्यथा उन्हें पहनने के वही कपड़े दिये जायेंगे जो 'बी' श्रेणी के क़ैदियों के लिए निर्धारित हैं।

राजनीतिक निशान के कपड़े, जैसे गांधी टोपी और काली पगड़ी, पहनना सख्त मना है।

11. क़ैदियों के लिए काम—क़ैदियों की क्षमता, स्वभाव, पूर्व-जीवन के तरीक़े और पूर्ववृत्त पर उचित ध्यान देते हुए उन्हें काम दिया जायेगा।

12. पढ़ने की सुविधाएँ—पढ़ने के संबंध में उन पर वही नियम लागू होंगे जो 'बी' श्रेणी के क़ैदियों पर लागू होते हैं, सिवाय इसके कि वे तीन किताबों के बजाय अपनी छह किताबें एक साथ रख सकेंगे और अपने ख़र्च पर ऐसे रोज़ाना के अख़बार रख सकेंगे जो सरकार द्वारा विधिवत् अनुमोदित होंगे।

13. चिट्ठियाँ और इंटरव्यू—उन्हें सप्ताह में एक चिट्ठी लिखने और प्राप्त करने और एक बार भेंट करने की इजाज़त दी जा सकेगी। अत्यावश्यक अवसरों पर, जैसे किसी क़ैदी के परिवार में मृत्यु होने पर या गंभीर रूप से बीमार पड़ने पर, इस नियम में जेल-सुपरिंटेंडेंट की मर्ज़ी के आधार पर ढील दी जा सकेगी। जो लोग निश्चित समय में क़ैदी से मिलने आयेंगे उनकी संख्या दो तक सीमित होगी। इन भेंटों में राजनीतिक प्रश्नों पर बहस करने की इजाज़त नहीं दी जायेगी। सभी चिट्ठियों में विषय-वस्तु बिलकुल निजी बातों के बारे में सीमित होगी और इनमें जेल के प्रशासन और व्यवस्था, अन्य क़ैदियों या राजनीतिक मामलों का कोई भी उल्लेख नहीं होगा।

इंटरव्यू में की गयी बातचीत या क़ैदियों से प्राप्त चिट्ठियों का सार प्रकाशित होने पर यह अधिकार वापस लिया या ख़त्म किया जा सकेगा।

14. सफ़ाई वग़ैरह का काम—उन्हें सफ़ाई वग़ैरह का काम नहीं करना होगा और न ऐसे काम के लिए जो उनके लिए किया गया होगा, उन्हें कोई ख़र्च देना होगा। यह काम जेल के नौकर-चाकर करेंगे जिनका इस्तेमाल 'ए' श्रेणी के क़ैदियों को निजी नौकरों की तरह नहीं करना चाहिए।

15. हथकड़ी और बेड़ियों का इस्तेमाल—उनको सज़ा के अलावा या निकल भागने से रोकने या जेल के किसी कर्मचारी पर हमला करने की स्थिति को छोड़ कर हथकड़ी या बेड़ी नहीं पहनायी जायेंगी।

16. सज़ा—सज़ा देने के संबंध में सामान्य नियम उन पर लागू होंगे, सिवाय इसके कि उनको कोड़े मारने की सज़ा गवर्नर और उसकी परिषद की मंजूरी लिये बिना नहीं दी जायेगी। जेल-सुपरिंटेंडेंट जो भी सज़ाएँ देगा वह तुरंत इंस्पेक्टर-जनरल को सूचित की जायेंगी।

दुर्व्यवहार करने पर जेल-सुपरिंटेंडेंट क़ैदियों के व्यक्तिगत अधिकार वापस ले सकता है। इस सज़ा की अवधि एक महीने से ज्यादा हो तब इंस्पेक्टर-जनरल की मंजूरी लेनी ज़रूरी होगी। लेकिन इस श्रेणी से हटाने का अधिकार गवर्नर और उसकी मंत्रि-परिषद को ही होगा।

17. अनुशासन—ये हमेशा अनुशासित तरीक़े से आचरण करेंगे लेकिन ये लोग क़तार बनाकर नहीं चलेंगे और न खाने के लिए इन्हें लाइन बनानी पड़ेगी। वे जेल-सुपरिंटेंडेंट, डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट और मेडिकल ऑफ़िसर और अन्य सरकारी और ग़ैर-सरकारी जेल-निरीक्षकों के

आने पर सावधान होकर खड़े हो जायेंगे। ज़ोरों से बात करना, गाना या लड़ाई-झगड़ा करना मना है। लेकिन काम करने के समय से पहले या बाद में क़ैदियों को धीमे स्वर में बातचीत करने की इजाज़त दी जा सकेगी। अन्य मामलों में इन क़ैदियों पर वही नियम लागू होंगे जो साधारण क़ैदियों पर लागू होते हैं।

18. तबादले—इन पर तबादले के वही नियम लागू होंगे जो 'बी' श्रेणी के क़ैदियों पर लागू होते हैं।

583. (1) हर क़ैदी को शौच में दस मिनट या जितनी देर तक ज़रूरी हो उतनी देर तक रहने दिया जायेगा। हर संडास में छह आदमियों के लिए एक सीट के हिसाब से जगह होनी चाहिए जो इसका इस्तेमाल करेंगे और हर संडास के साथ हाथ धोने के लिए संडास की चार सीटों पर एक कमरा होना चाहिए।

(2) शौच-परेड पर इंचार्ज-वार्डर का नियंत्रण रहेगा और जितनी जगहें ख़ाली होंगी उतने ही क़ैदियों के एक बार अंदर जाने दिया जायेगा।

584. शौच-परेड ख़त्म होने पर सवेरे के खाने के लिए खाना मिलने वाले चबूतरे पर ले जाया जायेगा, जहाँ अनुच्छेद 591 में दी गयी प्रक्रिया के अनुसार व्यवस्था की जायेगी।

585. जब कभी क़ैदियों को जेल में एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जायेगा या वे झुंड में बैठे या खड़े होंगे तब उन मौक़ों को छोड़कर जब वह खाना खा रहे होंगे या निरीक्षण के लिए लाइन बनाकर खड़े किये हुए होंगे, उनको जोड़ा बनाकर लाइन में ले जाया जायेगा और वे कमान के शब्द या संकेत के अनुसार खड़े होंगे, आगे बढ़ेंगे, रुकेंगे या बैठ जायेंगे। इन परेडों में जो संकेत दिये जायेंगे वे घंटा बजाकर दिये जायेंगे और इनका पालन उसी समय जेल में सभी जगह किया जायेगा।

586. क़ैदियों को डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट या उससे ऊँचे अधिकारी को उस अफ़सर के कमान के शब्द पर सलाम करना होगा जिसके अधीन ये होंगे, ये कमान के आदेश हैं :

"रुक जाओ"—अगर मार्च कर रहा हो तो निश्चल खड़ा हो जाना।

"उठ जाओ"—बैठे से उठ कर खड़ा होना।

"सावधान"—अगर काम कर रहा हो तो काम बन्द करना।

जब सलाम की प्रक्रिया का समापन करना होगा तब निम्नलिखित शब्दों का इस्तेमाल किया जायेगा :

"चलो"—आगे बढ़ना।

"बैठ जाओ"—बैठ जाने की स्थिति में आना।

"काम करो"—काम फिर करने लगना।

587. सवेरे वाला खाना खाने के बाद, क़ैदियों को अपने हाथ और खाने वाले बरतन धोने की इजाज़त दी जायेगी और उसके बाद टोली-रजिस्टर के अनुसार टोली में कर दिया जायेगा। हर टोली उसके लिए ज़िम्मेदार अफ़सर को सौंप दी जायेगी और काम करने की जगह पर ले जायी जायेंगी।

915. (1) जो लोग अस्पताल में बीमार पड़े हैं उनको छोड़ कर भारतीय क़ैदियों के लिए निम्नानुसार खाना तीन बार दिया जायेगा :

सवेरे का खाना—आधी रोटी, आधा तेल और पूरी दाल।
दोपहर का खाना—भुना या उबला हुआ चना।
शाम का खाना—बाक़ी रोटी और तेल और पूरी सब्ज़ी।

(2) सवेरे और दोपहर के खाने में मेडिकल ऑफ़िसर की मर्ज़ी के अनुसार एक-दूसरे के साथ अदल-बदल की जा सकती है।

996. वार्डों, सेलों और अन्य कमरों में जहाँ क़ैदी रखे जायेंगे, रहने की जगह की नाप आम तौर पर खुली जगह व घनाकार जगह और पास में रोशनी व हवा आने-जाने की जगह के मानदंड के अनुसार होगी जैसा कि सारणी में दिखाया गया है (पृष्ठ 114 पर)।

999. हर वार्ड और अन्य कमरों के, जो क़ैदियों के सोने की जगह के रूप में इस्तेमाल किये जायेंगे, दरवाज़े पर निम्नलिखित वग़ैरा लिखा रहेगा :

(क) जिन क़ैदियों के लिए जगह का इस्तेमाल होगा उनकी श्रेणी,

(ख) वर्ग-फ़ुट में फ़र्श का क्षेत्रफल,

(ग) हवा आने-जाने के लिए ऊपरी जगह घन फ़ुट में, और

(घ) वग फ़ुट या घन फ़ुट के आधार पर—इनमें जो भी कम हो—क़ैदियों की संख्या जिनको वहाँ रखा जा सकता है।

1000. हर वार्ड या दूसरे कमरों में जहाँ क़ैदियों को रात में रखा जायेगा, ईंटों के चिने हुए चबूतरे बने होंगे, जिनकी संख्या नियत मानदंड के आधार पर निर्धारित संख्या के अनुसार होगी। हर बथ साढ़े छह फ़ीट लम्बी, पौने तीन फ़ीट चौड़ी और अट्ठारह फ़ीट ऊँची होगी और इसका ढलान सिर की तरफ़ से होगा। हर बर्थ का सिरा दूसरी बर्थ के सिरे की तरफ़ होगा। हर दो बर्थों के बीच दो फ़ीट से कम का अन्तर नहीं होगा।

मीसा नज़रबंदों के लिए नियम

रहने की जगह—जेल में नज़रबंदों को सेलों या वार्डों, अपेक्षाकृत वार्डों में रखा जायेगा; लेकिन अगर इन्हें पुलिस की हिरासत में रखा जायेगा तब इन्हें दूसरे आदमियों से अलग हवालात में बंद रखा जायेगा; लेकिन अगर और भी नज़रबंद हैं तो एक-दूसरे के साथ आज़ादी के साथ मिलने की इजाज़त रहेगी।

जेलों का इंस्पेक्टर-जनरल, जेल का सुपरिंटेंडेंट या पुलिस-सुपरिंटेंडेंट, जिसके अधिकार-क्षेत्र में पुलिस की हवालात है, किसी कारण से उचित समझता है तब वह किसी ख़ास नज़रबंद या नज़रबंदों की श्रेणी को अलग रख सकता है। जहाँ नज़रबंदों को गर्मियों में बाहर खुले में सोने का इंतज़ाम है, या ऐसा इंतज़ाम हो सकता है, वहाँ उन्हें गर्मियों में बाहर खुले में सोने की इजाज़त दी जा सकती है।

हवालात—नज़रबंदों को आमतौर में रात में हवालात में नहीं बंद किया जायेगा। लेकिन अगर सुपरिंटेंडेंट नज़रबंद के संदेहास्पद आचरण के कारण ऐसा करना उचित समझता है तो वह नज़रबंद को रात में हवालात में बंद कर सकता है और अपने खाते में ऐसा करने के कारणों को दर्ज कर सकता है। जेल के अहाते

कैदी की श्रेणी और जेल की जगह	वार्न या वर्कशाप			सेल			अस्पताल		
	जमीन का क्षेत्रफल, वर्ग फुट में	छत और फर्श के बीच की जगह, घनफुट में	पास से रोशनी व हवा आने-जाने की जगह, घनफुट में	जमीन का क्षेत्रफल, वर्ग फुट में	छत और फर्श के बीच की जगह, घनफुट में	पास से रोशनी व हवा आने-जाने की जगह, घनफुट में	जमीन का क्षेत्रफल, वर्ग फुट में	छत और फर्श के बीच की जगह, घनफुट में	पास से रोशनी व हवा आने-जाने की जगह, घनफुट में
मैदानों में स्थित जेलें									
यूरोपीय	80	1,200	36	120	1,800	56	132	1,980	40
भारतीय	45	540	12	96	1.248	15	54	702	12
पहाड़ों पर स्थित जेलें									
यूरोपीय	54	648	10	100	1,200	15	90	1,080	15
भारतीय	36	432	6	75	900	10	36	648	10

का बाहरी गेट चौबीसों घंटे बंद रहेगा।

पहनने के कपड़े और बिस्तर—हर नज़रबंद खुद के कपड़े पहनेगा और उसे रिश्तेदार, मगर सुपरिंटेंडेंट की इजाज़त से, और अधिक कपड़े और बिस्तर भेज सकेंगे। जो नज़रबंद अपने लिए कपड़ों और बिस्तर का इंतज़ाम नहीं कर सकता है उसे इस शर्त पर कपड़े और बिस्तर दिये जायेंगे कि वह निजी कपड़े और बिस्तर का इस्तेमाल नहीं कर सकेगा।

अनुशासन और तलाशी (1) अनुशासन के लिए नज़रबंदों पर सिविल पेंशनरों से संबंधित ऐसे नियम लागू होंगे जो इस आदेश या इस संबंध में प्रशासक द्वारा दिये गये कोई अन्य विशेष आदेशों के प्रतिकूल नहीं है।

(2) जेल के डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट या असिस्टेंट-सुपरिंटडेंट, जिसे भी सुपरिंटेंडेंट नियत करे, द्वारा हर नज़रबंद और उसके सेल या वार्ड की कम-से-कम एक सप्ताह में एक बार तलाशी ली जाया करेगी। इस बात का विशेष ध्यान रखा जायेगा कि यह तलाशी पूरी ली जाये और तलाशी की रिपोर्ट डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट या असिस्टेंट-सुपरिंटेंडेंट की रिपोर्ट-बुक में दर्ज की जाये। इंटरव्यू से पहले और उसके बाद भी या किसी और समय अगर सुपरिंटेंडट इसे ज़रूरी समझें तो हर नज़रबंद की तलाशी ली जायेगी।

इंटरव्यू (1) लिखित आवेदन-पत्र के सिवाय और उस पर दिल्ली के ज़िला मजिस्ट्रेट या उस ज़िले के मजिस्ट्रेट की, जिसके अधिकार-क्षेत्र में नज़रबंद अमुक समय पर नज़रबंद किया गया, विशिष्ट मंज़ूरी के सिवाय किसी भी क़ैदी को बाहर के किसी भी आदमी से मिलने की इजाज़त नहीं दी जायेगी। यह इजाज़त निम्नलिखित शर्तों के आधार पर दी जायेगी, अर्थात् :

(अ) क़ैदी के परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों को सप्ताह में एक बार और हर बार एक घंटे तक मिलने की इजाज़त दी जायेगी।

(आ) एक बार में कोई भी दो व्यक्ति मिल सकेंगे।

(इ) यह भेंट जेल के एक अफ़सर के अलावा एक और अफ़सर के सामने होगी जो दिल्ली के जिला मजिस्ट्रेट, या जसा भी हो, उस जिले के मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किया गया होगा जिसके अधिकार-क्षेत्र में क़ैदी को नज़रबंद किया गया था और ये दोनों अधिकारी भेंट के दौरान सारी बात-चीत को सुन रहे होंगे।

(ई) नज़रबंदी के सिलसिले में क़ानूनी सलाह के लिए वकीलों से भेंट जेल के एक अफ़सर के अलावा एक और अफ़सर के सामने होगी जो दिल्ली के ज़िला मजिस्ट्रेट या, जैसा भी हो, उस ज़िले के मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किया गया होगा जिसके अधिकार-क्षेत्र में क़ैदी को नज़रबंद किया गया था और ये दोनों अधिकारी भेंट के दौरान सारी बातचीत सुन रहे होंगे।

(उ) नज़रबंदी के सिलसिले के अलावा अन्य क़ानूनी कार्रवाइयों के बारे में (जिसमें आयकर, बिक्रीकर, या अन्य करों का विवरण भरना शामिल है) क़ानूनी सलाह के लिए वकीलों से भेंट और क़ानूनी कार्रवाइयों की सच्चाई का पता लगाने के बाद जेल के एक अफ़सर के अलावा एक और अफ़सर के सामने होगी जो, दिल्ली के जिला मजिस्ट्रेट या, जैसा भी हो, उस जिले के मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किया गया होगा जिसके अधिकार-क्षेत्र में क़ैदी को नज़रबंद किया गया था। हर बार भेंट की अवधि दो घंटे से ज्यादा नहीं होगी।

(2) उप-अनुच्छेद (अ) में जो कुछ कहा गया है उसके बावजूद दिल्ली के ज़िला मजिस्ट्रेट या उस ज़िले के मजिस्ट्रेट द्वारा जिसके अधिकार-क्षेत्र में क़ैदी को नज़रबंद किया गया था, सप्ताह में एक से अधिक बार परिवार के सदस्यों और संबंधियों से मिलने की इजाज़त मानवता के आधार पर विशेष परिस्थितियों में जैसे क़ैदी के गंभीर रूप से बीमार पड़ने पर या जब ज़िला मजिस्ट्रेट/नज़रबंद करने वाला अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि अधिक बार भेंट करने के लिए वैध आधार है, तब दी जायेगी। इस तरह की भेंट पर भी उप-अनुच्छेद (आ) और (इ) में दी गयीं शर्तें लागू होंगी।

(3) ज़िला मजिस्ट्रेट की मर्ज़ी के आधार पर इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस या डिप्टी-इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस सामान्य या विशेष आदेश द्वारा किसी भी पुलिस-अधिकारी को या तो अकेले या किसी दूसरे पुलिस-अधिकारी के साथ और अपने अधीनस्थ पुलिस-अधिकारी को साथ लेकर या अकेले ही किसी भी ऑफ़िसर से भेंट करने के लिए अधिकार दे सकता है, बशर्ते :

(अ) इस तरह जिस अफ़सर या जिन अफ़सरों को अधिकार दिया गया होगा वह क़ैदी से ऐसी जगह में मिलेंगे जो इस काम के लिए जेल-सुपरिंटेंडेंट द्वारा दी गयी होगी। इस भेंट के लिए जाते समय संबंधित अफ़सर के साथ वह एस्कोर्ट रहेगा जो सुपरिंटेंडेंट संबंधित अफ़सर की सुरक्षा के लिए ज़रूरी समझता है। यह एस्कोर्ट, अगर अफ़सर ऐसा चाहता है तो, क़ैदी से भेंट करते समय दूर पर खड़ा रहेगा लेकिन दिखायी पड़ता रहेगा।

(आ) इस तरह जिस अफ़सर या अफ़सरों को अधिकार दिया गया होगा वह जेल अधिकारी की उपस्थिति के बग़ैर इसके लिए लिखित आवेदन-पत्र देने पर मिल सकेगा।

चिट्ठियाँ और सेंसरशिप—(1) विधानमंडल या मैट्रोपोलिटन कौंसिल के स्पीकर या अध्यक्ष को विधायक या मैट्रोपोलिटन-क़ैदी की चिट्ठी और स्पीकर या अध्यक्ष की विधायक या मैट्रोपोलिटन-क़ैदी को चिट्ठी और क़ैदी और कचहरी के बीच पत्रव्यवहार को सेंसर करने की ज़रूरत नहीं है और ऐसी चिट्ठियाँ सुपरिंटेंडेंट द्वारा सीधे ही संबंधित व्यक्ति को चौबीस घंटे के अंदर भेज दी जायें। ऐसी चिट्ठियाँ किसी भी क़ैदी को विधानमंडल या मैट्रोपोलिटन कौंसिल से प्राप्त चिट्ठी और कचहरी की किसी भी क़ैदी को चिट्ठी उसी दिन दे दी जानी चाहिए जिस दिन वह प्राप्त हो।

(2) उप-अनुच्छेद (1) में उल्लिखित को छोड़कर हर क़ैदी को सरकारी खर्च पर एक सप्ताह में तीन बार अपने परिवार और संबंधियों को चिट्ठी लिखने और किसी भी संख्या में चिट्ठी प्राप्त करने की इजाज़त दी जायेगी। क़ैदी द्वारा लिखी गयी चिट्ठियाँ (फ़ार्म बी में), जो इस आदेश के साथ संलग्न है, लिखी जायेंगी और नियत लंबाई से ज़्यादा लंबी नहीं होंगी। आवश्यक फ़ार्म जेल-सुपरिंटेंडेंट द्वारा सप्लाई किया जायेगा। परिवार और संबंधियों को चिट्ठियाँ जाँच के बाद आम तौर पर भेज दी जायेंगी। अगर इन चिट्ठियों में कोई आपत्ति-जनक बात लिखी होगी तो उन्हें आगे नहीं भेजा जायेगा और क़ैदी को वापस दे दी जायेंगी। क़ैदी उस आपत्तिजनक भाग को निकालकर चिट्ठी फिर से लिख सकता है।

(3) उप-अनुच्छेद (2) में उल्लिखित संख्या की सीमा के बाहर भी अत्या-वश्यक होने पर सुपरिंटेंडेंट अपनी मर्ज़ी के आधार पर क़ैदी को चिट्ठी लिखने की

इजाज़त दे सकता है और जब कभी क़ैदी ऐसी जेल में बंद हैं जो उसके साधारण निवास-स्थान से दूर है तब ऐसी हालत में सुपरिंटेंडेंट अपनी मर्ज़ी का इस्तेमाल क़ैदी के पक्ष में करेगा।

(4) वकीलों को चिट्ठियाँ जाने दी जायेंगी अगर इनमें सिर्फ़ क़ानूनी सलाह की बातें लिखी होंगी। ये चिट्ठियाँ अर्ध-क़ानूनी विशेषज्ञों, जैसे आयकर के मामलों वाले वकीलों, को भी लिखी हुई हो सकती हैं। अगर इनमें कोई आपत्ति-जनक बात लिखी होगी तो इनका निबटान भी उप-अनुच्छेद (2) के अनुसार किया जायेगा।

(5) चिट्ठियों की जाँच-पड़ताल करते समय जेल के अधिकारी इस बात का ध्यान रखेंगे कि :

(क) चिट्ठियों को आगे भेजने या क़ैदियों को डिलीवर करने में कोई अनावश्यक देरी न हो।

(ख) जो चिट्ठियाँ डिलीवर की जायें या आगे भेजी जायें उनमें ऐसी कोई बात नहीं लिखी हुई हो जो आपत्तिजनक हो।

(6) दिल्ली प्रशासन द्वारा क़ैदी को लिखी गयी चिट्ठियाँ और उनके जवाब की संख्या को क़ैदी द्वारा लिखी गयी चिट्ठियों की संख्या को इस आदेश के अधीन निर्धारित करते समय शामिल किया जायेगा।

(7) जिस प्रदेश में क़ैदी नज़रबंद है उस प्रदेश को छोड़कर केंद्र या प्रदेश सरकार को क़ैद द्वारा लिखी गयी चिट्ठियाँ उस प्रदेश की सरकार के माध्यम से भेजी जायेंगी जहाँ वह क़ैद है। इन चिट्ठियों में उप-अनुच्छेद (1) में उल्लि-खित चिट्ठियों को शामिल नहीं किया जायेगा।

(8) कोई भी चिट्ठी, अखबार या अन्य पत्रव्यवहार क़ैदी को सुपरिंटेंडेंट के माध्यम या ऐसे किसी अन्य अफ़सर के माध्यम के बिना, जैसे प्रशासक जो इस कार्य के लिए सामान्य या विशेष आदेश द्वारा नियत किया जायेगा, न तो दी जायेगी और न उसकी कोई भी चिट्ठी उक्त माध्यम के बिना आगे भेजी जायेगी।

(9) जेल में नज़रबन्द क़ैदियों की सभी चिट्ठियाँ और उनको भेजी गयी चिट्ठियाँ संबंधित सुपरिंटेंडेंट द्वारा जाँच ली जायेंगी और दिल्ली प्रशासन के विशेष आदेश के अधीन सुपरिंटेंडेंट द्वारा संबंधित ज़िले के पुलिस-सुपरिंटेंडेंट को सीधे भेज दी जाया करेंगी जो अपनी मर्ज़ी के अनुसार या तो बिना कोई देर किये आगे भेज देगा या रोक लेगा। शक की स्थिति में पुलिस-सुपरिंटेंडेंट मामले को डिप्टी-इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस, ख़ुफ़िया-विभाग या अन्य अफ़सर के पास जो इस काम के लिए नियत होगा, भेज देगा।

(10) अगर किसी चिट्ठी में जो क़दी द्वारा लिखी गयी होगी या उसे दी जाने वाली होगी, सुपरिंटेंडेंट को जेल के अनुशासन की दृष्टि से कोई आपत्तिजनक बात लिखी मिल जायेगी तो वह उसे निकाल देगा या निकाल दिये जाने के लिए लिख देगा और जो कुछ किया गया है उसकी सूचना संबंधित अधिकारी को ऐसी चिट्ठी भेजते समय देगा।

(11) अग्रेषित की जाने वाली सभी चिट्ठियों पर जो क़ैदी द्वारा लिखी गयी होंगी या उसको दी जाने वाली होंगी संबंधित अधिकारी द्वारा तारीख सहित दस्तखत किये जायेंगे जिसने उनका निबटान किया हुआ होगा।

(12) हर मामले में जब चिट्ठी को रोका गया होगा, क़ैदी को चिट्ठी रोके जाने के बारे में सुपरिंटेंडेंट द्वारा सूचना दी जायेगी। रोकी गयी सभी चिट्ठियाँ

डिप्टी-इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस के पास भेजी जायेंगी। खुफिया-विभाग या अन्य अफ़सर जो इस काम के लिए प्रशासक द्वारा नियत होगा, इन चिट्ठियों को या तो अपने पास रोक लेगा या नष्ट कर देगा।

(13) क़ैदियों को दिये जाने या उनके द्वारा भेजे जाने वाले तार के निबटान के बारे में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जायेगी : जब कभी दिल्ली प्रशासन को तार भेजा जायेगा या वहाँ से आयेगा तब उसे सीधे ही भेज दिया जायेगा, बशर्ते केन्द्रीय सरकार के साथ पत्र-व्यवहार में दिल्ली प्रशासन हमेशा मध्यस्थ का काम करेगा। यह सुनिश्चित करना सुपरिंटेंडेंट का कर्तव्य होगा कि क़ैदी द्वारा वही तार भेजा या प्राप्त किया जायेगा जिसमें ऐसी कोई बात लिखी होगी जिसे जल्दी भेजना या प्राप्त करना उचित होगा। सुपरिंटेंडेंट क़ैदी के किसी भी तार को, जिसमें तार में लिखा गया पिटीशन शामिल है, तार के बजाय डाक से भेज सकता है।

(14) क़ैदी जो भी पत्र भेजेगा (जिनमें तार शामिल हैं), उनके साथ एक पर्ची पर उसका नाम और पता और संबंध, अगर कोई है, जिसे चिट्ठी भेजी जा रही है और चिट्ठी या तार में लिखे हर व्यक्ति का नाम, पता और संबंध लिखेगा, ये पर्चियाँ पुलिस-सुपरिंटेंडेंट, ख़ुफिया-विभाग या प्रशासक द्वारा इस काम के लिए नियत अफ़सर को भेज दी जायेंगी जो अगर यह उचित समझता है कि चिट्ठी लिखने वाले को उसके साथ पत्र-व्यवहार करने दिया जाये तो सुपरिंटेंडेंट या संबंधित अधिकारी को उसकी जानकारी के लिए सूचित कर देगा।

(15) क़ैदियों द्वारा लिखी गयी या उनको भेजी गयी चिट्ठियों में घरेलू बातें या क़ैदी या उसके संबंधी के कुशल-क्षेम और निजी बातें ही लिखी होंगी। जिन चिट्ठियों में राजनीतिक या साम्प्रदायिक बातें लिखी होंगी उनको रोक लिया जायेगा।

लिखने का सामान—(1) सभी क़ैदियों को उनके ख़र्च पर लिखने का सामान दिया जायेगा। कागज़ नीचे लिखी शर्तों के आधार पर सप्लाई किया जायेगा :

(क) यह एक बार में थोड़ी मात्रा में सप्लाई किया जायेगा और क़ैदी को दिये जाने के पहले इसे गिन लिया जायेगा और इस पर जेल की मुहर लगा दी जायेगी।

(ख) ज़्यादा कागज़ तब तक सप्लाई नहीं किया जायेगा जब तक पहले सप्लाई किया गया कागज़ दिखा न दिया जाये या यह न देख लिया जाये कि उसका सही तरीक़े से इस्तेमाल हुआ है।

(2) छात्र नज़रबन्दों को जेल में अपनी पढ़ाई जारी रखने की पूरी सुविधा दी जायेगी।

(3) जो नज़रबन्द हिन्दी सीखना चाहते हैं, उनको पढ़ाई के दौरान सरकारी ख़र्च पर स्लेट, पेंसिल, तख़्ती, दावात और कलम दी जायेगी।

किताबें और समाचारपत्र—(क) नीचे लिखी सुविधा सरकारी ख़र्च पर दी जायेगी—

(i) जहाँ भी संभव होगा क़ैदी को पुस्तकालय की सुविधा दी जायेगी। पुस्तकालय में वही पुस्तकें दी जायेंगी जिसको ज़िला-मजिस्ट्रेट ने अनुमोदित किया हुआ होगा।

(ii) बारी-बारी से हर दस नज़रबंदों को एक अँग्रेज़ी का या क्षेत्रीय भाषा का एक समाचारपत्र मिला करेगा। अगर किसी भाषा-विशेष को

जानने वाले नज़रबन्दों की संख्या दस से कम होगी तो उनको भी उस भाषा में समाचारपत्र सरकारी ख़र्च पर दिया जाया करेगा। क़ैदी अनुसूची में अनुमोदित समाचारपत्रों की सूची से उन समाचारपत्रों का चयन कर सकेगा जिन्हें वह पढ़ना चाहता है :

अँग्रेज़ी : हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ़ इंडिया, स्टेट्समैन, इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया, रीडर्स डाइजेस्ट, इकोनॉमिक रिव्यू।

हिंदी : हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान साप्ताहिक, नवनीत,

उर्दू : मिलाप, तेज।

(ख) क़ैदी निम्नलिखित सुविधा को अपने ख़र्च पर प्राप्त कर सकता है :

(i) वह किसी भी संख्या में कोई भी किताब, पत्र-पत्रिकाएँ या समाचारपत्र खुद इन्तज़ाम कर प्राप्त कर सकता है।

(ii) क़ैदियों को या उनसे सभी पुस्तकें और समाचारपत्र ज़िले के पुलिस-सुपरिंटेंडेंट द्वारा संबंधित सुपरिंटेंडेंट के माध्यम से दी व वापस की जायेंगी। पुलिस-सुपरिंटेंडेंट किसी भी समाचारपत्र या किताब को अपनी मर्ज़ी के आधार पर रोक सकता है। जिन पुस्तकों के अनुवाद की जाँच-पड़ताल की जा चुकी है और जिसे अनुमोदित किया जा चुका है वह और किसी जाँच के बिना दे दिया जायेगा। ऐसे मामलों में जिनमें किताबों या समाचारपत्रों को रोक लिया गया है, उनके बारे में एक रिपोर्ट डिप्टी-इंस्पेक्टर-जनरल ऑफ़ पुलिस, खुफिया-विभाग या अन्य अधिकारी को जो इस काम के लिए सरकार द्वारा नियत किया गया होगा, भेजी जायेगी। प्रशासक द्वारा मंजूर समाचारपत्र बिना किसी पूर्व सेंसर या जाँच के क़ैदी को दे दिये जायेंगे। जिन समाचारपत्रों, पत्र-पत्रिकाओं को सरकार ने क़ैदियों के लिए अनुमोदित किया है उनके नाम इस आदेश के साथ संलग्न हैं।

(iii) किसी किताब, पत्र-पत्रिका के रोके जाने के बारे में अगर कोई क़ैदी संबंधित अधिकारी के निर्णय से संतुष्ट नहीं है तो वह ऐसे मामलों में सुपरिंटडट के माध्यम से ज़िला-मजिस्ट्रेट को अपना प्रतिवेदन भेज सकता है, जिनका निर्णय अन्तिम होगा।

परिशिष्ट II

नयी दिल्ली में
शाह जाँच आयोग के सामने

प्रदेश———————— केस फ़ाइल नं०————————

श्री कुलदीप नय्यर की नज़रबंदी

————————————

————————————

————————शिकायत

परिवादी की ओर से गवाह का बयान

——————

प्रतिवादी

सार्वजनिक गवाही/डायरी नं०

गवाह का नाम : श्री कुलदीप नय्यर
पिता का नाम
व्यवसाय
पता

निष्ठापूर्ण शपथ के आधार पर

मुख्य जाँच-कर्ता : अध्यक्ष न्यायमूर्ति जे० सी० शाह

अध्यक्ष : क्या आप शपथ लेंगे और घोषणा करेंगे कि आप सच बोलेंगे, पूरा सच बोलेंगे और सच के सिवाय कुछ नहीं बोलेंगे ?

गवाह : जी हाँ, मैं शपथ लेता हूँ, संविधान के नाम में।

अध्यक्ष : आप मीसा के तहत जुलाई 1975 की 25 तारीख को गिरफ़्तार किये गये थे ?

गवाह : जी हाँ।

अध्यक्ष : क्या आपको कोई ऑर्डर दिया गया था ?

गवाह : जी, मुझे याद है कि जो दो पुलिस के आदमी आये थे, मैंने उनसे पूछा था कि क्या कोई वारंट है और उन्होंने कोई वारंट दिखाया था।

अध्यक्ष : उन्होंने मीसा के तहत, इस नियम के अनुच्छेद 3 के तहत मजिस्ट्रेट का कोई आदेश दिया था ?

गवाह : जी, कुछ छपा हुआ कागज़, मेरा नाम लिखा था। मैंने 'मीसा' या 'सार्वजनिक हित में' के अलावा कुछ नहीं पढ़ा।

अध्यक्ष : क्या आपके पास वह छपा हुआ कागज़ है ?

गवाह : जी नहीं, मेरे पास नहीं है।

अध्यक्ष : अच्छा, एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट श्री घोष की फ़ाइल से पता चलता है कि इसमें वह कारण दिये हुए थे जो केस के स्टेटमेंट में लिखे गये हैं।

गवाह : नहीं, अगर मुझे ठीक याद है, उस आदेश में कोई भी कारण नहीं दिये गये थे।

अध्यक्ष : सिर्फ़ यह लिखा गया था कि...।

गवाह : अमुक-अमुक धारा के तहत, और आपको नज़रबंद करना सार्वजनिक हित में है, बस।

अध्यक्ष : आपको कारण कब बताये गये थे ?

गवाह : जेल में, मुझे याद है, शायद 3-4 दिन बाद, मुझे कोई कागज़ दस्तखत करने को दिया गया था लेकिन फिर भी इसमें कोई कारण नहीं दिये गये थे, सिर्फ़ अमुक-अमुक धारा के तहत, और कुछ भी नहीं, कोई ब्यौरा नहीं दिया गया था।

अध्यक्ष : आप कब तक नज़रबंद रहे ?

गवाह : कोई दो महीने तक।

अध्यक्ष : आपकी पत्नी ने दिल्ली हाई कोर्ट में रिट पिटीशन दायर की थी ?

गवाह : जी, मुझे नहीं मालूम था। मुझे बहुत देर में मालूम हुआ था।

अध्यक्ष : अच्छा, कारणों में यह लिखा हुआ है कि श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में विरोधी ग़ैर-सी० पी० आई० पार्टियों के आंदोलन को आप सतत् रूप से सहायता दे रहे थे ?

गवाह : यह पहली बार है जब मैंने इन कारणों को देखा है और मैं कहता हूँ कि यह सब झूठ का जाल है।

अध्यक्ष : आगे, यह भी लिखा है कि आप जामा मस्जिद के इमाम से 28 फ़रवरी 1975 को मिले थे और आपने उनसे बहुत-से मुस्लिम वालंटियरों को 6 मार्च 1975 को आयोजित रैली के लिए भेजने को कहा था ?

गवाह : मैं इमाम से कभी नहीं मिला। मैं उनसे मार्च 1977 के चुनाव के बाद ही मिला। मैं उनसे पहले कभी नहीं मिला था।

अध्यक्ष : क्या आपने कांग्रेस वर्किंग कमेटी की 3 अप्रैल 1975 की एक बैठक में भाग लिया था ?

गवाह : जी नहीं। यह सब झूठ है।

अध्यक्ष : क्या आपने कांग्रेस, अकाली दल, भालोद, भारतीय जन संघ और सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति की दो बैठकों में, जो 21 और 22 जून 1975 को हुई थीं, भाग लिया था ?

गवाह : यह मनगढ़न्त झूठ है।

अध्यक्ष : क्या आप विरोधी ग़ैर-सी० पी० आई० पार्टियों के नेताओं की संयुक्त बैठक में, जो यू० पी०-निवास में 20 और 22 जून 1975 को हुई थी, उपस्थित थे और आपने भाग लिया था ?

गवाह : जी, नहीं। मैं फिर कहूँगा कि ये सब बातें झूठ हैं।

अध्यक्ष : क्या आपने प्रधानमंत्री, भूतपूर्व प्रधानमंत्री, को जुलाई 1975 की, 16 जुलाई 1975 को कोई चिट्ठी लिखी थी, भेजी थी ?

गवाह : जी, मैंने एक पत्र लिखा था। शायद तारीख़ ठीक हो। मुझे तारीख़ नहीं याद है, लेकिन मैंने उनको एक पत्र लिखा था।

अध्यक्ष : ज़रा इनको चिट्ठी दिखा दीजिये।

(गवाह को चिट्ठी दिखायी गयी।)

गवाह : जी, यह चिट्ठी मेरी लिखी है। इस पर 16 जुलाई तारीख़ है।

अध्यक्ष : आपने इसे किस तरह भेजा था, डाक से या किसी संदेशवाहक द्वारा ?

गवाह : जी, मैंने उसे डाक से भेजा था।

अध्यक्ष : आपने इसे डाक से भेजा था।

ज़रा चिट्ठी पढ़ दीजिये।

(भूतपूर्व प्रधानमंत्री को भेजी गयी चिट्ठी गवाही के तौर पढ़कर सुनायी गयी।)

इस चिट्ठी के भेजने के एक सप्ताह के अंदर आपको गिरफ़्तार कर लिया गया ?

गवाह : जी, श्रीमन, मैं 9 दिन के बाद गिरफ़्तार कर लिया गया।

अध्यक्ष : आप पत्रकारिता का व्यवसाय करते हैं ?

गवाह : विभाजन के बाद से, 1947 से।

अध्यक्ष : 1947 से। आप पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री गोविंदवल्लभ पंत, और श्री लालबहादुर शास्त्री के जनसंपर्क-अधिकारी रहे थे ?

गवाह : यह सही है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के मैं सिर्फ़ कुछ दिनों तक साथ रहा, लेकिन मुख्यत: मैं...।

अध्यक्ष : आप यू० एन० आई० के जनरल-मैनेजर भी थे ?

गवाह : जी, यू० एन० आई० का जनरल-मैनेजर और एडीटर।

अध्यक्ष : प्रेस कौंसिल आफ़ इंडिया के सदस्य ?

गवाह : जी, हाँ।

अध्यक्ष : पंजाब यूनिवर्सिटी के सिनेट के सदस्य ?

गवाह : पंजाबी यूनिवर्सिटी।

अध्यक्ष : पंजाबी यूनिवर्सिटी। और बंगलौर यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेंट ऑफ़ जर्नलिज़्म के सलाहकार ?

गवाह : यह सही है।

अध्यक्ष : क्या कोई चिट्ठी, जवाब प्रधानमंत्री के सचिवालय से मिला था ?

गवाह : जी, प्रधानमंत्री के प्रेस-एडवाइज़र श्री शारदाप्रसाद से।

अध्यक्ष : ज़रा पढ़ दीजिये।

(कुलदीप नय्यर को शारदाप्रसाद की चिट्ठी सूचना अधिकारी द्वारा पढ़ी गयी।)

अध्यक्ष : आपको यह चिट्ठी कब मिली ?

गवाह : मेरा ख़याल है, गिरफ़्तार किये जाने के 24 घंटे पहले।

अध्यक्ष : आपने कहा कि आपको मीसा के तहत गिरफ़्तार और नज़रबंद किया गया। आप कहाँ ले जाये गये थे ?

गवाह : मैं यहाँ की स्थानीय जेल, तिहाड़ ले जाया गया था।

अध्यक्ष : और आप सारी अवधि तिहाड़ सेल में रहे या ...?

गवाह : जी, श्रीमन। मैं सारी अवधि तिहाड़ में एक ही सेल में रहा।

अध्यक्ष : क्या आप जेल के अपने अनुभव और उन हालातों के बारे में बतायेंगे जिनमें आपको रखा गया था ?

गवाह : जी, श्रीमन, जब मैं अंदर गया, सबसे पहले मेरी तलाशी ली गयी और यह, मेरे पास एक छोटा बैग, कुछ कागज़ और किताबें थीं जो पहले तो ले ली गयीं क्योंकि उन्हें जेल के सुपरिंटेंडेंट को दिखाया जाना था। तब मुझे एक कम्बल और एक बट्टी साबुन दिया गया। मैं कुछ बिस्तर चाहता था, क्योंकि मैं कुछ भी साथ नहीं लाया था। मुझे बताया गया कि यह नहीं मिल सकता है। मुझे सिर्फ़ एक कम्बल मिला और या तो मैं पत्थर के उस चबूतरे पर सो, सकता था जो क़ैदियों को मिलता है या मैं फ़र्श पर, अगर ऐसा चाहता तो सो सकता था। वहाँ कुछ चारपाइयाँ थीं, लेकिन चूँकि नज़रबंदियों की संख्या बहुत ज़्यादा थी, इसलिए उस दिन मेरी बारी नहीं आयी, लेकिन बाद में कुछ दिनों के बाद मुझे एक चारपाई दी गयी जो मेरी लंबाई से छोटी थी। वहाँ कोई तकिया नहीं दिया गया, मैं कभी यह नहीं जान पाया कि जेल में तकिया क्यों नहीं दिया जाता है। मैं आज भी यह नहीं समझ सका, क्योंकि मुझे एक भी नहीं दिया गया। वहाँ मच्छर बहुत थे। मैंने उनसे पूछा कि क्या मुझे कोई मच्छरदानी मिल सकती है। उन्होंने कहा कि नज़रबंदियों के लिए कुछ नियम-विनियम बनाये जा रहे हैं, ये अभी तय नहीं किये गये हैं, हालाँकि जब मुझे गिरफ़्तार किया गया था तब से एक महीना हो चुका था, और जब ये तय हो जायेंगे तब कुछ दिया जा सकेगा। और यह कुछ दिनों के बाद तय कर दिये गये और मुझे मच्छरदानी दी गयी। यह सच है कि मुझे वहाँ कोई यंत्रणा नहीं दी गयी, मुझे शारीरिक यातना नहीं दी गयी। लेकिन जेल में रहने की दशा बड़ी ख़राब थी। आप सोच सकते हैं कि उस वार्ड में जहाँ हम थे, 93 आदमियों को रखा गया था और वहाँ सिर्फ़ दो सूखी टट्टियाँ थीं। और हर आदमी को शौच के लिए लाइन लगानी पड़ती थी। मुझे बताया गया कि पहले वहाँ कुछ फ़्लश की टट्टियाँ भी थीं, लेकिन किसी आंदोलन में आंदोलनकारियों ने उन्हें तोड़ डाला था। लेकिन हर हालत में तथ्य यही है कि जहाँ पर हम लोग थे वहाँ पर सिर्फ़ दो सूखी टट्टियाँ थीं। वहाँ सिर्फ़ एक हैंड-पम्प था, यह बहुत छोटा था और एक आदमी के नहाने के बाद हमको 15 मिनट तक इंतज़ार करना पड़ता था कि नीचे कुछ पानी इकट्ठा जाये और हम पानी फिर निकाल सकें। इसलिए यह एक मुसीबत थी। और यह गर्मी का महीना था, इसलिए यह बहुत ही ख़राब था। जहाँ तक मच्छरों और मक्खियों का संबंध है, ख़ास तौर से मक्खियों का, मैं सोचता हूँ कि मैंने अपनी ज़िंदगी में इतनी

सारी मक्खियाँ नहीं देखीं। वह लाखों-करोड़ों की संख्या में थीं। मुझे उन्हें देखकर एक फ़िल्म की याद हो आयी जिसे मैंने देखा था, यह चिड़ियों पर थी। इस फ़िल्म में आप हमेशा चिड़िया-ही-चिड़िया देखते हैं। इसी तरह वहाँ पर मक्खियाँ-ही-मक्खियाँ थीं, हम कुछ भी नहीं खा सकते थे। पहले तो हम इनको देखकर घबराये, हमको यह सब बुरा लगा लेकिन मुझे याद है कि दूसरी और तीसरी बार खाना खाने के बाद मैं मक्खियों को देखने का आदी हो गया था। मेरा मतलब दाल में मक्खी पड़ी रहने से है जो हमको मिलती थी, हम उसे उसमें से निकाल देते थे और खाना शुरू कर देते थे। मैं सोचता हूँ कि इस तरह की चीज़ों के हम बाद में आदी हो जाते हैं। खाने में हम जितनी रोटियाँ चाहते उतनी मिलती थीं, लेकिन उसके साथ खाने के लिए सिर्फ़ दाल मिलती थी, हम लोगों को सब्ज़ी प्रायः नहीं मिलती थी। हम लोगों को थोड़ा-सा दूध मिलता था जो सवेरे व शाम की चाय में इस्तेमाल के लिए था। मुझे यह भी याद है कि आज़ादी का दिन 15 अगस्त हम लोगों ने उत्सव के रूप में मनाया। हम लोगों ने अपने-अपने राशन में से हलवा बनाने के लिए कुछ बचाकर रखा था और उसी दिन मुझे याद है कि मुझे हलवा खाने को मिला था। पहले तो कई दिनों तक हमें कोई भी चिट्ठी नहीं मिली, लेकिन मैं सोचता हूँ कि बाहर कुछ दबाव पड़ा होगा, फिर कुछ चिट्ठियाँ आने लगीं। मुझे एक पोस्ट-कार्ड मिला जिस पर कम-से-कम चार-पाँच जगहों पर मुहर लगी हुई थी, एक ख़ुफ़िया-विभाग की, दूसरी प्रशासन की, और अन्य मोहरें जेल की थीं। जब तक हमारे पास चिट्ठी पहुँचती हम सिर्फ़ यह पढ़ सकते थे कि चिट्ठी किसने भेजी है; चिट्ठी में क्या लिखा है यह नहीं पढ़ सकते थे। एक बात जो मुझे बड़ी अच्छी तरह याद है, और अख़बार वाला, पत्रकार, पढ़ने वाला होने के नाते, मुझे किताबें पढ़ने की आदत है, हम रात में पढ़ नहीं सकते थे क्योंकि रोशनी बड़ी मद्धिम होती थी। मैंने कई बार निवेदन किया लेकिन मेरे लिए रोशनी का इंतज़ाम नहीं हो सका। एक महीने के बाद, मुझे अपने घर से एक टेबुल-लैंप मिल गया। जहाँ तक पंखे का संबंध है, वहाँ हम सभी के लिए छत का सिर्फ़ एक पंखा था जो 38 आदमियों के लिए था जो उस सेल में थे, पर हम लोग आदी हो गये थे...।

अध्यक्ष : क्या वह डॉरमीटरी जैसी कोई जगह थी ?

गवाह . जी, यह डॉरमीटरी थी। यह कुछ ऐसी थी : मेरा ख़याल है कि यह क़ैदियों या बच्चों के लिए कोई स्कूल था। मुझे और इसी तरह सभी आदमियों को हमेशा यह जगह बाँटनी पड़ती थी। रात में पहले जिस आदमी को जो जगह मिल जाती थी वह बाद में नहीं मिल पाती थी। मुझे याद है कि पानी ख़ूब बरसता था। इसलिए हम बाहर नहीं सो सकते थे, और जो छोटा-मोटा लॉन हम लोगों के पास था उसमें हमेशा पानी भरा रहता था। मुझे सबसे ज़्यादा जो बात खली वह व्यवहार था। जेल के कुछ अधिकारी यह समझते थे कि हम सचमुच षड्यंत्रकारी थे जो वैध सरकार को उखाड़ फेंकने की कोशिश में थे।

इसलिए हम पर निगरानी रखना ज़रूरी था और जैसा वह व्यवहार करते थे, उसके लिए हमें दण्ड मिलना चाहिए था। लेकिन कुछ, एक या दो, अफ़सर अच्छे थे। मुझे ख़ास तौर से डॉक्टर की याद है जो मेरे प्रति बहुत अच्छा था। वह मेरी किताबें पढ़ता था, इसलिए वह एक दिन मेरे पास आया और बोला, 'आप यहाँ कैसे।' मैंने कहा कि मुझे कुछ नहीं मालूम। उसने मुझसे पूछा कि क्या मुझे दूध चाहिए। मैंने कहा—हाँ, अगर दिला सकते हो। उसने मुझसे कहा कि मैं उसके अस्पताल में आ सकता और सो सकता हूँ, क्योंकि उसे इस तरह का अधिकार प्राप्त था। लेकिन एक बार मैं अस्पताल गया, वह दिमाग़ी रोगियों के पास था। वहाँ कुछ पागल थे। हम वहाँ खड़े भी नहीं हो सकते थे क्योंकि वहाँ बहुत बदबू आ रही थी और वहाँ इन सब लोगों की चीख-पुकार सुनते थे, इनको देखते थे। इसलिए हम वहाँ सो भी नहीं सकते थे। कुछ देर बाद उसने मुझे कुछ दूध दिलवाया...लेकिन हमारी कोठरी में बहुत-से आदमी थे जो इसी तरह का व्यवहार चाहते थे। इसलिए हमको उनके साथ हिस्सा बटाना पड़ता था। आपकी इजाज़त हो तो मैं एक घटना सुनाऊँ। मैंने वार्डर से पूछा कि क्या कोई तरकीब है कि यहाँ चिकन खाया जाये। उसने कहा—हाँ। आपको कुछ रुपये देने होंगे। जेल में हर महीने 30 रुपये ख़र्च करने की इजाज़त थी। यह महीने की शुरुआत थी। इसलिए हम लोगों के पास रुपये थे। हममें से चार आदमी आपस में मिल गये। हममें से हर एक ने 15 रुपये दिये। मुझे नहीं मालूम कि यह कैसे हुआ, लेकिन हमें चिकन करी और तन्दूरी रोटी मिली। इसलिए मतलब यह था कि अगर आपके पास रुपया है तो आपको शायद हर चीज़ मिल सकती है।

अध्यक्ष : यह जेल के खाने की सूची में शामिल नहीं था।

गवाह : नहीं। यह जेल के खाने की सूची में नहीं था। यह वे लोग नहीं थे जो हम पर निगरानी रखे हुए थे और हमको कुछ भी नहीं देना चाहते थे, लेकिन अगर आप इनकी हथेली गर्म कर देते तब ये आपको सब-कुछ ला सकते थे, वग़ैरह-वग़ैरह। मैं जेल में बहुत-से लोगों से मिला, अपनी ही कोठरी में थे जो सताये गये थे। लेकिन मैं सताया नहीं गया; यह मैं ज़रूर कहूँगा। लेकिन वहाँ जिन हालात में लोग रहते थे वह बड़े भयानक थे। आप देखिये कि बरसात में, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, पानी नालियों में से निकलकर बाहर बहने लगता था, चारों तरफ़ फैलकर भर जाता था और वहाँ मक्खियाँ-ही-मक्खियाँ थीं। मैं खाना नहीं खा सकता था, लेकिन बाद में मैं उस खाने का, जो खुराक के तौर पर मिला करता था, दाल और रोटी का आदी हो गया। लेकिन वहाँ वातावरण बहुत ही ख़राब था और मैंने शिकायत भी लिखकर भेजी थी। एक बार मैंने जेल के सुपरिंटेंडेंट और डिप्टी-कमिश्नर सुशीलकुमार को भी लिखा था जो वहाँ आख़िरी दिन, जिस दिन मैं रिहा किया जाने वाला था, आये थे। उन्होंने मुझसे जेल की ख़राबियों के बारे में पूछा था। मैंने उनसे कहा था कि कोई आदमी यह तो समझ सकता है कि वह नज़रबंद कर दिया गया है, लेकिन मैं

यह नहीं जानता कि आपने उनके रहने की हालत क्यों ख़राब कर रखी है। एक बार यही सवाल मैंने जेल के अधिकारियों से भी किया। उन्होंने कहा कि हमें इस बात के आदेश हैं कि हम आपकी ज़िंदगी को इतना कष्टपूर्ण बना दें, ख़ासकर नज़रबंदों की। उन्होंने बताया कि सामान्य अपराधियों की ज़िंदगी की हालत, रहन-सहन की हालत काफ़ी अच्छी थी। असल में उनको कोठरी के बाहर भी चलने-फिरने की इजाज़त थी। हम लोगों को यह इजाज़त नहीं थी। हम लोगों को लोगों से नहीं मिलने दिया जाता था। मुझे याद है कि एक महीने बाद, एक बार भेंट करने का मौक़ा मिला था और कहा गया था कि सिर्फ़ दो आदमियों से मिला जा सकता है। मेरे दो बच्चे हैं और एक पत्नी है। लेकिन सबसे बड़े बच्चे को बाहर ही रहना पड़ा, क्योंकि दो आदमियों को ही इजाज़त थी। मैं उसको खिड़की से बाहर खड़ा देख सकता था, लेकिन मैं उससे बात नहीं कर सकता था, बेचारा कानपुर से आया था। मैं उससे सिर्फ़ गुड-बाई ही कह सका। जहाँ तक चिट्ठी लिखने का संबंध है, एक सप्ताह में एक पोस्ट-कार्ड लिखने की इजाज़त दे रखी थी। मैं सोचता हूँ कि हर चीज़ जेल के अन्दर मँगायी जा सकती थी, इसके लिए सरकारी इजाज़त थी। अन्यथा उन्होंने हम लोगों को बिलकुल अकेला छोड़ रखा था। खेलने के लिए बहुत थोड़ी जगह थी, लेकिन चूँकि वहाँ हमेशा पानी भरा रहता था, अतः कुछ भी नहीं कर सकते थे। हम अपने कमरे में या उस कोठरी में इधर-से-उधर आ जा सकते थे, हो सकता है वहाँ साथ में कोई बरामदा रहा हो। वहाँ एक बरामदा, या बरामदे जैसी कोई चीज़ थी। हम लोग अपना खाना ख़ुद ही बनाते और ख़ुद ही लेकर खाते थे, यह वहाँ की ज़िन्दगी का एक हिस्सा था। यह वहाँ के रहन-सहन की हालत थी। आपकी इजाज़त हो तो मैं यह बताऊँ कि मुझे नज़रबंद क्यों किया गया था, मैं इसके बारे में क्या सोचता था? इमरजेंसी लगने के बाद कुछ क्या घटनाएँ हुईं? इमरजेंसी लगने के बाद चौबीस घंटे के अन्दर किसी भी अख़बार के पास न तो बिजली थी, न पॉवर। सिर्फ़ एक ही ख़बर थी कि सरकार इस बात से बड़ी ख़ुश है कि इस पर कोई कुत्ता भी नहीं भूँका, जैसा कि कहा गया था। और इन समाचारपत्र वालों को देखिये। असल में किसी ने भूतपूर्व प्रधानमंत्री को यह कहते सुना भी था, कि इन बड़े-बड़े सम्पादकों और उनके पत्रकारों को क्या हो गया है। कोई भी विरोध नहीं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने यह कहा या नहीं, लेकिन कम-से-कम उनके आदमियों ने यही कहा। मैं यह तो नहीं कहता कि मैं कोई हीरो हूँ, नेता हूँ लेकिन इन बातों से मुझे चिढ़ हुई और 24 घंटे के बाद मैं स्थानीय समाचारपत्र के कार्यालयों में गया और मैंने पूछा कि यह इमरजेंसी ठीक लागू हुई या ग़लत है। यह बात बहस-मुबाहिसे की हो सकती थी, लेकिन कम-से-कम हम सब मिलकर यह तो कह सकते थे कि सेंसरशिप लगाना ख़राब बात है। आख़िरकार, हम से आज़ादी ले ली गयी, इसलिए हमको प्रेस-क्लब चलना चाहिए।

दिनांक : 18-2-1978

गवाह : इसलिए 48 घंटे के बाद, मैंने कहा कि हम लोग अमुक-अमुक दिन मिलेंगे, मैं सोचता हूँ कि दो दिन बाद, प्रेस-क्लब में। मैं यह देखकर हैरत में पड़ गया कि वहाँ 100 पत्रकार इकट्ठे हो गये और एक प्रस्ताव लाया गया, पास किया गया कि जितने भी पत्रकार यहाँ एकत्र हैं वे प्रेस सेंसरशिप लगाये जाने की निन्दा करते हैं और सरकार से इसे तत्काल हटाये जाने का अनुरोध करते हैं। किसी ने यह संशोधन पेश किया कि कुछ पत्रकार गिरफ़्तार किये जा चुके हैं, इसलिए हमें यहाँ यह लिखना चाहिए कि हम सरकार से अनुरोध करते हैं कि जो पत्रकार गिरफ़्तार किये गये हैं उन्हें तत्काल रिहा किया जाये। तो यह प्रस्ताव था जिसे मैंने प्रधानमंत्री, तत्कालीन प्रधानमंत्री, को तत्कालीन राष्ट्रपति को और तत्कालीन सूचना और प्रसारण-मंत्री को वहाँ पर उपस्थित पत्रकारों की अनुमति से अपने हस्ताक्षर कर भेजा था। मुझे चिन्ता इस बात की थी कि मैं अन्य पत्रकारों को इसमें उलझने नहीं देना चाहता था, या चूँकि हम सबको अपने बारे में फ़ैसला करना था, इसलिए मैंने कहा कि मैं ही प्रस्ताव भेज दूंगा, और लोगों को इस पर दस्तख़त करने की ज़रूरत नहीं। लेकिन काफ़ी लोगों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि वे लोग पिटीशन जैसी चीज़ पर दस्तख़त करना चाहेंगे। मैंने इसे प्रेस-क्लब में ही छोड़ दिया, मेरे पास यह पिटीशन अब भी है, इस पर अकेले दिल्ली के 117 पत्रकारों ने दस्तखत किये थे। वहाँ कुछ ख़ास नाम हैं; **नेशनल हेराल्ड**, **पेट्रियट** के पत्रकारों के भी नाम हैं। मैंने कहा कि यह कागज़ मेरे पास अब भी है। विद्याचरण शुक्ल उस वक़्त सूचना और प्रसारण-मंत्री थे। मैं उन्हें जानता था, क्योंकि हम पत्रकार लोग कुछ लोगों को जान जाते हैं। लेकिन मैं उन्हें घनिष्ठता से जानता था, क्योंकि वह तब मेरे कंधों पर आँसू बहाया करते थे जब उन्हें रक्षा-मंत्रालय से हटाकर योजना आयोग लाया गया था। सूचना एवं प्रसारण-मंत्री बनने के बाद मैंने उन्हें टेलीफ़ोन किया। उन्होंने कहा—"कुलदीप, तुमको मेरी नयी जगह पर आने से ज्यादा खुशी नहीं हुई ?" मैंने कहा, "नहीं, ठीक है, बधाई।" उन्होंने कहा, "तुम कभी आओ।" तो मैंने सोचा। एक दिन बाद मैं उनके यहाँ गया, उन्होंने सबसे पहले कहा, "वह प्रेम-पत्र कहाँ है ?" तो मैंने कहा, "कौन-सा ?" उन्होंने कहा, "तुम्हारे पास वह चिट्ठी है जिस पर बहुत-से पत्रकारों ने दस्तखत किये हैं, हम उनके नाम जानना चाहते हैं।" मैंने कहा, "वह सेफ़ डिपाजिट में हैं।" उन्होंने कोई आग्रह नहीं किया, हो सकता है कि उन्हें नाम मालूम हों, लेकिन जो भी हो, उन्होंने इस बारे में ज्यादा बात नहीं की। उन्होंने कहा कि तुम जानते हो, बहुत-से लोगों ने कहा है कि तुमको चाहिए कि तुम कुलदीप नय्यर को गिरफ़्तार कर लो। मैंने पूछा, "क्या आपको कोई वजह भी बतायी गयी है ?" "हाँ, एक तो यह कि तुम विदेशी पत्रकारों से बहुत मिलते हो।" उन्होंने कहा। मैं उनके साथ आज भी मिलता हूँ। मैं **टाइम्स** लंदन के पत्रकार से दोस्ती रखता था, आज भी रखे हूँ। इसलिए मैंने कहा कि मैं बहुत-से विदेशी पत्रकारों से

मिलता हूँ इसमें कोई शक नहीं है। कुछ छूट गये हैं, लेकिन जो भी छूट गये हैं, इससे क्या। एक लुइस है जो देश से निकाल दिया गया था, मैं उसे वाशिंगटन पोस्ट से जानता था। और पीटर, वह लंदन टाइम्स का है, वह भी मेरा दोस्त है, वह मेरे घर भी आता है। उन्होंने कहा, "तुम बहुत लोगों से मिलते हो?" मैंने कहा, "इनमें से पीटर हैज़लहर्ट्स है जिसने इस देश की बांगला देश की लड़ाई में काफ़ी मदद की थी। इसके अलावा वह मेरा दोस्त भी है, हम लोग मिलते रहते हैं।" उन्होंने कहा, "लेकिन आप इन सबसे कुछ चर्चा भी करते होंगे।" मैंने कहा, "शुक्ल साहब, आप जानते हैं कि मुझे इमरजेंसी, जो भी हो रहा है, पसन्द नहीं है, लेकिन इन चीज़ों को जानने के लिए उनके अपने साधन हैं।" तब उन्होंने कहा, "नहीं, आप कुछ लिखते भी रहे हैं।" उस दिन मेरा लेख छपा था, 'नो, मिस्टर भुट्टो, नो।' निश्चय ही मेरे दिमाग़ में वह सब-कुछ था जो इस देश में हो रहा था। लेकिन सेंसरशिप से बचने के लिए मैंने मिसेज़ गांधी के बजाय मिस्टर भुट्टो तथा इंडिया के बजाय पाकिस्तान लिखा था, सब लोग देख सकते थे। उन्होंने कहा कि आप किसको धोखा देने की कोशिश कर रहे हैं, सबको मालूम है। मैंने कहा, "मैं किसी को धोखा देने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ, मुझे जो कुछ लिखना था, लिख दिया और मुझे मालूम है कि लोग इससे निष्कर्ष निकाल सकते हैं।" उन्होंने कहा, "कुलदीप, तुम हमारी तरफ़ क्यों नहीं आ जाते?" मैंने कहा, "आप किसकी तरफ़ हैं?" और उन्होंने कहा, "ठीक है, हम बाद में बात करेंगे।" और बात वहीं ख़त्म हो गयी। तब कुछ दिनों के बाद मैं प्रेस कौंसिल के चेयरमैन जस्टिस आयंगर के पास गया। तो मैंने उनसे कहा, "चूंकि मैं प्रेस कौंसिल का मेम्बर हूँ, इसलिए मुझे लगता है कि मैं गिरफ़्तार हो जाऊँगा। मेरी ग़ैरहाज़िरी में मैं चाहता हूँ कि प्रेस कौंसिल कम-से-कम मेरे लिए, इस गिरफ़्तारी को जान ले और मैं आशा करता हूँ कि एक प्रस्ताव पास किया जायेगा।" तो वह बहुत ही स्पष्ट थे, वह बोले, "नहीं, यह नहीं होगा, न कोई यह चाहेगा कि कम-से-कम प्रेस कौंसिल इस बात को उठाये।" तो मैंने कहा कि यह बात तो है कि सेंसरशिप लगी हुई है, हम लोग प्रेस की आज़ादी की रक्षा करने वाली सर्वोच्च संस्था हैं, क्यों न प्रेस कौंसिल की एक बैठक बुला ली जाये? उन्होंने कहा, "मैं यह कर सकता हूँ।" वह इस सूचना को स्थानीय समाचारपत्रों में भेज देंगे और उन्होंने ऐसा किया भी। उस समय कुछ सदस्य इकट्ठे हुए। वह एक बड़ी बैठक करना चाहते थे। बड़ी बैठकमें, मैं ताज्जुब में पड़ गया, मैंने इस प्रस्ताव को पेश किया था कि प्रेस कौंसिल प्रेस सेंसरशिप लगाये जाने की निन्दा करती है...सेंसरशिप और इसको तत्काल हटा लिया जाना चाहती है। किसी भी सदस्य ने मेरा समर्थन नहीं किया। कुछ सदस्य तटस्थ थे। कुछ ने इसका विरोध किया लेकिन किसी ने भी इसका समर्थन नहीं किया। तो, उस समय चेयरमैन ने कहा कि आप इस प्रस्ताव के बारे में आग्रह क्यों कर रहे हैं? ऐसा ही कुछ अन्य सदस्यों ने भी कहा। मैंने कहा और जो दलील उन्होंने पेश की कि भले ही आप प्रस्ताव पास कर दें

कोई भी समाचारपत्र इसे नहीं छापेगा, कोई इसे लेगा भी नहीं, कोई इसके बारे में जान भी नहीं सकेगा। मैंने कहा कि एक-न-एक दिन देश में सामान्य स्थिति फिर से आयेगी, एक-न-एक दिन तो समाचारपत्र आज़ाद होंगे। एक दिन यह कालिख नज़र आ जायेगी और भविष्य की पीढ़ी हम सबका निर्णय करेगी और तब कहेगी कि देखा, यह समाचारपत्रों की सर्वोच्च संस्था थी, इस संस्था को इतना भी साहस नहीं था कि कोई प्रस्ताव तक भी पास करती। मैंने कहा,"इसे रिकार्ड कर ले जाइये, चाहे छपे या नहीं, चाहे इसका प्रसारण हो या नहीं, चाहे हम रहें या नहीं, यह मेरे लिए विवेक की बात है, प्रचार की नहीं।" और मैंने उस बैठक में श्री शुक्ल के और उनके काम करने के तरीक़े की और सेंसरशिप के नाम पर जो कुछ हो रहा था उसकी कड़ी आलोचना की थी।

सरकार को हर बात बता दी जाती थी क्योंकि उस दिन शाम को जब मैं प्रेस इन्फ़र्मेशन ब्यूरो गया तब मुझे वह सारे वाक्य सुनने को मिले जो मैंने कहे थे। ज़रा सोचिये कि यह भी एक वजह थी कि प्रेस-क्लब वाला प्रस्ताव, जिसे मैंने अपने दस्तख़तों से भेजा था, और उसके बाद प्रेस कौंसिल ऑफ़ इंडिया में जो आग्रह किया था वह ही वजह थी, न कि प्रधानमंत्री को लिखा यह पत्र क्योंकि, जैसा आपने भी इस पर ध्यान दिया होगा, मैं सोचता हूँ कि लोकतंत्र में समाचारपत्रों को आज़ाद रखना चाहिए चाहे सरकार इसे चाहे या न चाहे, इसलिए नहीं कि हम लोग कभी-कभी उत्तरदायी हो जाते हैं लेकिन कभी-कभी कुछ उत्तरदायित्वपूण बात भी शायद ठीक रहती हैं। वह समाज ही कैसा जहाँ हम लोगों को अभिव्यक्त करने की आज़ादी न हो!

अध्यक्ष : प्रेस-कौंसिल और प्रेस-क्लब की यह बैठकें, 16 जुलाई के पहले हुईं या बाद को ?

गवाह : जी, सभी पहले हुई थीं। प्रेस-क्लब की मीटिंग, मेरा ख़याल है कि या तो 29 जून को या हो सकता है कि 30 जून को या उसके आसपास। और प्रेस-कौंसिल की जुलाई के पहले सप्ताह में हुई होगी।

अध्यक्ष : जेल में रहन-सहन के विषय में आयोग के पास श्रीमती गायत्रीदेवी और ग्वालियर की महारानी की गवाही हैं। दोनों ने कहा है कि जेल के अहाते में काफ़ी बदबू थी और वहाँ उनके सेल के पास एक खुला नाली थी। क्या ऐसी ही स्थिति जेल के और हिस्सों में भी थी ?

गवाह : बदबू, आप भली भाँति सोच सकते हैं, मैं इस शब्द का इस्तेमाल नहीं करता, लेकिन जब 93 आदमियों को दो टट्टियाँ इस्तेमाल करनी हों तब आप बदबू के बारे में सोच सकते हैं। नज़रबंद होने के कई दिनों बाद तक मैं वहाँ की सफ़ाई का आदी नहीं हो सका। गायत्रीदेवी और महारानी ग्वालियर, दोनों हमारे साथ वाले सेल में थीं। मुझे याद है कि इन्होंने वही पुराने तरीक़ों के माध्यम से खबर भेजी थी। आपको यह सुनकर ताज्जुब होगा कि कितनी जल्दी यह खबरें सेल में मिल जाती थीं, मैं नहीं जानता। मैं नहीं जानता वह क्या तरीक़ा था, लेकिन हर आदमी इससे वाकिफ़ था। नानाजी देशमुख का उदाहरण

लीजिये। जिस दिन वह गिरफ़्तार हुए थे, सेल में यह एकाध घंटे में ही हम लोगों को मालूम हो गया कि वह तिहाड़ जेल लाये जा रहे हैं। यह एक ख़बर थी। लेकिन हमको दूसरी तरफ़ से, महारानी ग्वालियर और गायत्रीदेवी से यह सूचना मिली कि उनकी कोठरी में पर्याप्त वल्व नहीं हैं, वहाँ अँधेरा रहता है और कुछ साँप भी दिखायी पड़े हैं। वल्वों की माँग को लेकर हम लोग 24 घंटे के लिए भूख-हड़ताल पर चले गये। उन्हें वल्व दिये गये, उनके यहाँ रोशनी का इंतज़ाम हुआ, सब चीज़ ठीक हो गयी। लेकिन यह सब चीज़ें ठीक करने का एक तरीक़ा था। वरसात में हमारे सेल की नाली में से पानी और मैला निकलकर बाहर आ रहा था। इससे चारों ओर दुर्गन्ध का वातावरण फैल गया था। मैंने जेल के अधिकारियों से इसके बारे में कहा भी। एक बार मैंने कहा, "आप कुछ क्यों नही करते हैं ?" इस पर उनका जवाव था कि जेल में कुछ सौ आदमियों के लिए जगह थी और अव वहाँ हज़ारों आदमी हैं, हम इस वारे में कुछ नहीं कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि उनका जवाव शायद ठीक था, लेकिन तथ्य तो यह था ही कि वहाँ रहन-सहन की हालत बहुत ख़राव थी।

अध्यक्ष : आपके श्वसुर, श्री भीमसेन सच्चर भी मीसा के तहत वंद हुए थे ?

गवाह : जी, श्रीमन, वह हुए थे।

अध्यक्ष : और वह भी उन्हीं दिनों नज़रवंद हुए थे जब आप हुए थे ?

गवाह : जी, मैं सोचता हूँ 24 घंटे या 48 घंटे वाद वह उसी सेल में आ गये और मैं वताऊँ कि चूँकि मैं जेल जाने का आदी नहीं था और अब मैं एक वार हो आया हूँ, अगली वार जव जाऊँगा तव और ज़्यादा अनुभव हो जायेगा। मैं कभी नहीं जानता था कि लोग कहाँ मिलते थे, जिसे वहाँ लोग 'मुलाक़ात' कहते थे। तो एक दिन सुवह को जव वह आये जहाँ मैं था तव शायद सवेरे के 6-30 वजे था। मैं अपने सेल में बैठा था, मैं उनको लोहे की छड़ों से आते हुए देख रहा था, वह साफ़ सफ़ेद खादी पहने हुए थे, कोई उनके पीछे-पीछे चल रहा था, शायद कोई क़ैदी था, मैं सोचता हूँ, वह उनका विस्तर और सूटकेस उठाये चल रहा था। मैं सोच भी नहीं सकता था कि वह गिरफ़्तार हो गये हैं। मैंने सोचा कि वह इन लोगों को काफ़ी अच्छी तरह जानते थे, शायद उन्होंने इनको इजाज़त दे दी कि वह मुझसे सेल में मिल लें। जब वह मेरे निकट आये तो मैंने कहा, "आपने तकलीफ़ क्यों की ?" वह तुरंत भाँप गये और विना मेरे भ्रम का निवारण करे वह वोले, मैंने सोचा कि ख़ुद ही चलूँ और अपने वेटे से मिल लूँ। मैंने कहा, अच्छा, आपने यह वहुत अच्छा किया कि आप विस्तर ले आये, क्योंकि मेरे पास सोने के लिए कुछ नहीं था। और इस तरह यह वातचीत चलती रही। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे लिए एक कम्वल भी लाया हूँ क्योंकि शायद तुमको जाड़ों में यहीं रहना पड़े। मैंने यह सव वातें जेल में अपने सभी साथियों को वतायीं। मेरे जेल के साथियों ने मुझसे जो सवाल किया उससे मैं चौंक गया। उन्होंने कहा, "अच्छा, अव इन्होंने गांधीवादियों को भी गिरफ़्तार करना शुरू कर दिया है। आपकी उम्र के आदमी को इन्होंने क्यों गिरफ़्तार किया ?

आपको भी ?" तब मैंने कहा, "मुझे मत बताइये, आप गिरफ़्तार हो गये हैं।" क्या तुम्हें नहीं मालूम ? मैंने कहा, "नहीं, मुझे नहीं मालूम हो सका।" और तब मुझे यह पता चला कि जब कभी हमें मुलाक़ात के लिए जाना होगा तब मुझे गेट के पास जाना पड़ेगा, वहाँ पुलिस का आदमी खड़ा होगा और उसकी मौजूदगी में अपने परिवार के लोगों से बात कर सकूँगा। मुझे अपने सारे रहस्य पुलिस को बताने पड़ेंगे चाहे मैं यह ही क्यों न पूछूँ कि तुम्हारा लड़का तो ठीक है ?, तुम्हारी माँ ठीक हैं ? उस समय पुलिस का आदमी सब सुन रहा होगा। और वह आधे घंटे के बाद यह बतायेगा कि 'तुम्हारा समय हो गया।' मुझे यह बात बाद में मालूम हुई और तब जब मेरी पत्नी मुझे कुछ खाने का सामान देने आयी थीं, इसे पुलिस के आदमी ने पहले देखा, जब उसे भरोसा हो गया तब बोला, "अच्छा खा लो" और तब जब कुछ सामान बच गया, और मैंने कहा कि मुझे मिठाई बहुत पसन्द है तो वह कुछ और ले आयीं। मैंने कहा कि अन्दर भी मेरे कुछ दोस्त हैं जिन्हें मिठाई पसन्द है। तब जेल के सुपरिंटेंडेंट ने कहा, "नहीं, इसकी इजाज़त नहीं है। आपको किसी ए० डी० एम० की इजाज़त लेनी होगी जो यह बतायेगा कि आप बर्फ़ी के कितने टुकड़े खा सकते हैं," वग़ैरह-वग़ैरह।

अध्यक्ष : आप कुछ कहना चाहते हैं ?

संघ सरकार का वकील : जी, माई लार्ड, सिर्फ़ दो-तीन सवाल। नय्यर साहब, आपने नज़रबंदी के आदेश के बारे में कहा है।

गवाह : जी, श्रीमन।

संघ सरकार का वकील : शायद, यह साइक्लोस्टाइल किया हुआ था, छपा हुआ नहीं था ?

गवाह : हाँ, साइक्लोस्टाइल किया हुआ था, मुझे खेद है मेरा मतलब छपे हुए से नहीं है, यह सिर्फ़ साइक्लोस्टाइल किया हुआ था। मेरा नाम उस पर टाइप किया हुआ था।

संघ सरकार का वकील : हाँ, नाम टाइप किया हुआ था। नहीं माई लॉर्ड, मैं सिर्फ़, माई लॉर्ड, क्योंकि उस समय साइक्लोस्टाइलिंग, यह एक छोटी...।

गवाह : हाँ, मुझे मालूम है, मुझे खेद है, मैंने कहा, मेरा मतलब यह नहीं था।

संघ सरकार का वकील : जिस समय आपको गिरफ़्तार किया गया था, उस समय क्या बज रहा था ?

गवाह : यही क़रीब सबेरे 5 बजे से पहले। मेरा ख़याल है कि उन आदमियों ने मेरा घर एक रात पहले ही घेर लिया था। बाद में मुझे पता चला और असल में एक ने मुझे बताया कि पहले ही चेतावनी दे दी गयी थी "देखो, यह बड़ा खतरनाक आदमी है। यह शायद छिप जायेगा।" तो इन लोगों को पहले से बता दिया गया था, मुझे नहीं मालूम, उन्हें मेरी ईमानदारी पर ज़्यादा भरोसा था जितना कि मुझे अपने पर था। सारी जगह पुलिस के आदमियों द्वारा घेर ली गयी थी, पहले सादी वर्दी की पुलिस के आदमियों ने हमें बताया कि उन्होंने मेरे दरवाज़े को 4 बजे के आसपास खटखटाना शुरू कर दिया था और वह घंटी बजा

रहे थे। गर्मी का मौसम था और मैं सो रहा था। हम लोग एयर-कंडीशन्ड कमरे में सो रहे थे, एयरकंडीशनर चल रहा था, हम लोग सुन नहीं सके। मेरी पत्नी ने, मेरा खयाल है कि कुछ सुना, क्योंकि उन्होंने मुझे जगाया था और यह पाँच से पहले का समय रहा होगा।

संघ सरकार का वकील : आपको गिरफ़्तार होने से पहले इसका कुछ आभास हो गया था, सी० आई० डी० पीछा कर...।

गवाह : मुझे एक दिन पहले शक हुआ था लेकिन मैं कहूँगा कि मुझे बिलकुल भी इसका शक नहीं था, मैं सोच भी नहीं सकता था कि कोई यह भी कर रहा होगा। इसलिए मुझे कोई शक नहीं था। मुझे एक दिन पहले शक हुआ।

संघ सरकार का वकील : आपने जेल के अन्दर के हालात का बयान किया है। मैं उम्मीद करता हूँ कि आपको यह मालूम था कि आपको एक अच्छे क्लास का वर्ताव मिलेगा। उन्होंने, कम-से-कम, जेल-अधिकारियों ने कहा है कि यह अच्छे क्लास का वर्ताव था।

गवाह : ठीक, मैंने जेल के भीतर का बयान किया है, मीसा ने सभी क्लास को बराबर कर दिया था, लेकिन हम लोग, चाहे वह सामान्य क़ैदी था, दूकानदार था, और एक आदमी था जो एक बहुत या उसकी कोई हैसियत थी, उन सबके साथ एक तरह ही वर्ताव किया गया। कम-से-कम वे लोग तो समाजवाद अपनाये हुए थे।

संघ सरकार का वकील : आपको एक फ़ैसले के बारे में मालूम है, शिवकान्त शुक्ल का मामला, सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि यह घर जैसा वर्ताव था।

अध्यक्ष : मैं नहीं समझता कि उसमें जाने की कोई ज़रूरत है।

गवाह : फ़ैसला—आप मेरी किताब के बारे में ज़िक्र कर रहे थे या सिर्फ़ फ़ैसले का।

अध्यक्ष : नहीं, नहीं।

संघ सरकार का वकील : नहीं।

अध्यक्ष : यह कोई फ़ैसला श्री शुक्ल के ख़िलाफ़ नहीं था। मैं ऐसा नहीं समझता।

संघ सरकार का वकील : घर जैसा फ़ैसला। माई लॉर्ड, मेरा कहना है।

अध्यक्ष : वह उस पर था जैसी गवाही पेश की गयी थी।

संघ सरकार का वकील : कोई गवाही नहीं दी गयी थी, लेकिन...!

अध्यक्ष : यह फ़ैसले की आलोचना करना है जो मैं नहीं चाहता।

संघ सरकार का वकील : नहीं माई लॉर्ड, नहीं, मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता था कि इसका प्रचार खूब हुआ था कि यह घर जैसा वर्ताव था, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही थी।

अध्यक्ष : हाँ।

संघ सरकार का वकील : बस इतना ही, माई लॉर्ड।

गवाह : मैं आपकी इजाज़त से एक और बात बताना चाहता हूँ जिससे मुझे बेहद धक्का लगा। एक दिन सवेरे मैं उठ बैठा। वहाँ 14 या 15 साल का एक लड़का चिल्ला रहा था, वह बिलकुल मेरे सबसे छोटे लड़के राजू की तरह था। मैं उसके पास गया और पूछा : क्या तकलीफ़ है? जेल में कुछ लड़के भी थे, क़ैदियों की तरह नहीं, काम करने वालों की

तरह। लोगों ने कहा, इसे इमरजेंसी में पकड़ लिया गया है। मैं बोला, इमरजेंसी! क्या आप कोई नारा लगा रहे थे या क्या आप किसी तरह का कोई साहित्य बाँट रहे थे? वह बोला, नहीं। तो मैंने वार्डन से पूछा, क्या बात है? उसने कहा कि जब जेल में लोग ज्यादा भर जाते हैं तब हम लोग पुलिस वालों से कहते हैं कि कुछ लड़के लाओ। उसने कहा, यह लड़का एक घर से निकलकर अपने मालिक के लिए 'पान' ख़रीद रहा था और वहाँ कोई नहीं था। पुलिस को जेल में मदद के लिए आदमी और चाहिए थे, इसलिए इसे पकड़ लिया गया। तो मैंने कहा, क्या यह पहली बार आया है? उन्होंने मुझे क़रीब आधा दर्जन लड़के दिखाये, जिन पर पिछले दो-तीन सालों से मुक़दमा चल रहा था और कहा कि यह तो मामूली बात है। हम इनको तब तक बाहर नहीं जाने देते जब तक इनकी जगह कोई और नहीं आ जाता, क्योंकि ये 'हेल्पर' होते हैं। यह पहला अनुभव था जो बड़ा ही दयनीय था। मैंने...।

संघ सरकार का वकील : जिस दिन आप गिरफ़्तार हुए थे, आपको किसी इंटरव्यू में जाना था?

गवाह : हाँ, मुझे...।

संघ सरकार का वकील : संघ लोक सेवा आयोग में?

गवाह : जी, श्रीमान। मैं विशेषज्ञों की सूची में था। हम लोगों को सूचना प्रसारण मंत्रालय के लिए डिप्टी प्रिंसिपल इंफर्मेशन ऑफ़िसर के पद के लिए एक आदमी का चुनाव करना था। यू० पी० एस० सी० ने मुझे सलाहकार के रूप में बुलाया था। इस इंटरव्यू को पाँच दिन होना था और यह हमारा तीसरा दिन था जिस दिन मुझे गिरफ़्तार किया गया था।

अध्यक्ष : बस।

संघ सरकार का वकील : बस।

अध्यक्ष : धन्यवाद।

गवाह : श्रीमान, आपको बहुत धन्यवाद।

परिशिष्ट III

श्रीमती भारती नय्यर वनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया और, अन्य,
आई० एल० आर० (1977) II दिल्ली 23 में दिये गये केस के तथ्य।

नज़रवंदी : 24-7-1975 को एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, दिल्ली (श्री पी० घोष) ने दिल्ली प्रशासन की अधिसूचना संख्या एफ० 2/69/75—गृह (पी०2) दिनांक 3-7-1975 के साथ पठि तमीसा की धारा एस० 3 के उप-अनुच्छेद (2) के खंड (व) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए कुलदीप नय्यर की नज़रवंदी का आदेश दिया। उसी दिन श्री घोष ने मीसा की धारा 16 (अ) (3) की तहत जो आतंरिक सुरक्षा (संशोधन) अधिनियम 1975 (वाद में उसके स्थान पर एक अधिनियम उसी दिन से लागू हुआ) द्वारा लागू हुआ था, जैसा कि अभीष्ट था एक घोषणा का आदेश दिया; यह घोषणा इस वारे में थी कि यह नज़रवंदी इमरजेंसी को प्रभावी तरीक़े से लागू करने के लिए ज़रूरी थी जो राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 352 (1) के तहत घोषित की गयी थी। उस आदेश के अनुसरण में गिरफ़्तारी उनके मकान पर 24 जुलाई 1975 को सवेरे की गयी। घोषणा को ध्यान में रखते हुए नज़रवंदी के कोई भी कारण नहीं वताये गये थे।

पिटीशनर की पत्नी (श्रीमती भारती नय्यर) ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दिल्ली के हाई कोर्ट में पिटीशन दायर की। उक्त पिटीशन में नज़रवंदी की पृष्ठभूमि में जो तथ्य थे उनको ब्यौरेवार लिखा गया और यह साफ़-साफ़ वताया गया कि वह ऐसे आदमी नहीं थे जिन्हें सामान्य-रूप से यह समझा जाता कि वह कोई ऐसा काम करेंगे या ऐसा काम कर सकते हैं जो "सार्वजनिक व्यवस्था के वनाये रखने में आड़े आता हो," यह आग्रहपूर्वक कहा गया कि वह हमेशा भारत के शांतिपूर्ण नागरिक रहे थे, वह कभी किसी राजनीतिक पार्टी के सदस्य नहीं रहे, उन्होंने कभी किसी राजनीतिक प्रदशन में भाग नहीं लिया और उन्होंने कोई भी ऐसा काम नहीं किया जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता कि वह कोई ऐसा काम करने वाले थे जो सार्वजनिक व्यवस्था वनाये रखने में आड़े आता। श्री घोष

इस बात से सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे कि श्री नय्यर की नजरबंदी आवश्यक थी, असल में वह सन्तुष्ट भी नहीं थे। यह नजरबंदी मीसा की धारा 3 के क्षेत्र से बिलकुल बाहर थी। यह द्वेषपूर्ण थी। इसने उस फ़र्क़ को ध्यान में नहीं रखा जिसे क़ानून में "सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखने" (गंभीर अव्यवस्था को या ऐसी अव्यवस्था को रोकना जो मोटे तौर पर समाज के समुदाय पर असर डालती) और (ऐसी अव्यवस्था में) जो कुछ मामलों में "क़ानून और व्यवस्था में गड़बड़ी" कर सकती थी, के बीच बनाये रखना चाहिए। पिटीशन में नज़रबन्द को निर्भीक और निष्पक्ष, विश्व ख्याति-प्राप्त प्रमुख लेखक और पत्रकार बताया गया। उन्होंने सरकारी नौकरी भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय में इंफ़र्मेशन ऑफ़िसर के रूप में 1952 से शुरू की। उन्होंने तत्कालीन गृहमंत्री, स्वर्गीय गोविन्दवल्लभ पन्त. के जन-सम्पर्क अधिकारी के रूप में 1957 से 1961 तक काम किया, उन्होंने थोड़े समय के लिए 1963 में पंडित जवाहरलाल नेहरू के अधीन भी जन-सम्पर्क अधिकारी के रूप में काम किया, वह तत्कालीन गृहमंत्री स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ भी जन-सम्पर्क अधिकारी के रूप में 1961 से 1964 तक संबद्ध रहे। वह 1964 में यू० एन० आई० के जनरल-मैनेजर बने जहाँ उन्होंने रचनात्मक योगदान दिया। वह स्टेट्समैन में फ़रवरी 1975 तक रहे और उसके बाद इंडियन एक्सप्रेस में एडीटर बनकर चले आये, जहाँ वह नजर-बंदी के समय नियुक्त थे। उनका किसी भी राजनीतिक पार्टी से कोई भी संबंध नहीं था, वह निष्ठावान पत्रकार थे। वह प्रेस कौंसिल ऑफ़ इंडिया के अक्तूबर 1970 से और टेलीफ़ोन एडवाइज़री कमेटी और पंजाबी यूनिवर्सिटी के सीनेट के सदस्य तथा बंगलौर यूनिवर्सिटी के पत्रकारिता-विभाग के सलाहकार थे। उन्हें प्रेस इंफ़र्मेशन ब्यूरो द्वारा प्रेस एक्रीडिटेशन कमेटी का सदस्य नामित किया गया था। उन्हें भारत सरकार द्वारा जूनियर प्रशासनिक अधिकारी की भर्ती के लिए यू० पी० एस० सी० के इंटरव्यू बोर्ड में नियुक्त किया गया था। उनका सर्व-धर्म, समभाववाद में पक्का विश्वास है। वह सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पाकिस्तान में स्थिति को सामान्य लाने के लिए शेख अब्दुल्ला और प्रधानमंत्री में बातचीत होने का सुझाव दिया था। उन्होंने साम्प्रदायिक शांति बनाये रखने में विशेष रुचि ली थी। वह दुर्गा रतन एवार्ड कमेटी के जूरी थे, इस तरह नामित होने वाले तीन व्यक्तियों में वह अकेले ग़ैर-मुस्लिम थे। उनकी कृतियों में अन्य कृतियों के साथ (1) बिट्वीन द लाइंस (2) इंडिया इन क्रिटिकल इयर्स, और (3) इंडिया आफ़्टर नेहरू—पुस्तकों की भारत में और विदेशों में बहुत सराहना हुई। वह विशिष्ट घटनाओं की तटस्थता से रिपोर्टिंग करने में ही रुचि रखते थे, जिसमें वह न किसी राजनीतिक पार्टी का और न ही किसी नेता का विरोध करते थे। लंदन के टाइम्स, स्पेक्टेटर, और वाशिंगटन ईवनिंग स्टार के 1967 से भारतीय संवाददाता होने के नाते वह इनके लिए लेख भेजते रहते थे, जो उन्होंने इमरजेंसी पर भी लिखे थे। उन्होंने ये लेख तटस्थ होकर

बिना किसी पूर्वाग्रह के लिखे थे। इन परिस्थितियों से किसी भी तरह से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था कि वह सार्वजनिक अव्यवस्था को खतरा पैदा करना चाहते थे।

तत्कालीन सॉलिसिटर-जनरल श्री लालनारायणसिंह को सुनने के बाद एक सशर्त आदेश जारी किया गया।

दिल्ली प्रशासन ने जवाब में एक हलफ़नामा नज़रबंद करने वाले अधिकारी के हलफ़नामे के साथ दाखिल किया। श्री घोष ने यह आग्रहपूर्वक कहा कि उन्होंने द्वेष से कोई कार्य नहीं किया था, उन्होंने उस रिपोर्ट में दी गयी सूचना के आधार पर कार्रवाई की थी, जो क़ैदी की 'विशिष्ट कार्रवाइयों' के संबंध में उनके पास थी। ये कार्रवाइयाँ ऐसी थीं जिनसे सार्वजनिक व्यवस्था के बनाये रखने में उल्टा असर पड़ता था और इनका उद्देश्य इमरजेंसी को प्रभावी तरीक़े से सरकार द्वारा लागू करने के उपायों को बेकार करना था। श्री घोष सिर्फ़ इतना जानते थे कि वह तीन पुस्तकों के लेखक थे जो पिटीशन में बतायी गयी हैं। श्री घोष को यह नहीं मालूम था कि नज़रबंद पत्रकार भी हैं और न ही वह उन अन्य बातों के बारे में जानते थे जो पिटीशन में लिखी गयी हैं। उन्हें प्रधानमंत्री और नज़रबंद के बीच हुए पत्र-व्यवहार का भी पता नहीं था, पहली बार इसकी जानकारी उन्हें पिटीशन के साथ संलग्नों की एक प्रति (प्रधानमंत्री को क़ैदी का एक पत्र और उनका उत्तर पिटीशन के साथ संलग्न किये गये) मिलने पर लगा। न केवल नज़रबंदी का आदेश बल्कि 'घोषणा' भी श्री घोष द्वारा तब की गयी जब उन्होंने स्वयं को संतुष्ट कर लिया कि क़ैदी को सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने में आड़े आने वाली कार्रवाइयों को करने से रोका जाये और इमरजेंसी को प्रभावी तरीक़े से लागू किया जाये। ये आदेश किसी अधिकारी के आदेश देने पर, उसका पालन करने पर नहीं किये गये थे। इस बात से खास तौर से इनकार किया गया था कि नज़रबंदी का आदेश क़ैदी और प्रधानमंत्री के बीच पत्र-व्यवहार के परिणाम-स्वरूप दिया गया था। उप-राज्यपाल ने श्री घोष द्वारा की गयी घोषणा पर पुनर्विचार किया था और उन्होंने इसकी पुष्टि जैसा कि क़ानून में अपेक्षित है, 15 दिनों के अन्दर कर दी थी।

18.8.75 को उत्तर के रूप में एक दूसरे हलफ़नामे में श्रीमती भारती नय्यर ने बताया था कि श्री घोष ने जो मानदंड अपनाया था वह उससे भिन्न था जो मीसा की धारा एस० 3 (1) (ए) के तहत दिया गया है। यह दुबारा कहा गया था कि 'सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखना' और केवल 'क़ानून और व्यवस्था को बनाये रखना' इन दोनों के अन्तर का ध्यान नहीं रखा गया है। यह टिप्पणी की गयी थी कि नज़रबंद करने वाले अधिकारी ने इस बात का भी ध्यान नहीं रखा कि वह क़ैदी के बारे में खुद भी जानता है या नहीं। नज़रबंदी का आदेश यूँ ही दिया गया और आवश्यक तथ्यों और सारी पृष्ठभूमि का कोई भी ध्यान नहीं रखा गया। श्री घोष द्वारा यह भी नहीं बताया गया कि क़ैदी ने जो भी लेखादि लिखे उनमें सार्वजनिक व्यवस्था को

बनाये रखने में आड़े आने वाली बातें कौन-कौन-सी थीं। दूसरी तरफ़ श्री घोष तो उनके बारे में जानते भी नहीं थे। इन स्रोतों से नज़रबंदी के कारणों के बारे में सन्तुष्ट होने की संभावना को बिलकुल ही असत्य ठहरा दिया गया। कोर्ट के सामने ऐसी सभी सामग्री को पेश करना अनिवार्य था जिससे यह पता लग सके कि श्री घोष ने अपने को सभी आवश्यक तथ्यों के आधार पर संतुष्ट कर लिया था।

प्रतिवादी की ओर से जो कुछ कहा गया उससे यह नहीं जाना जा सका कि शुरू के मुद्दे रूप में प्रमाण को सिद्ध करना और इस प्रश्न का निर्णय करना कि कोर्ट के सामने क़ानून में अपेक्षित सामग्री को पेश करना ज़रूरी नहीं है। उसने इस आधार पर इसका विरोध किया था कि कोर्ट को यह पता लगाने से रोका जा सकता है कि क्या प्रतिवादी के पास कोई ऐसी सामग्री थी जिसके आधार पर नज़रबंदी के आदेश को रद्द ठहराया जा सके, अगर नज़रबंदी सचमुच आवश्यक नहीं है तो आदेश को रद्द किया जाये। या तो प्रतिवादी को ऐसी सामग्री पेश करनी पड़ेगी जिसके आधार पर श्री घोष ने कार्रवाई की, या ऐसी सलाह दी जाये कि वह साक्षी अधिनियम की धारा 124 के अधीन प्रमाण प्रस्तुत करें। कोर्ट का विचार था कि प्रमाण पेश करने की ज़िम्मेदारी, या जब यह दूसरे पर डाल दी जाये, उसका खंड-खंड में या विभिन्न स्तरों पर निर्णय नहीं लिया जा सकता—इससे मामले को निबटाने में देरी होगी जो यथासंभव बचायी जानी चाहिए। इसके अलावा ज़िम्मेदारी और उसके निर्वहन का प्रश्न सभी तथ्यों और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हल किया जाना चाहिए।

कोर्ट ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सशर्त आदेश जारी होने पर सरकार को 'पुष्ट' 'प्रमाण' पेश करने चाहिए। इसकी पुष्टि में 'ग्रीन बनाम सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट फ़ॉर होम अफ़ेयर्स' (1941 3 ए० ई०आर० 388, पृ० 392 (2)) में लॉर्ड मैंगहाम की टिप्पणी और सुप्रीम कोर्ट के कई निर्णयों को पेश किया गया, जिनमें यह ठहराया गया था कि सशर्त आदेश के बाद बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के मामले में सरकार के लिए यह अनिवार्य था कि वह कोर्ट को संतुष्ट करे कि क़ैदी की आज़ादी क़ानून के तहत और अनुच्छेद 22 (5) की संवैधानिक आवश्यकता के समुचित अनुसरण में छीनी गयी है। इमरजसी के दौरान अनुच्छेद 22 के निलम्बित हो जाने पर क़ानून के तहत ठीक-ठीक पालन करना ही शेष रह गया था।

जस्टिस रंगराजन ने (जस्टिस अग्रवाल सहमत थे) अनेक निर्णयों पर, ख़ास तौर से अँग्रेज़ी कोर्ट के निर्णयों पर विचार-विमर्श कर 'लिवरसीज़ बनाम एंडरसन' (413 ए० ई० आर० 338) में लॉर्ड एटकिन की प्रसिद्ध असहमति की व्याख्या करते हुए कि किस प्रकार यह अँग्रेज़ी क़ानून बन गयी थी, अपना मत दिया: "अगर पिटीशनर प्रत्यक्षत: सिद्ध करने में सफल हो जाता है तो यह ज़िम्मेदारी प्रतिवादी की हो जाती है कि वह यह बताये कि नज़रबंदी मीसा के तहत की गयी थी। यह आगे एक और प्रश्न के अधीन है कि विधान और आदेशों के कारण क्या इस पर शुरू में ही कोई पुनर्विचार नहीं हो सकता।"

शायद जस्टिस रंगराजन के तर्क का, जिन्होंने वेंच के अपने सहयोगी जस्टिस अग्रवाल की ओर से भी विचार प्रकट किये थे, सबसे महत्वपूर्ण भाग यह था कि प्रतिवादी पर ज़िम्मेदारी डालते हुए किस प्रकार प्रत्यक्षत: यह बात अपने आप सिद्ध हो जाती है कि क़ैदी को नज़रबन्द करने के आधारों को प्रस्तुत न करने से इस पर कोई भी असर नहीं पड़ता और किस तरह इस संबंध में न्यायिक पुनर्विचार विलकुल निषिद्ध नहीं है। यह स्पष्ट किया गया कि क़ैदी को नज़रबन्द करने के कारणों को पेश न किये जाने से रुकावट आने के बावजूद, जैसाकि इस मामले में है, नज़रबन्दी की वैधता गंभीर रूप से संदेहास्पद हो जाती है, इन संदेहों का निराकरण केवल प्रतिवादी (प्रतिवादियों) द्वारा ही हो सकता है। ऐसा करने में सफल न होने पर नज़रबन्दी के आदेश के परिणाम का, जो केवल प्रशासक का आदेश ही नहीं है और जिसे रद्द किया जा सकता है, प्रश्न आ जाता है। हालाँकि यह नहीं कहा गया था कि कारण क़ैदी द्वारा पेश किये जाने चाहिए। जस्टिस रंगराजन ने सुप्रीम कोर्ट के अनेक निर्णयों का हवाला दिया : आनन्दन नम्बियार व० यूनियन ऑफ़ इंडिया (1966, ए० आई० आर०एस०सी० 657); मक्कन सिंह व० स्टेट ऑफ़ पंजाब (1964, ए० आई० आर० एस०सी० 381); स्टेट ऑफ़ मध्य प्रदेश व० भारतसिंह (1967, ए०आई०आर०एस०सी० 1170); डिस्ट्रिक्ट कलक्टर ऑफ़ हैदरावाद व० मोहम्मद इब्राहीम एंड कं० (1970, ए० आई० आर० एस० सी० 1275)। वन्दी प्रत्यक्षीकरण की रिट के अव भी प्रभावी वने रहने से, न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति जो कोर्ट में निहित है न तो खत्म की जा सकती है, न उसमें कटौती ही की जा सकती है और न छीनी ही जा सकती है। भले ही मीसा के किसी भी अनुबंध पर ही क्यों न आश्रित रहा जाये, जिससे नज़रबन्द करने वाले अधिकारी ने यह घोषणा की कि नज़रबन्द करने के कारणों को न बताया जाये। इस घोषणा के केवल दो न्यायिक परिणाम थे : (1) क़ैदी का मामला संविधित निकाय के सामने पुनर्विचार के लिए नहीं जायेगा; (2) क़ैदी को कारण बताने की जरूरत नहीं है। यह स्पष्ट किया गया कि नज़रबन्दी के कारणों के न बताये जाने का अर्थ यह नहीं था कि नज़रबन्दी के कारण हो भी नहीं; अगर वे नहीं हैं या उनके होने में संदेह है तो जब तक इन कारणों का निर्णय नहीं हो जाता तब तक कोर्ट के पास कोई चारा नहीं रह जाता कि वह अपना कर्तव्य पूरा न करे अर्थात नज़रबन्दी को रद्द ठहराये, जबकि न्यायिक पुनर्विचार का अधिकार प्रत्यक्षत: अभी नहीं लिया गया है। उक्त निर्णयों के संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया कि किस प्रकार यह नहीं लिया गया है।

जस्टिस रंगराजन ने संविधान के अनुच्छेद 359 (1) (ए) के तहत राष्ट्रपति की घोषणा के बारे में, जिसके संबंध में कहा गया कि इस पर पुनर्विचार नहीं हो सकता, यह स्पष्ट किया कि संशोधित होने के बाद भी अनुच्छेद 359 (1) (ए) में ऐसा कुछ नहीं था जो ऐसी नज़रबन्दी की इजाज़त देता हो जो क़ानून के अनुसार नहीं की गयी हो। इस विषय पर उन्होंने ख़ास तौर से यह विचार व्यक्त किये, "संविधान में

359 (1) (ए) अनुच्छेद का समावेश करने वाले संशोधन का केवल यह प्रभाव है कि अनुच्छेद 19 के तहत अधिकार, जो अनुच्छेद 358 के तहत भी दिये गये हैं, भाग III में उल्लिखित अन्य अधिकार इमरजेंसी के दौरान वैधानिक या प्रशासकीय कार्रवाई को अवैध नहीं कर सकते, लेकिन इससे इमरजेंसी के दौरान वैध क़ानून द्वारा प्रशासकीय कार्रवाई के औचित्य को सिद्ध करने की आवश्यकता का निराकरण नहीं किया जा सकता। इस संबंध में प्रतिवादी को 38वें संशोधन से कोई सहायता नहीं मिलती।" (ज़ोर देकर कहा गया)

जस्टिस रंगराजन ने विधान-मंडल को, जब उसने मीसा की धारा 18 को अधिनियमित किया था, उक्त स्थिति की जानकारी रखना आवश्यक बताया जो यह है कि मीसा के तहत दिये गये आदेशों के कारण सहज क़ानूनी अधिकार और सामान्य क़ानूनी अधिकार भी, संविधान के भाग III के तहत अधिकारों के साथ समाप्त हो जायेंगे। मक्कनसिंह वाले निर्णय ने, जो ख़ास तौर से रद्द नहीं हुआ है (यह तभी हो सकता था जब पाँच जजों की उस बेंच से ज्यादा जजों की बड़ी बेंच कोई दूसरा निर्णय देती जिसने मक्कनसिंह के संबंध में निर्णय दिया था), इस बात को नकार दिया है कि अनुच्छेद 359 (1) (जैसा कि उस समय था) के कारण प्रशासकीय अधिकार क़ानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों से अधिक व्यापक हो गया है। सम्राट व० शिवनाथ बैनर्जी (ए० आई० आर० 1943, एफ० सी० 156) का हवाला देते हुए, जिसने इस दलील को (संविधान के सामने भी) थोथी बताया है कि नज़रबन्दी के आदेशों की जाँच करना कोर्ट के अधिकार-क्षेत्र में नहीं है बल्कि सिर्फ़ नज़रबन्दी के आदेश में कारणों को स्वीकार किया है, जस्टिस रंगराजन ने स्वीकार किया कि कारणों के न बताये जाने से क़ैदी पर, निश्चय ही, बड़ा ही कठिन दायित्व आ गया है। लेकिन इस मामले में उन्होंने यह निर्णय किया कि कारणों के बताये जाने के बावजूद नेक-नीयती और वैधता (मीसा की सीमा में दिये गये अनुचित आदेश से संबंधित) के बारे में गंभीर संदेह है। आनन्दन नम्बियार के मामले में मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्रगड़कर ने पाँच जजों की बेंच की ओर से बोलते हुए इस आशय को थोथा बताया था कि संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन नज़रबन्दी के आदेश को यह चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह आदेश दुर्भावपूर्ण था।

जस्टिस रंगराजन ने सारी स्थिति को सार रूप में इस प्रकार कहा : "इन सब मामलों का सार यह है कि जो ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाई है वह सिर्फ़ इसलिए क़ानूनी नहीं हो जाती कि किसी भी मामले में नज़रबन्दी का आदेश सिर्फ़ एक प्रशासकीय कार्रवाई है अर्थात उसके लिए वैधानिक समर्थन नहीं है। इसे क़ानूनी होने की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए, ऐसे मामले में जहाँ चुनौती दी जा सकती है। उसे क़ानून की किसी वैध व्यवस्था के अधीन और उसके ठीक-ठीक अनुसरण में जारी किया जाना चाहिए। इस तरह के आदेश का जारी किया जाना शक्ति का सशर्त प्रयोग है, अगर यह दिखा दिया जाये

कि जिन शर्तों में ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है वह पूरी नहीं हुई है, तब यह कोई ऐसा मामला नहीं होगा जिसमें कोई आदेश किसी वैध क़ानून के तहत जारी किया गया था और वह रद्द घोषित कर दिया जायेगा।"

अनुक्रमणिका

प्रमुख पत्रकार होने के नाते दो दशकों के अधिक समय से श्री कुलदीप नय्यर का गहरा सम्बन्ध देश की राजनीति के केन्द्र से रहा है। राजनीतिक संवाददाता के रूप में पहले वह गोविन्दवल्लभ पन्त और फिर श्री लाल बहादुर शास्त्री के प्रेस अफ़सर रहे; फिर यूनाइटिड न्यूज़ ऑफ़ इण्डिया के सम्पादक और मैनेजर, फिर 'स्टेट्समैन' के नई दिल्ली संस्करण के स्थानीय सम्पादक। लन्दन से प्रकाशित होने वाले 'स्पेक्टेटर' और 'टाइम्स' तथा अमेरिका के दैनिक पत्र 'वाशिंग्टन ईवनिंग स्टार' के भी वह संवाददाता हैं।

श्री नय्यर अब एक्सप्रेस न्यूज़ सर्विस के प्रमुख होने के नाते एक्सप्रेस ग्रुप की पत्र-पत्रिकाओं में विशिष्ट पद पर हैं।

सम-सामयिक महत्व की कुछेक पुस्तकें

हिंसा का लावा	पक्की जिल्द	18.00
सं० उदयन शर्मा	पेपरबक	14.00
ये नये हुक्मरान	पक्की जिल्द	24.00
जनार्दन ठाकुर	पेपरबैक	18.00
मारवाड़ी समाज : व्यवसाय से उद्योग में :	पक्की जिल्द	30.00
टामस ए० टिम्बर्ग		
जयप्रकाश : एक जीवनी	पेपरबैक	18.00
एलन और वेंडी स्कार्फ़		
भारतीय जेलों में पाँच साल	पक्की जिल्द	20.00
मेरी टाइलर	पेपरबैक	14.00
मुझे बोलने दो	पेपरबैक	12.00
गौरकिशोर घोष		
नेहरू-युग : जानी-अनजानी बातें	पक्की जिल्द	30.00
एम० ओ० मथाई	पेपरबैक	24.00
अदालती पुनरीक्षण या संसद से टकराव	पक्की जिल्द	15.00
जस्टिस हंसराज खन्ना	पेपरबैक	9.50
धर्म-निरपेक्ष भारत में इस्लाम	पक्की जिल्द	20.00
डॉ० मुशीर-उल-हक़		
भारत की अर्थनीति : गांधीवादी रूपरेखा	पक्की जिल्द	20.00
चौधरी चरणसिंह	पेपरबैक	14.00
समुचित तकनीक : बेहतर भी, कारगर भी	पक्की जिल्द	24.00
अर्थशास्त्र का अध्ययन मानो जनता का भी अस्तित्व हो	पेपरबक	18.00
ई० एफ़० शुमाकर		
[illegible]सला : इमर्जेंसी का कच्चा चिट्ठा	पक्की जिल्द	24.00
कुलदीप नय्यर	पेपरबैक	18.00
सब दरबारी	पक्की जिल्द	24.00
जनार्दन ठाकुर	पेपरबैक	18.00
इन्दिरा गांधी के दो चेहरे	पक्की जिल्द	24.00
उमा वासुदेव	पेपरबैक	18.00

स्थायी रूप से पठनीय पुस्तकें

घर-घर में पूजित हिन्दू देवी-देवता	पक्की जिल्द	25.00
डॉ० वैस्सिलिस जी० विट्साक्सिस		
विवाह, सेक्स और प्रेम	पेपरबैक	13.00
डॉ० प्रमिला कपूर		

Books in English

VIOLENCE ERUPTS		
Edited by Udayan Sharma	Cloth	25.00
1968 AND AFTER : INSIDE THE REVOLUTION		
by Tariq Ali	Cloth	35.00
SMALL IS BEAUTIFUL—A Study of Economics		
as if People Mattered, E. F. Schumacher		
Third Print.	Hard Cover	17.00